महाभारत

सन्तराम वत्स्य

महाभारत की यह कथा

महाभारत भारतीय धर्म-संस्कृति का कोश है। यहां तक कहा गया है कि जो 'महाभारत' में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। यह पंचम वेद है।

'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय जीवन के प्राणभूत ग्रन्थ हैं। इनको उपजीव्य बनाकर प्रभूत साहित्य-सृष्टि हुई है। मूल रूप में संस्कृत में होने के कारण तथा वृहदाकार और अनुपलब्ध होने से मैंने चाहा कि हिंदी के पाठकों को और विशेष रूप से नई पीढ़ी के पाठकों को ये ग्रंथ सार-संक्षेप रूप में ही सही, उपलब्ध हों।

रामायण (वाल्मीकि) का प्रकाशन पांच वर्ष पूर्व हुआ था और अब 'महाभारत' आपके हाथों में है।

मैंने प्रयत्न किया है कि भगवान् वेदव्यास के कथ्य की मूल भावना पाठकों तक ज्यों की त्यों पहुंचा सकूं। कितना सफल हुआ हूं, यह तो सुधी पाठक ही बताएंगे।

मुझे अनेक उपकथाओं को छोड़ना पड़ा है। फिर भी मूल कथा-धारा कहीं खंडित नहीं हुई है।

—सन्तराम वत्स्य

क्रम

आदि पर्व	९
सभा पर्व	५०
विराट् पर्व	७३
उद्योग पर्व	७९
भीष्म पर्व	८६
द्रोण पर्व	१०२
कर्ण पर्व	१२३
शल्य पर्व	१३४
सौप्तिक पर्व	१४३
स्त्री पर्व	१४८
शान्ति पर्व	१५२
अनुशासन पर्व	१५४
अश्वमेधिक पर्व	१५४
आश्रमवासिक पर्व	१५५
मौसल पर्व	१५६
महाप्रस्थानिक पर्व	१५८
स्वर्गारोहण पर्व	१६२

आदिपर्व

महाभारत की रचना और प्रचार

देवतात्मा हिमालय की तलहटी में, एक गुफा के भीतर महर्षि व्यास ध्यानमग्न बैठे थे। ध्यानावस्था में ही उन्होंने मानस में महाभारत-इतिहास को प्रत्यक्ष की तरह देखा। सृष्टि के आदि से लेकर मानवी सृष्टि और उसके विस्तार के इतिहास को उन्होंने अपनी ज्ञान-दृष्टि से देखा। अपनी ज्ञान-दृष्टि का उपयोग करके उन्होंने इतिहास के साथ-साथ वेदादि शास्त्रों का विस्तार करके इस लोकपावन इतिहास का निर्माण किया है।

अपने मानस लोक में इस अपूर्व ग्रन्थ की रचना कर लेने के पश्चात् वे सोचने लगे कि अब शिष्यों को इस ग्रन्थ का अध्ययन कैसे कराया जाए ?

महर्षि वेदव्यास की इस चिन्ता को दूर करने के लिए लोकपिता ब्रह्मा वहां पधारे। व्यास जी ने ब्रह्मा को प्रणाम किया, आदरपूर्वक बिठाया और स्वयं उनके पास बैठ गए। व्यास जी ने महाभारत को लिपिबद्ध करने में अपनी कठिनाई ब्रह्मा जी को बताई।

ब्रह्मा जी ने कहा, "आप इस काम के लिए श्रीगणेश जी को मनाएं।" इतना कहते ही ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गए।

ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार व्यास जी ने श्रीगणेश जी का स्मरण किया। व्यास जी के स्मरण मात्र से गणेश जी ने उन्हें दर्शन दिए। व्यास जी ने उनका यथोचित आदर-सम्मान किया। तत्पश्चात् बोले, "गणेश जी, मेरे द्वारा मनसा-कल्पित महाभारत की कथा मैं कहता जाऊंगा और कृपा करके आप उसे लिखते जाइए।"

गणेश जी ने कहा, "यदि लिखते समय मुझे क्षण-भर को भी रुकना न पड़े तो मैं महाभारत को लिपिबद्ध करने के लिए तैयार हूं।"

व्यास जी बोले, "ठीक है ! पर जो मैं कहूं उसे आप बिना सोचे-समझे मत लिखिएगा।"

व्यास जी बोलते जाते और गणेश जी लिखते जाते। पर बीच-बीच में व्यास जी कोई ऐसा श्लोक बोल देते जिसका अर्थ ऊपर से कुछ मालूम पड़ता और भीतर से कुछ होता। गणेश जी को उसे समझने में कुछ समय लगता और तब तक व्यास जी दूसरा श्लोक बोल देते। इस प्रकार इस महान ग्रन्थ महाभारत को लिपिबद्ध किया गया।

सबसे पहले व्यास जी ने अपने पुत्र शुकदेव जी को महाभारत की कथा सुनाई। उनके बाद व्यास जी ने अपने प्रमुख शिष्य वैशंपायन जी को यह कथा सुनाई। मानव जाति में इस कथा का प्रचार-प्रसार करने का श्रेय धर्मात्मा वैशंपायन जी को ही है।

महाराज परीक्षत के पुत्र जनमेजय ने एक बड़ा नाग-यज्ञ किया। उस यज्ञ में भारतवर्ष के ऋषि-मुनि, वेदज्ञ आचार्य और ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे। इस अवसर पर जनमेजय ने वैशंपायन जी से महाभारत की कथा सुनाने की प्रार्थना की। वैशंपायन जी ने उनकी प्रार्थना पर यज्ञ में पधारे समस्त विद्वज्जनों को अपने गुरु महर्षि व्यास द्वारा रचित यह कथा सुनाई।

इस यज्ञ में पुराणों के महान पंडित सूत जी भी उपस्थित थे। वैशंपायन जी से महाभारत की इस रोचक और ज्ञानवर्धक कथा को सुनकर वे बड़े आनन्दित और प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि इस पावन कथा में लोकशिक्षा की बड़ी शक्ति है। यही सोचकर उन्होंने इस कथा के प्रचार का निश्चय किया।

वे यज्ञ सम्पन्न होने पर अपनी तपोभूमि नैमिषारण्य को लौट गए। वहां उन्होंने ऋषियों की एक बड़ी सभा का आयोजन किया। पूज्यपाद महर्षि शौनक ने इस सभा की अध्यक्षता करना स्वीकार किया।

सूत जी ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा, "उपस्थित महानुभाव ! मैं महाराजा जनमेजय के नागयज्ञ में सम्मिलित हुआ था, वहां व्यास जी के शिष्य वैशंपायन जी ने महर्षि व्यास-रचित महाभारत की कथा सबको सुनाई थी। वही पवित्र कथा मैं आपको सुनाता हूं।"

देवव्रत

हजारों वर्ष पहले द्वापर युग के प्रारम्भ में आर्यावर्त भूखण्ड का शासन महाराज ययाति के हाथ में था। उनके दो पुत्र हुए। एक 'यदु' और दूसरा 'पुरु'। यदु के वंशज 'यादव' और पुरु के 'पौरव' नाम से प्रसिद्ध हुए। पुरु के वंश में महाराज 'भरत' हुए। महाराज भरत के राज्यकाल में आर्यावर्त की बड़ी उन्नति हुई। तब से उनके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इन्हीं 'भरत' के वंश में एक महाराजा 'कुरु' हुए। उन महान यशस्वी राजा के नाम पर यह 'कुरु वंश' कहलाने लगा। इसी कुरु वंश में महाराज शान्तनु एक बड़े प्रतापी राजा हुए। इनका विवाह देवी गंगा के साथ हुआ था। विवाह से पूर्व गंगा ने उनसे यह बात तय कर ली थी कि मैं चाहे जो करूं, मेरा वह काम अच्छा हो या बुरा, मुझे आप रोकेंगे नहीं।

महाराज शान्तनु ने यह बात मान ली थी। महारानी गंगा के जब पहला पुत्र उत्पन्न हुआ तो वे उसे गंगा की धारा में बहा आईं। इसी प्रकार एक के बाद एक सात पुत्र उत्पन्न हुए और महारानी गंगा उन्हें गंगा की धारा में बहाती रहीं। जब आठवां पुत्र हुआ और महारानी उसे भी गंगा में बहाने ले चलीं तो महाराज शान्तनु पूर्व प्रतिज्ञा को तोड़कर बोले, "अरी पुत्रघातिनी ! ऐसा नीच कार्य जिसे राक्षस भी नहीं करते, तू क्यों करती है ? मैं

अब तक अपनी प्रतिज्ञा के कारण चुप रहा। अब मेरा धैर्य समाप्त हो चुका है। तू चाहे कोई भी हो और जो चाहे सो कर, पर इस नवजात पुत्र को मैं तुझे गंगा में नहीं बहाने दूंगा।"

गंगा ने कहा, "आप कहते हैं तो मैं इसे गंगा में नहीं बहाऊंगी। परन्तु पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अब मैं आपके साथ नहीं रहूंगी। मैं जह्नु की पुत्री गंगा हूं। मैं एक विशेष कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही धरती पर अवतीर्ण हुई थी। वह कार्य पूरा हुआ। ये आठ पुत्र, जिन्हें मैंने जन्म दिया, अष्टवसु थे जो महर्षि वसिष्ठ द्वारा शापित होकर मृत्युलोक में आए थे। इन की प्रार्थना पर मैंने इन्हें गर्भ में धारण करना स्वीकार किया था और वे शीघ्रातिशीघ्र शाप-मुक्त होकर पुनः देवलोक लौट जाएं, इसी उद्देश्य से उन्हें गंगा में प्रवाहित कर देती थी। अब तुम इस पुत्र से पुत्रवान् बनो। यह पुत्र अतुल बलशाली और आपके वंश को यशस्वी बनाने वाला होगा। यह अभी शिशु है। यह बड़ा होने पर आपके पास आ जाएगा। मैं भी आपके स्मरण करने पर उपस्थित हो जाऊंगी।" यह कहकर शिशु समेत गंगा जी अन्तर्धान हो गईं।

कई वर्ष बाद एक दिन महाराज शान्तनु हिंसक पशुओं का शिकार करते हुए गंगा-तट पर पहुंचे। वहां एक सुन्दर हृष्ट-पुष्ट बालक गंगा की धारा को अपने बाणों की शक्ति से रोके खड़ा था। शान्तनु को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब वह बालक भी तुरन्त अदृश्य हो गया तब तो शान्तनु ने गंगा का स्मरण किया। देवी गंगा पुत्र सहित आ उपस्थित हुईं और बोलीं, "महाराज! यह आपका पुत्र है। मैंने इसे पाल-पोसकर बड़ा कर दिया है। इसने शास्त्रों और अस्त्र-शस्त्रों को जान लिया है। अब आप इसे अपने साथ ले जाइए।" यह कहकर गंगा जी फिर अन्तर्धान हो गईं।

महाराज शान्तनु बालारुण के समान तेजस्वी पुत्र को साथ लेकर हस्तिनापुर लौटे। पुत्र का नाम उन्होंने देवव्रत रखा और उसे युवराज पद प्रदान किया। इसके बाद चार वर्ष बीत गए।

एक दिन महाराज शान्तनु यमुना के तटवर्ती वन में घूम रहे थे कि उन्हें अत्युत्तम सुगन्ध का अनुभव हुआ। वे उस सुगन्ध के उद्गम-स्थान का पता लगाने के लिए इधर-उधर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने मछुओं की एक अत्यन्त रूपवती कन्या देखी। वह दिव्य सुगन्ध इस कन्या की देह से ही निकल रही थी। महाराज ने उसका नाम-धाम पूछा। उस का नाम सत्यवती था। महर्षि पराशर के वरदान के कारण ही उसकी देह से यह दिव्य सुगन्ध निकलती थी। यह कन्या नौका चलाती थी और यात्रियों को नदी पार पहुंचाती थी।

राजा शान्तनु ने मन में इस धीवर कन्या को अपनी रानी बनाने का निश्चय किया। वे सत्यवती के पिता के पास गए और बोले, "निषादराज! मैं तुम्हारी कन्या से विवाह करना चाहता हूं।"

बूढ़ा निषादराज बड़ा चतुर था। उसने कहा, "महाराज! आपसे श्रेष्ठ वर इस कन्या के लिए दूसरा कौन होगा! पर एक बात है, वह आपको माननी होगी, तभी मैं इसे आपको ब्याह सकूंगा। आपके बाद राज्य का उत्तराधिकारी इस कन्या से उत्पन्न पुत्र ही होगा। यह स्वीकार हो तो कहिए!"

राजा शान्तनु निषादराज की शर्त स्वीकार नहीं कर सके और राजधानी लौट आए। परन्तु सत्यवती के प्रति उनकी आसक्ति बढ़ती ही गई और वह व्याकुल रहने लगे। वह देवव्रत का युवराज पद पर अभिषेक कर चुके थे इसलिए सत्यवती के पिता की बात को नहीं मान सके।

राजा शान्तनु सत्यवती की याद में दिन-रात घुलते रहे और उदास रहने लगे।

एक दिन उदास और चिन्ता में डूबे पिता को देखकर युवराज देवव्रत ने पूछ ही लिया, "पिताजी, आपको ऐसा क्या दुःख है कि आप दिनों-दिन दुबले होते जा रहे हैं और हर घड़ी उदास रहते हैं ?"

राजा ने घुमा-फिराकर कहा, "बेटा ! तुम्हीं एकमात्र मेरे सम्बल हो। मैं सोचता हूं कि तुम्हें कभी कुछ हो गया तो मेरा क्या होगा ? यही चिंता मुझे दिन-रात सालती रहती है। वैसे तो मेरी विवाह करने की इच्छा नहीं है, पर तुम्हारे और भाई भी हों, इसलिए सोचता हूं कि विवाह कर लूं।"

देवव्रत ने सोचा, पिताजी के मन में कुछ बात है जिसे वे कह नहीं पा रहे हैं। वह राज्य के बड़े मंत्री के पास गया और पिता की चिंता का कारण पूछा। मंत्री ने बताया कि वे एक धीवर कन्या से विवाह करना चाहते हैं। अब देवव्रत ने महाराज के सारथि से पूछा तो उसने सारी बात बता दी। बात देवव्रत की समझ में आ गई। वह कुछ बड़े लोगों को साथ लेकर सत्यवती के पिता निषादराज के पास गया। निषादराज से अपने पिता के लिए कन्यादान की बात देवव्रत ने कही। निषादराज ने फिर अपनी बात दोहराई। देवव्रत ने उसकी बात स्वीकार कर ली और सत्यवती के पुत्र के लिए अपना राज्य का उत्तराधिकार छोड़ने की प्रतिज्ञा की। पर इतने पर भी बूढ़ा और चतुर निषादराज नहीं माना। वह बोला, "आप जो कुछ कह रहे हैं, निश्चय ही आप उसे निभाएंगे। पर आपका जो पुत्र होगा, वह इस बात को क्यों मानेगा। वह तो सत्यवती के पुत्र से झगड़ा कर सकता है न ! मैं अपनी पुत्री की संतान को विपत्ति में नहीं धकेलना चाहता।"

देवव्रत ने पिता को सुखी करने के लिए प्रतिज्ञा की, "निषादराज, मैं आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूंगा। मैं विवाह नहीं करूंगा, तो सन्तान भी नहीं होगी और संतान नहीं होगी, तो सत्यवती के पुत्रों के साथ किसी का विवाद भी नहीं होगा।"

इस भीष्म प्रतिज्ञा के कारण ही देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया। इस प्रतिज्ञा को सुनकर निषादराज को मारे प्रसन्नता के रोमांच हो आया और उसने तत्काल अपनी पुत्री महाराज शान्तनु को देने की स्वीकृति दे दी।

निषादराज ने अपनी पुत्री को देवव्रत के साथ हस्तिनापुर भेज दिया और राजा शान्तनु ने उसे पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया।

महाराज शान्तनु ने देवव्रत की पितृभक्ति पर प्रसन्न होकर उन्हें इच्छा-मृत्यु का वरदान दिया।

सत्यवती से शान्तनु के दो पुत्र हुए : चित्रांगद और विचित्रवीर्य। राजा शान्तनु का देहान्त होने पर चित्रांगद राजा बने और उनका भी शीघ्र ही देहावसान होने पर छोटे भाई विचित्रवीर्य को राज्य-शासन का अधिकार मिला। पर वह अभी तक वयस्क नहीं हुए थे अतः

महाराज शान्तनु और सत्यवती

माता सत्यवती के कहने से राज-काज को भीष्म ने ही संभाला।

भीष्म की विजय और विचित्रवीर्य का विवाह

जब विचित्रवीर्य की अवस्था विवाह योग्य हुई तो भीष्म अनुरूप कन्या खोजने लगे। इन्हीं दिनों उन्हें समाचार मिला कि काशिराज की कन्याओं—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का स्वयंवर होने वाला है। भीष्म ने इस स्वयंवर में सम्मिलित होने का निश्चय किया।

काशिराज की अत्यन्त रूपवती और गुणवती कन्याओं को चाहने वालों की काशी में भीड़ लगी हुई थी। देवव्रत भीष्म की अपनी प्रतिज्ञा और वीरता के कारण सब ओर धूम मची हुई थी। वे जब स्वयंवर-मण्डप में पहुंचे तो राजाओं ने समझा कि ये श्रीमान् ब्रह्मचर्य-व्रती स्वयंवर का तमाशा देखने आए होंगे। पर जब उन्हें पता लगा कि वे तो स्वयंवर में भाग लेने आए हैं तो वे उन पर तरह-तरह के व्यंग्यबाण छोड़ने लगे। भीष्म की अवस्था बढ़ चली थी। बाल पकने लगे थे। इसके अतिरिक्त वे प्रतिज्ञा कर चुके थे कि आजीवन ब्रह्मचारी रहेंगे। अब ये किस मुंह से यहां आए हैं। उधर काशिराज की कन्याएं भी अधेड़ अवस्था वाले भीष्म को देखकर एक ओर खिसक गईं। महाबली भीष्म इन अपमानजनक बातों से अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने काशिराज की तीनों कन्याओं को बलपूर्वक हरण करके अपने रथ पर बिठा लिया और स्वयंवर मण्डप में एकत्र राजाओं को ललकारते हुए बोले, "मैं इन कन्याओं को यहां से बलपूर्वक ले जा रहा हूं। तुममें से जिसकी भुजाओं में ताकत हो वह आगे आए, मुझे रोके।" यह कहकर उन्होंने सारथि को रथ हांकने की आज्ञा दी।

भीष्म की ललकार से राजाओं के स्वाभिमान को ठेस लगी। वे ताल ठोकते और दांत पीसते हुए भीष्म के रथ के पीछे दौड़ पड़े। पीछा करने वाले उन राजाओं से भीष्म ने अकेले ही घोर संग्राम किया और सबको परास्त कर दिया। वे विजयी होकर चले जा रहे थे कि महारथी शाल्वराज ने पीछे से आकर उन पर आक्रमण कर दिया। पहले आक्रमण में शाल्वराज का पलड़ा भारी रहा। भीष्म से कुछ देर पूर्व परास्त राजा, शाल्वराज की बड़ी प्रशंसा करने लगे। अब तो भीष्म के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने उसके घोड़ों और सारथि को तो मार ही डाला, पर उसे अधमुआ करके छोड़ दिया!

युद्ध समाप्त हुआ। भीष्म हस्तिनापुर पहुंचे। इन कन्याओं का हरण उन्होंने विचित्र-वीर्य के लिए किया था। उन कन्याओं के प्रति भीष्म का व्यवहार पुत्रवधू, बहन और पुत्री जैसा था। माता सत्यवती से परामर्श करके उन्होंने विचित्रवीर्य के विवाह की तैयारी प्रारंभ की। जब काशिराज की कन्याओं को पता चला कि उनका विवाह शीघ्र ही विचित्रवीर्य से होने वाला है तो उनमें सबसे बड़ी अम्बा भीष्म से बोली, "धर्मात्मा भीष्म! मैंने पहले से ही शाल्वराज को पति-रूप में वरण करने का संकल्प किया हुआ है। वे भी मन से मुझे भार्या स्वीकार कर चुके हैं और मेरे पिता की भी इस सम्बन्ध में सहमति है। इसलिए मेरा निवेदन है कि जो धर्मयुक्त हो, वैसा कीजिए।"

धर्मात्मा भीष्म ने अम्बा को पूर्व संकल्पित वर के पास जाने की अनुमति दे दी। शेष

दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विधिपूर्वक विचित्रवीर्य के साथ सम्पन्न हुआ। दो सुन्दरी और युवती पत्नियों को पाकर विचित्रवीर्य आमोद-प्रमोद में मग्न रहने लगे और परिणामस्वरूप विवाह के सात वर्ष बाद उन्हें राजयक्ष्मा रोग हो गया। बहुत चिकित्सा कराने पर भी वे स्वस्थ नहीं हुए और स्वर्ग सिधार गए।

सत्यवती को शान्तनु के वंश का उच्छेद होता दिखाई दिया तो उन्होंने भीष्म से आग्रह किया कि वह अपनी पहली प्रतिज्ञा को तोड़कर वंश-वृद्धि के लिए सन्तान-प्राप्ति का उपाय करें और राज्य को संभालें। पर दृढ़-प्रतिज्ञ भीष्म अपने प्रण से कब टलने वाले थे। उन्होंने माता सत्यवती को अपनी विवशता बताई और अपने प्रण पर डटे रहे।

धृतराष्ट्र और पाण्डु का जन्म

विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् अम्बिका और अम्बालिका ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। अम्बिका के पुत्र का नाम धृतराष्ट्र और अम्बालिका के पुत्र का नाम पाण्डु रखा गया। आगे चलकर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव और पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहलाए।

छोटी रानी अम्बिका की एक दासी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। इस बालक का नाम विदुर रखा गया। यही विदुर बाद में महात्मा विदुर कहलाए और अपने ज्ञान, सत्य-निष्ठा और श्रेष्ठ आचरण के कारण सबके मान्य बने। ये राजनीति और समाजशास्त्र में भी पारंगत थे।

दुर्भाग्यवश अम्बिका का पुत्र धृतराष्ट्र जन्म से अन्धा था। फिर भी भीष्म ने दोनों को राजकुमारों के योग्य शिक्षा दी। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार-राज की कन्या गान्धारी से हुआ। गान्धारी को जब पता लगा कि उसका भावी वर जन्मांध है तो उसने उसी समय अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। जिस नेत्रसुख से उसका पति वंचित था, वह सुख उस पति-व्रता को भी अभीष्ट नहीं था।

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। बड़े होने पर भी वे राज्य का शासन संभालने में असमर्थ थे। इसलिए राजगद्दी पर पाण्डु का ही अभिषेक हुआ।

महात्मा विदुर यद्यपि दासीपुत्र थे तथापि उन्हें धृतराष्ट्र और पाण्डु भाई की तरह ही मानते थे। भीष्म भी उन्हें बहुत चाहते थे।

कुन्ती को वर-प्राप्ति तथा कर्ण का जन्म

यदुवंशियों में राजा शूरसेन के एक कन्या थी। कन्या का नाम था पृथा। पृथा और वसुदेव भाई-बहन थे। शूरसेन की बुआ के पुत्र कुन्तीभोज के कोई सन्तान नहीं थी। अतः शूरसेन ने अपनी कन्या कुन्तीभोज को दे दी। कुन्तीभोज के घर जाकर पृथा का नाम कुन्ती पड़ गया। कुन्तीभोज ने कुन्ती को ब्राह्मणों और अतिथियों के आदर-सत्कार का कार्य सौंपा। कुन्तीभोज के यहां एक बार महर्षि दुर्वासा पधारे। दुर्वासा अपने उग्र स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे, फिर भी कुन्ती ने उनकी सेवा और सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की।

कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने उसे एक ऐसा मंत्र बताया जिसे पढ़कर वह किसी भी देवता का आह्वान कर सकती थी और पुत्र-प्राप्ति का वरदान पा सकती थी।

एक दिन किशोरी कुन्ती ने कौतूहलवश दुर्वासा द्वारा बताए मंत्र से भगवान सूर्य का आह्वान किया। मंत्र-शक्ति से भगवान सूर्य एक सुन्दर युवक के रूप में वहां आ उपस्थित हुए। कुन्ती उन्हें देखकर चकित रह गई। युवक ने बताया कि मैं सूर्य हूं और मंत्र द्वारा बुलाए जाने पर तुम्हें पुत्र का वरदान देने को उपस्थित हुआ हूं। अब तो कुन्ती डर के मारे कांपने लगी। वह बोली, "सूर्यदेव ! मैं अभी कन्या हूं। कौतूहलवश मंत्र का प्रयोग कर बैठी हूं। मैं आपसे दया चाहती हूं।"

सूर्यदेव उसे समझाते हुए बोले, "राजकुमारी ! मंत्र के प्रभाव से मेरा आगमन हुआ है। तुम मेरे ही समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दोगी। तुम्हें किसी प्रकार का कलंक नहीं लगेगा।"

कुमारी कुन्ती ने सूर्य के वरदान से एक बालक को जन्म दिया। यह तेजस्वी बालक जन्म से ही दिव्य कवच-कुण्डलों से युक्त था। यही बालक बाद में महादानी और महावीर कर्ण के नाम से विख्यात हुआ।

इस पुत्र को जन्म देने के बाद कुन्ती लोकनिन्दा के भय से कांप उठी। क्या करूं और क्या न करूं की स्थिति में उसने नवजात शिशु को चुपचाप जल में प्रवाहित कर दिया।

'जाको राखे साइयां मार सकै न कोय' की उक्ति चरितार्थ हुई और जल में प्रवाहित शिशु सारथि अधिरथ को मिल गया। वह उसे घर ले आया और अपनी पत्नी राधा को सौंपकर उसके लालन-पालन की व्यवस्था की।

पाण्डु का विवाह, दिग्विजय तथा शाप की प्राप्ति

कुन्ती विवाह योग्य हुई तो कुन्तीभोज ने उसका स्वयंवर समारोह रचा। कुन्ती ने स्वयंवर में महाराज पाण्डु का वरण किया।

इसके पश्चात् महाराज पाण्डु का दूसरा विवाह मद्रराज शल्य की बहन माद्री से सम्पन्न हुआ।

महात्मा विदुर का विवाह देवक राजा की कन्या परासवी से सम्पन्न हुआ।

माद्री से विवाह होने के एक मास पश्चात् महाराज पाण्डु भीष्म जी से अनुमति लेकर दिग्विजय के लिए निकले। उनके साथ विशाल चतुरंगिणी सेना चली। उन्होंने दशार्ण, मगध, मिथिला, काशी, सुह्म और पुण्ड्र राज्यों पर विजय प्राप्त की। महाराज पाण्डु जहां-जहां गए, वहां के राजाओं ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया और उन्हें बहुमूल्य उपहार भेंट किए।

महाराज पाण्डु दिग्विजय करके जब हस्तिनापुर लौटे तो उनका भव्य स्वागत हुआ।

दिग्विजय के समय उपहार में मिली बहुमूल्य वस्तुओं को महाराज पाण्डु ने भीष्म, सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका को बांट दिया। इसके अतिरिक्त महात्मा विदुर तथा अन्य बन्धु-बांधवों में भी वह धन वितरित किया गया।

एक दिन महाराज पाण्डु वन में शिकार खेलने गए हुए थे। उस वन में एक ऋषि पति-पत्नी हरिण और हरिणी के रूप में प्रमोद-मग्न थे कि पाण्डु ने अपने तीर से हरिण को मार

कुन्ती ने नवजात शिशु को चुपचाप जल में प्रवाहित कर दिया।

डाला। उनको क्या पता था कि ये ऋषि दम्पती हैं। हरिण रूपधारी ऋषि ने मरते-मरते पाण्डु को शाप दिया, "ऐ पाण्डु! कामक्रीड़ा करते तुमने मेरा वध किया है, अतः मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम जब भी कामक्रीड़ा में आसक्त होओगे, मृत्यु तुम पर आक्रमण करेगी। जैसा दुःख तुमने मुझे दिया है, वैसा ही तुम्हें भी मिलेगा।" शापग्रस्त महाराज पाण्डु राज-महल छोड़कर रानियों सहित वन में वास करने चले गए।

पांच पाण्डवों और सौ कौरवों का जन्म

ऋषि-शाप के कारण महाराज पाण्डु दाम्पत्य सुख का उपभोग नहीं करते थे, किन्तु सन्तान-प्राप्ति की उनकी बड़ी कामना थी। उनकी मनोकामना पूरी करने के लिए कुन्ती ने दुर्वासा द्वारा बताए मंत्र के प्रभाव से तीन पुत्र अपने द्वारा और दो माद्री द्वारा उत्पन्न कराए।

पाण्डवों में कुन्ती के तीन पुत्रों में से युधिष्ठिर सबसे बड़े थे। वे धर्मराज के वरदान से उत्पन्न हुए थे। भीम वायुदेव के वरदान से प्राप्त हुए थे और अर्जुन देवराज इन्द्र की कृपा से।

जब कुन्ती के तीन पुत्र हो गए और माद्री निःसन्तान रही तो उसने पाण्डु से कहलाकर कुन्ती को प्राप्त मंत्र द्वारा अश्विनीकुमारों का आवाहन किया। उनकी कृपा से माद्री के भी दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम नकुल और सहदेव रखा गया।

गान्धारी ने सौ पुत्रों और एक पुत्री को जन्म दिया। गान्धारी के सौ पुत्रों में यद्यपि दुर्योधन सबसे बड़ा था किन्तु पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर दुर्योधन से भी बड़ा था। हां, भीम और दुर्योधन का जन्मदिन एक ही था। गान्धारी की पुत्री का नाम था दुःशला।

धृतराष्ट्र की गान्धारी के अतिरिक्त वैश्य कुल कन्या एक अन्य पत्नी भी थी। उसने भी एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम युयुत्सु रखा गया।

दुर्योधन के छोटे भाई का नाम था दुःशासन।

पाण्डु की मृत्यु और पाण्डवों का बाल्यकाल

महाराज पाण्डु कुन्ती और माद्री के साथ वन में ही पांचों पुत्रों का लालन-पालन करने लगे। समय बीतता रहा। अर्जुन का चौदहवां वर्ष पूरा हुआ था। उस दिन मांगलिक कृत्यों का आयोजन किया गया। महारानी कुन्ती समारोह में व्यस्त थीं। वसन्त ऋतु का समय था। सारी वनश्री वसन्तागम से सुशोभित थी। महाराज पाण्डु माद्री को साथ लेकर वन-विहार के लिए निकल पड़े।

वन के शान्त एकान्त में, वसन्त ऋतु की मादक शोभा को निहारते पाण्डु और माद्री चहकते पंछियों, किल्लोल करते हरिणों और दूसरे पशु-पक्षियों को देखकर कामातुर हो उठे। माद्री के बार-बार समझाने पर भी वे नहीं माने। वासना के दुर्निवार आक्रमण से बुद्धि खो बैठे और ऋषि-शाप के कारण तत्काल उनकी वहीं मृत्यु हो गई।

देवी माद्री के दुःख का पारावार नहीं रहा। वही पति की मृत्यु का कारण बनी थीं।

वह पश्चात्तापस्वरूप पाण्डु के साथ ही चिता पर लेट गई और प्राण त्याग दिए। कुन्ती और पांचों पाण्डवों को भी इस मृत्यु से अकथनीय क्लेश हुआ। तपोवन के ऋषि-मुनियों ने कुन्ती को समझा-बुझाकर पुत्रों को लेकर राजधानी इन्द्रप्रस्थ लौट जाने को सहमत कर लिया।

महाराज धृतराष्ट्र ने राजोचित रीति से पाण्डु और माद्री के अन्तिम कृत्य पूरे किए, तत्पश्चात् कुन्ती पांचों पुत्रों सहित हस्तिनापुर को चली गई।

पोते की मृत्यु पर देवी सत्यवती और पुत्र की मृत्यु पर अम्बिका और अम्बालिका अत्यन्त दुःखी हुईं और करुण विलाप करने लगीं। उन्हें समझाते हुए महर्षि व्यास ने सलाह दी, "मां! आप अब और क्या-क्या देखने के लिए यहां रहना चाहती हैं! मुझे तो इस वंश का भविष्य बड़ा बुरा दिखाई देता है। आप क्यों नहीं इन दोनों पुत्रवधुओं को साथ लेकर तपस्या करने चली जातीं।"

सत्यवती ने व्यास जी का सुझाव मान्य किया और दोनों पुत्रवधुओं को लेकर तपस्या करने चली गई।

अब हस्तिनापुर में एक सौ एक कौरव और पांच पाण्डव एकसाथ रहने लगे।

सभी राजकुमारों के उपनयनादि संस्कार सम्पन्न हुए।

राजकुमारों में सबसे बड़े युधिष्ठिर बड़े सुशील और सौम्य स्वभाव के थे। वे सब भाइयों का ध्यान रखते। यद्यपि सारे राजकुमार हृष्ट-पुष्ट और बलवान् थे किन्तु पाण्डवों में भीम सबसे बढ़-चढ़कर था। वह खेलों में तो सबसे आगे रहता ही, ऊधम भी कम नहीं मचाता। वह अकेला ही सबको तंग करता। कभी दुःशासन और अर्जुन के सिरों को पकड़कर जोर से टक्कर करा देता। नदी में नहाने जाते पांच-सात को बगल में दबाकर डुबकी लगा देता तो उनके पेट में पानी भर जाता और दम घुटने लगता। कौरव फल तोड़ने के लिए किसी वृक्ष पर चढ़ते तो भीम वृक्ष के तने को पकड़कर जोर से हिला देता और वे गिरने लगते। वे उसे मना करते तब वह और भी जोर लगाता और वे पके फल की तरह नीचे गिर पड़ते। मल्ल-विद्या में तो भीम किसी को कुछ मानता ही नहीं था। कौरव भीम से और सभी पाण्डवों से खूब जलते थे पर उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाते थे। अकेला भीम उन सबको तंग करने के लिए बहुत था। भीम बचपन के शरारती स्वभाव के कारण ही ऐसा करता था। परन्तु उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष जैसी कोई बात नहीं थी। पर दुर्योधन मन ही मन भीम से खार खाने लगा था। वह शरीर-बल में तो भीम से पार पा नहीं सकता था, इसलिए अब छल-बल से नीचा दिखाना चाहता था। दुर्योधन ने दुःशासनादि अपने भाइयों से मंत्रणा की कि किसी तरह भीम को ठिकाने लगाया जाए। निश्चय हुआ कि जब कभी भीम सोया हुआ मिले, हम लोग उसे उठाकर गंगा में फेंक दें। इस तरह भीम से निबटने का उपाय उन्होंने सोच निकाला। वास्तव में दुर्योधन के मन में और ही बात थी। वह जानता था कि सबसे बड़ा होने से राज्य-सिंहासन पर बैठने का अधिकार युधिष्ठिर का है। पर वह इसे मानने को तैयार नहीं था। येन केन प्रकारेण वह राज्य का अधिकार चाहता था। पर उसे लगता था कि महाबली भीम के रहते उसकी इच्छा पूरी नहीं होगी। भीम ठिकाने लग जाए तो युधिष्ठिर और अर्जुन से वह निबट लेगा।

उसने गंगा में जाकर जलक्रीड़ा का कार्यक्रम बनाया। वहां तम्बू ताने गए। तरह-तरह के पकवान बनवाए गए और कौरव-पाण्डव जल-विहार के लिए वहां पहुंचे। वे मौज मनाने तो आए ही थे, इसलिए एक-दूसरे से छेड़-छाड़ होने लगी। भोजन करने बैठे तो स्वयं न खाकर दूसरों के मुंह में ग्रास देने लगे। यह खेल भी दुर्योधन की एक चाल थी। उसने भोजन में विष मिलाकर उसका ग्रास भीम के मुंह में ठूंस दिया। भीम तो प्रसिद्ध पेटू था। खाने-पीने में सबको मात दे देने वाला। वह उस भोजन को मजे से खा गया। दुर्योधन आज बड़े आग्रह के साथ अपने हाथ से भीम को भोजन परोस रहा था और हास-परिहास भी करता जाता था जिससे किसी को कुछ शंका न हो। दुर्योधन अपनी योजना की सफलता पर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था। उसे लग रहा था कि राजगद्दी हथियाने की उसकी योजना सफल होकर रहेगी। दिनभर जलक्रीड़ा करने, तैरने की प्रतियोगता आदि से सभी थक-थका गए थे। रात को भी वहीं रहने का कार्यक्रम था। थकान के साथ-साथ भीमसेन पर धीरे-धीरे विष का प्रभाव भी हो रहा था। वह ऐसा सोया जैसे निश्चेष्ट शव पड़ा हो।

दुर्योधन ने ऐसा दिखावा किया जैसे उसे नींद आ गई हो। किन्तु थोड़ी देर बाद यह निश्चय करके कि पाण्डव सो गए हैं, उसने दुःशासन को संकेत से उठाया और दोनों ने मिल-कर जंगली बेलों के जाल में लपेटकर अचेत भीम को गंगा के गहरे जल में ढकेल दिया। लताओं के जाल में ही लिपटे अचेतन भीम गंगा-प्रवाह के साथ बहने लगे। पानी में रहने वाले सर्पों ने भीम को खूब डसा। कहते हैं विष की औषध विष ही है। सर्पों के विष से भोजन में खाए विष का प्रभाव नष्ट हो गया और शरीर में पहले से विष उपस्थित होने के कारण सर्प-विष का प्रभाव भी भीम पर नहीं हुआ। गंगा के शीतल जल के प्रभाव से विष की दाहक शक्ति शान्त हो गई और बहुत दूर तक बहते रहने के बाद भीम की चेतना लौट आई। उसने नींद से जगे व्यक्ति की तरह आंखें खोल दीं।

उधर जब प्रातः पाण्डव जागे और प्रातः-कृत्यों से निवृत्त हो चुके तो उन्हें ध्यान आया कि भीम तो कहीं दिखाई नहीं देता। पूछ-ताछ प्रारंभ होने पर दुर्योधन ने झूठ-मूठ कह दिया कि वह तो अकेला ही नगर को लौट गया है। मैंने स्वयं उसे जाते देखा है। युधि-ष्ठिर ने इसे सच मान लिया। जब वे लौटकर हस्तिनापुर पहुंचे तो भीम वहां भी नहीं था। मां कुन्ती का कलेजा शंका से धक्-धक् करने लगा। भीम की खोज गंगा के तटवर्ती प्रदेश में होने लगी पर कहीं कुछ पता नहीं चला। कुछ दिन बीतने पर एक दिन भीमसेन अपनी मस्तानी चाल में झूमते-झूमते हस्तिनापुर आ पहुंचे। मां कुन्ती और पाण्डवों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। भीम ने दुर्योधन के छल-कपट का भण्डाफोड़ किया किन्तु युधिष्ठिर ने कहा, "यह बात बाहर के किसी आदमी को न बताई जाए और भविष्य में हम दुर्योधन की ओर से विशेष रूप से सावधान रहें। महात्मा विदुर भी पाण्डवों को समय-समय पर काम की बातें बताते रहते। उधर दुर्योधन का मामा शकुनि पाण्डवों का नाश करने में दुर्योधन का सलाहकार था।

कौरवों-पाण्डवों को खेलने-खाने के सिवा तो कुछ काम था नहीं, इसलिए वे उद्दंड होने लगे। दोनों पक्षों में छिपे हुए विद्वेष के कारण भी समस्या विकट होती जा रही थी। दुर्योधन

पाण्डवों के नाश के लिए कोई न कोई षड्यंत्र रचता रहता। पाण्डव हर घड़ी सहमे-से सावधान रहकर किसी तरह अपने प्राणों की सुरक्षा में यत्नशील रहते।

इस समस्या को सुलझाने के लिए महाराज धृतराष्ट्र ने कृपाचार्य को बुलाकर राजकुमारों की शिक्षा का भार उनको सौंप दिया। कृपाचार्य ने राजकुमारों को शास्त्र और शस्त्र की शिक्षा दी। इस पर भी पितामह भीष्म अपने पौत्रों को विशेष योग्यता-सम्पन्न बनाने के लिए किसी अन्य आचार्य की खोज करने लगे।

आचार्य द्रोण

आचार्य द्रोण मुनि भरद्वाज के पुत्र थे। उन्होंने अपने विद्वान् पिता से सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया था। भरद्वाज के शिष्य अग्निवेश ने द्रोण को आग्नेयास्त्र की शिक्षा दी थी। राजा पृषत्-पुत्र द्रुपद भी महात्मा भरद्वाज से शिक्षा पाता था और द्रोण के साथ खेलता-कूदता था। दोनों में मित्रता हो गई थी। द्रुपद ने द्रोण से प्रतिज्ञा की कि जब मैं राजा बनूंगा तो मेरा राज्य तुम्हारा भी राज्य होगा। पृषत् के देहावसान पर द्रुपद राज्य का उत्तराधिकारी बना। भरद्वाज भी कालान्तर में वैकुण्ठ सिधारे और द्रोण वहीं आश्रम में रहकर तपस्या करने लगे। युवावस्था में द्रोण ने कृपाचार्य की बहन कृपी से विवाह कर लिया और गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे। कृपी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम अश्वत्थामा रखा गया।

द्रोण अब भी शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास करते रहते। विद्याओं को सीखते रहने का उनका स्वभाव था।

इन्हीं दिनों धर्मात्मा द्रोण को समाचार मिला कि क्षत्रिय-कुलघातक महापराक्रमी भगवान परशुराम अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान करना चाहते हैं। यह जानकर कि परशुराम अनेक दिव्य शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता हैं और वे अपनी सारी विद्याएं बांट रहे हैं, आचार्य द्रोण उनसे शस्त्रास्त्रों की शिक्षा लेने पहुंचे। महेन्द्र पर्वत पर अवस्थित भगवान परशुराम का दर्शन करके द्रोण ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और अपना मन्तव्य बताया। परशुराम अब तक समस्त पृथ्वी का दान महर्षि कश्यप को दे चुके थे और धन-सम्पत्ति के नाम पर उनके पास कुछ भी शेष नहीं था। हां, अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान उनके पास था, वह उन्होंने द्रोण को सिखा दिया। यह ज्ञान पाकर द्रोण सफल मनोरथ हुए। शस्त्रास्त्रों में अब द्रोण की बराबरी करने वाला कौन था! यहां से आचार्य द्रोण अपने बालसखा द्रुपद के पास गए। द्रुपद राज्य पाकर अहंकारी हो गया था। 'प्रभुता पाई केहि मद नांही' उसे एक निर्धन ब्राह्मण के साथ मित्रता-सम्बन्ध मानने में अपमान मालूम हुआ। उसने कहा, "एक राजा और एक निर्धन ब्राह्मण की मैत्री नहीं हो सकती। मैत्री समानता वालों से ही होती है। राजा का मित्र कोई राजा ही हो सकता है।"

इस अपमानजनक व्यवहार से आचार्य द्रोण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने मन में द्रुपद से बदला लेने का निश्चय किया और वहां से कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर आ पहुंचे। वहां उनके साले कृपाचार्य थे ही। वे उन्हीं के पास रहने लगे।

एक दिन क्या हुआ कि समस्त कौरव-पाण्डव नगर से बाहर गिल्ली-डंडा खेल रहे थे कि गिल्ली एक कुएं में जा गिरी। खेल रुक गया। सभी राजकुमार कुएं की मुंडेर पर एकत्र

होकर भीतर झांकने लगे पर उन्हें गिल्ली निकालने का कोई उपाय नहीं सूझा। संयोग से आचार्य द्रोण वहां पास ही बैठे थे और सब कुछ देख रहे थे। उन्होंने राजकुमारों को फटकारते हुए कहा,' 'तुम कैसे क्षत्रिय राजकुमार हो जी ! तुम्हें तो कुछ भी नहीं आता-जाता ! एक गिल्ली को कुएं से नहीं निकाल सकते तो और क्या कर सकोगे !" फिर उन्होंने अपनी अंगुली से अंगूठी निकाली और कुएं में फेंककर बोले, "देखो, मैं अभी इस अंगूठी और गिल्ली को तुम्हारे सामने निकालता हूं।" उन्होंने एक सींक से गिल्ली को बींधा। फिर दूसरी सींक से पहली सींक को और इसी तरह जब सींक ऊपर तक आ पहुंची तो उसे खींच लिया जिससे गिल्ली भी खिची चली आई। फिर उन्होंने अंगूठी को बाण से बींधा और उसे भी निकाल लिया। सारे राजकुमार इस दुबले-पतले किन्तु चमत्कारी ब्राह्मण को देखकर विस्मित रह गए। उन्होंने नाम-धाम पूछा। पर उन्होंने कहा कि तुम भीष्म पितामह को आज की सारी घटना सुना दो, वे जान जाएंगे कि मैं कौन हूं। यही हुआ। कुमारों की बात सुनकर भीष्म समझ गए कि आचार्य द्रोण का ही यह काम है। भीष्म जी स्वयं जाकर सम्मानपूर्वक आचार्य द्रोण को ले आए और कौरवों-पाण्डवों को शस्त्रास्त्रों की विशेष शिक्षा देने का भार उन्हें सौंपा।

पाण्डवों की शिक्षा और एकलव्य की गुरुभक्ति

हस्तिनापुर में आचार्य द्रोण द्वारा कौरव-पाण्डव राजकुमारों की शस्त्रास्त्र शिक्षा प्रारंभ करने पर अन्य क्षत्रिय पुत्र भी शिक्षा के लिए आने लगे। वृष्णि तथा अंधक वंश के कुमार, सूतपुत्र कर्ण आदि भी उनसे शिक्षा लेने लगे। जिस लग्न, परिश्रम और चाव से अर्जुन नये-नये युद्धास्त्रों का अभ्यास कर रहा था, उससे लगता था कि वह एक दिन सबसे आगे बढ़ जाएगा। उसकी फुर्ती, लक्ष्य पर मार करने की शक्ति अद्भुत थी। कर्ण अर्जुन के इन्हीं गुणों के कारण उससे खार खाने लगा था। क्योंकि दुर्योधन भी अर्जुन की उन्नति से जलता था, इसलिए कर्ण और दुर्योधन में मित्रता हो गई थी। दुर्योधन का सहारा पाकर कर्ण पाण्डव-कुमारों का अपमान करने से नहीं चूकता था।

आचार्य द्रोण चाहते थे कि अश्वत्थामा को दूसरों से कुछ अधिक सिखा दूं। वे अवसर मिलने पर अश्वत्थामा को कुछ सिखाने भी लगे। अर्जुन को इस बात का पता चल गया। अब तो वह हर घड़ी अश्वत्थामा के साथ ही रहता और आचार्य द्रोण की अधिक सेवा करने का प्रयत्न करता ताकि वे उसे सारी विद्या सिखा दें।

एक दिन अर्जुन भोजन कर रहा था कि दीपक बुझ गया। वह अंधेरे में ही भोजन करता रहा। उसके मन में विचार आया कि यदि अभ्यास के कारण अंधेरे में भी हाथ मुख में ग्रास पहुंचा सकता है तो अभ्यास करके रात के अंधेरे में भी लक्ष्य पर बाण मारा जा सकता है। उस दिन से अर्जुन रात के अंधेरे में भी बाण चलाने का अभ्यास करने लगा। एक रात को द्रोण ने अर्जुन को अभ्यास करते देख लिया। वे उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे छाती से लगा लिया। उन्होंने इस योग्य शिष्य को अपनी समस्त विद्या सिखाने का निश्चय किया। उन्होंने अर्जुन से कहा, "मैं तुम्हें ऐसे-ऐसे करतब सिखाऊंगा कि संसार में दूसरा कोई तुम्हारी समानता न कर सके।" उस दिन से आचार्य द्रोण अर्जुन पर विशेष ध्यान

देने लगे। उन्होंने उसे घोड़ों, हाथियों, रथों पर चढ़कर तथा भूमि पर खड़े होकर युद्ध करना सिखाया। एक ही साथ अनेक शस्त्रों के प्रयोग की विधि तथा अकेले ही अनेक शत्रुओं से युद्ध करने की शिक्षा दी।

तदनन्तर एक दिन निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य आचार्य द्रोण के पास शिक्षा ग्रहण करने आया। किन्तु निषाद जाति का होने के कारण आचार्य ने उसे शिक्षा देना अस्वीकार कर दिया। निराश एकलव्य वापस वन में लौट आया और आचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसे ही अपना गुरु समझकर धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। निरन्तर अभ्यास के कारण एकलव्य की धनुर्विद्या में गहरी पैठ हो गई।

एक दिन कौरव और पाण्डव राजकुमार शिकार खेलने वन में गए। नगर से एक कुत्ता भी उनकी टोली के साथ वन में जा पहुंचा। वह कुत्ता घूमता-घामता एकलव्य के पास जा पहुंचा। काला मृगचर्म ओढ़े, काले-कलूटे एकलव्य को देखकर कुत्ता भौंकने लगा। एकलव्य ने सात बाण मारकर कुत्ते के मुंह में ऐसे ठूंस दिए कि उसका मुंह भर गया और भौंकना बन्द हो गया। कुत्ता इसी तरह लौटकर पाण्डवों के पास पहुंचा। उसे देखकर पाण्डव वीर चकित रह गए। बाण चलाने में ऐसा कमाल तो अर्जुन भी नहीं दिखा सकता था। वे उस अज्ञात बाण चलाने वाले को वन में खोजने लगे।

थोड़ी दूर बाण-विद्या का अभ्यास करता एकलव्य उन्हें दिखाई दिया। पाण्डवों ने उसका नाम-धाम पूछा तो उसने कहा कि मैं निषाद राज हिरण्यधनु का पुत्र, द्रोणाचार्य का शिष्य एकलव्य हूं।

पाण्डव वन से नगर में लौट आए तो उन्होंने वह घटना आचार्य द्रोण को सुनाई। फिर अर्जुन ने अकेले में आचार्य जी को उलाहना देते हुए कहा कि आप तो कहते थे कि मेरा कोई शिष्य तुमसे बढ़कर नहीं होगा फिर यह एकलव्य कैसे मुझसे भी आगे बढ़ गया ?

कुछ सोचकर द्रोणाचार्य अर्जुन को लेकर वन में एकलव्य के पास पहुंचे। एकलव्य ने उनके चरण छुए और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब आचार्य द्रोण ने कहा, "वीर एकलव्य, यदि तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे गुरु-दक्षिणा दो।"

यह सुनकर एकलव्य बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "गुरुदेव ! आज्ञा दें कि गुरु-दक्षिणा में क्या भेंट करूं ?"

द्रोणाचार्य ने कहा, "तुम मुझे अपने दाहिने हाथ का अंगूठा दे दो।"

गुरु की ऐसी कठोर बात सुनकर भी एकलव्य ने प्रसन्नता से अपना दाहिना अंगूठा काटकर आचार्य को दे दिया। किन्तु अब बाण चलाने में वह पहले जैसा कमाल दिखाने में असमर्थ हो गया। अर्जुन को एकलव्य का अंगूठा कट जाने से बड़ा सन्तोष हुआ क्योंकि अब एकलव्य अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकता था।

राजकुमारों की परीक्षा

शिक्षा में किस की कितनी प्रगति हुई है, इस की जांच करने के लिए आचार्य द्रोण ने परीक्षा लेने का निश्चय किया। यद्यपि सभी को शिक्षा एक साथ होती थी तो भी रुचिभेद

से और योग्यता-भेद से दुर्योधन और भीमसेन गदायुद्ध में योग्य निकले। आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा धनुर्विद्या के गूढ़ रहस्यों को जानने में सबसे आगे थे। नकुल-सहदेव खड्गयुद्ध में बढ़-चढ़कर थे। युधिष्ठिर रथ पर से युद्ध करने में चतुर थे। परन्तु जहां तक वीर अर्जुन का सम्बन्ध है, वह सारी युद्ध-विद्याओं में प्रवीण था। गुरु-आज्ञा-पालन और गुरुसेवा में भी वह सबसे आगे था। बुद्धि, मन की एकाग्रता, बल और उत्साह के कारण अर्जुन की बराबरी कोई नहीं कर सकता था। कौरव दुर्विनीत, पाण्डवों से ईर्ष्या करने वाले और स्वभाव के क्रूर थे। पाण्डव विनम्र, उदार और परोपकारी थे।

परीक्षा का समय-स्थान द्रोणाचार्य जी ने निश्चित कर दिया। कारीगरों से एक नकली गीध बनवाकर उन्होंने वृक्ष की चोटी पर रख दिया। द्रोणाचार्य ने सभी शिष्यों को आज्ञा दी कि अपने-अपने धनुष-बाण लेकर परीक्षा के लिए तैयार हो जाओ। उन्होंने कहा, "मैं एक-एक करके सबको बुलाऊंगा, तुम्हें इस गीध के सिर का निशाना साधना है।"

युधिष्ठिर सबसे बड़ा था। पहले उसे ही बुलाया गया। आचार्य ने कहा, "जब मैं कहूंगा, तब बाण छोड़ना।" जब युधिष्ठिर ने निशाना साध लिया तो आचार्य ने पूछा, "युधिष्ठिर! वृक्ष की चोटी पर बैठे गीध को देखते हो न?"

"हां भगवन! देख रहा हूं।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

फिर पूछा, "क्या तुम्हें वृक्ष, मैं और अपने भाई भी दिखाई दे रहे हैं?"

युधिष्ठिर बोला, "जी हां, सभी कुछ दिखाई दे रहा है।"

आचार्य अप्रसन्न हो गए। उन्होंने युधिष्ठिर को झिड़कते हुए कहा, "हट जाओ! यह काम तुम्हारे बस का नहीं है।" इसके बाद दुर्योधनादि को बुलाया और 'हम सब कुछ देख रहे हैं।' यह कहने पर झिड़ककर पीछे हटा दिया। अन्त में अर्जुन की बारी आई। आचार्य ने कहा, "निशाना साधकर तैयार हो जाओ और मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करो।" कुछ क्षण बाद आचार्य ने पूछा, "क्या तुम वृक्ष की चोटी पर बैठे गीध को, वृक्ष को और मुझे भी देखते हो?"

"मैं केवल गीध को देखता हूं। वृक्ष को अथवा आपको नहीं।" अर्जुन ने निशाना साधे-साधे कहा।

क्षणभर बाद आचार्य ने पूछा, "अर्जुन! तुम गीध को देखते हो तो बताओ उसके अंग कैसे हैं?"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं गीध के सिर मात्र को देख रहा हूं। उसके पूरे शरीर को नहीं।"

आचार्य ने जोर से कहा, "चलाओ बाण।" और बाण के छूटते ही गीध का सिर कटकर नीचे गिर पड़ा। द्रोण ने अपने प्रिय और योग्य शिष्य अर्जुन को छाती से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

राजकुमारों का अस्त्र-कौशल और दीक्षा

जब आचार्य द्रोण ने देखा कि कौरव और पाण्डव अस्त्र-विद्या की शिक्षा समाप्त कर चुके तो उन्होंने महर्षि व्यास, भीष्म पितामह और विदुर की उपस्थिति में महाराज धृतराष्ट्र से कहा, "राजन्! राजकुमारों की अस्त्र-शस्त्र शिक्षा पूरी हो चुकी। अब कोई दिन

गीध के सिर का निशाना लगाता अर्जुन

निश्चित करके उन्हें अपनी अस्त्र-कला का प्रदर्शन करने का अवसर प्रदान करें।"

धृतराष्ट्र इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और द्रोणाचार्य से बोले, "आचार्यवर! दिन, स्थान और समय का निश्चय आप स्वयं ही करें। हां, और जो तैयारी इस समारोह की करनी हो, उसके लिए मुझे निर्देश दीजिए ताकि मैं आपकी मनचाही व्यवस्था कर दूं। मैं अभागा अपने पुत्रों के अस्त्रकौशल को भी नहीं देख सकूंगा।" धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर को द्रोणाचार्य के कहे अनुसार समस्त व्यवस्था करने को कहा।

एक समतल भूमि में रंगमण्डप तैयार किया गया। दर्शकों के लिए सुन्दर पीठासन बनाए गए। स्त्रियों के बैठने के लिए अलग व्यवस्था हुई। निश्चित दिन को, निश्चित समय पर राजपरिवार के समस्त सदस्य, राज्य के अधिकारी, गण्य-मान्य नागरिक और अनेक भद्रजन प्रदर्शन देखने आ बैठे। गांधारी-कुन्ती भी अपने पुत्रों के करतब देखने आईं।

मंगलवाद्य और रणवाद्य बज रहे थे। इसी समय श्वेत वस्त्र धारण किए द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ रंगभूमि में प्रवेश किया। उन्होंने श्वेत चन्दन लगा रखा था और गले में श्वेत पुष्पों की माला थी। उनकी दाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल भी सफेद थे। स्वस्ति-वाचन के साथ कार्यारंभ हुआ। सारे शिष्य अपने-अपने रथों में, युद्ध की वेश-भूषा में सुसज्जित होकर रंग-मण्डप में आए। राजकुमारों ने आचार्य द्रोण और कृपाचार्य का अभिवादन किया। राजकुमारों ने अस्त्र-शस्त्रों की लाल पुष्पों से पूजा की और आचार्य की आज्ञा पाकर वे अद्भुत अस्त्रकौशल दिखाने लगे। दर्शक बार-बार तालियां बजाते और वाह-वाह करते। पैंतरेबाजी, रथ को विविध गतियों में चलाना, घोड़ों की पीठ पर बैठे-बैठे लड़ना, ढाल-तलवार से लड़ना, मल्लयुद्ध आदि विविध युद्ध-विधियों का प्रदर्शन लोगों ने देखा।

इसके बाद दुर्योधन और भीम गदायुद्ध का प्रदर्शन करने लगे। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को और देवी कुन्ती रानी गांधारी को सब कुछ बताती जाती थीं।

जब भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध होने लगा तो दर्शकगण जैसे दो पक्षों में बंट गए। कुछ भीम को उत्साहित करते और कुछ दुर्योधन को। बड़ा हो-हल्ला मचने लगा। स्थिति को बिगड़ते देखकर आचार्य ने अश्वत्थामा से कहा कि जाकर दोनों को रोक दो। अश्वत्थामा ने जाकर दोनों को गुरु का आदेश सुनाया तो प्रदर्शन रुक गया।

इसके बाद आचार्य द्रोण ने अर्जुन की बड़ाई करते हुए उसे रंगभूमि में उतारा। आचार्य द्रोण अर्जुन की बड़ाई करते अघाते नहीं थे। दर्शक बार-बार तालियां बजा रहे थे और माता कुन्ती के आनन्दाश्रु और स्तनों से दूध बहने लगा था।

अर्जुन ने अपना अस्त्रकौशल दिखाना प्रारम्भ किया, "पहले उसने आग्नेयास्त्र से आग पैदा की, फिर वरुणास्त्र से जल उत्पन्न करके वह आग बुझा दी। वायव्यास्त्र से आंधी चला दी और पर्जन्यास्त्र से बादल पैदा कर दिए। और तब दर्शकों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब अन्तर्धानास्त्र के द्वारा अर्जुन एकाएक रंगभूमि से अदृश्य हो गया। अर्जुन कभी तो दर्शकों को बड़ा लम्बा दिखाई देता और कभी एकदम छोटा। वह अभी रथ में खड़ा होता और पलक झपकते रथ के घुरे पर। वह अभी धरती पर दिखाई देता और दूसरे क्षण रथ पर। रंगभूमि में एक लोहे का सूअर रखा गया था जो चारों ओर घूमता रहता था। अर्जुन ने उसके मुंह में एक साथ पांच बाण ऐसे कौशल से मारे कि वे पांचों बाण

एक-दूसरे से बिना छुए मुंह में गड़ गए। इस तरह तलवार, धनुष-बाण और गदा के जब अनेक अद्‌भुत करतब अर्जुन दिखा चुका तो तोरण-द्वार की ओर मेघ-गर्जन जैसा शब्द सुनाई दिया। सभी दर्शक द्वार की ओर उत्सुकता से देखने लगे। दर्शकों ने देखा कि दिव्य कवच और कुण्डलधारी वीर कर्ण हाथ में धनुष थामे और कमर में तलवार बांधे चला आ रहा है। उसने रंगमण्डप में आकर आचार्य द्रोण और कृपाचार्य को रूखा-सा प्रणाम किया। इतने में कर्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा, "अर्जुन ! तुमने अभी जो करतब दिखाए हैं, मैं उनसे भी बढ़-चढ़कर करतब दिखाऊंगा। इसलिए ज्यादा छाती मत फुलाओ।"

कर्ण की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि दर्शक अपने-अपने आसनों से उठ खड़े हुए। कर्ण की ललकार से दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ किन्तु अर्जुन के मन में कुछ लज्जा और कुछ क्रोध उत्पन्न हुआ। कर्ण ने आचार्य द्रोण से आज्ञा लेकर रंगभूमि में वे सब करतब कर दिखाए जो अर्जुन पहले दिखा चुका था।

दुर्योधन ने कर्ण को छाती से लगाते हुए उसका अभिनन्दन किया और कहा, "मित्र ! हम तुम्हारी मित्रता पाकर अपने को बड़ा सौभाग्यशाली मानते हैं। कौरवों का यह राज्य तुम्हारा अपना राज्य है। स्वेच्छा से इसका उपभोग करो।"

कर्ण ने कहा, "मित्र ! आपने जो कुछ कहा, वह सब पूरा कर दिया, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं आपकी मित्रता से धन्य हुआ। हां, अर्जुन के साथ मेरी दो-दो हाथ करने की बड़ी इच्छा है।"

अर्जुन सब देख-सुन रहा था। वह कर्ण को सम्बोधित करते हुए बोला, "बिना बुलाए आने वालों और बिना कहे बोलने वालों की जो गति होती है, मेरे द्वारा मारे जाने पर तेरी वही गति होगी।"

कर्ण ने कहा, "वाह ! यह रंगमण्डप तो उन सबके लिए है जो वीर हैं। धर्म भी बल का अनुसरण करता है, समझे। एक दूसरे पर आक्षेप करना दुर्बलों का काम है। दम है तो आ और बाणों से बात कर ! मैं आज तुम्हारे गुरु के सामने ही तुम्हारा सिर धड़ से अलग करूंगा।"

अर्जुन ने आचार्य द्रोण की आज्ञा ली और युद्ध के लिए कर्ण की ओर बढ़ा। दुर्योधनादि सभी कौरव कर्ण के पक्षधर बन गए और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह आदि अर्जुन की ओर हो गए।

अपने दोनों पुत्रों को आपस में लड़ने-मरने को तैयार देखकर कुन्ती का सिर चकराने लगा और मूर्च्छा आ गई। पानी के छींटे देने से उनकी चेतना तो लौट आई पर चिन्ता दूर नहीं हुई।

रंग में भंग पड़ते देखकर कृपाचार्य ने कर्ण से कहा, "पहले तुम अपने कुल-वंश का परिचय दो, क्योंकि समान कुलशील वालों में ही युद्ध होना चाहिए।"

कृपाचार्य की यह बात सुनते ही कर्ण का सिर मारे लज्जा के झुक गया।

इस स्थिति को संभालते हुए दुर्योधन ने कहा, "उत्तम कुल में उत्पन्न, शूरवीर और सेनापति—वीरों की ये तीन श्रेणियां हैं। और कर्ण शूरवीर होने के कारण मान्य है। यदि आपको यह स्वीकार न हो तो मैं अभी, इसी समय कर्ण को अंगदेश के राज्य पर अभिषिक्त

करता हूं।" और दुर्योधन ने झटपट राजा धृतराष्ट्र एवं भीष्म से स्वीकृति लेकर कर्ण का राज्याभिषेक कर दिया।

कर्ण ने दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "आपने मुझे जो यह राज्य और सम्मान प्रदान किया है, कहिये इसके बदले मैं आपको क्या भेंट दूं?"

दुर्योधन ने कहा, "इसके बदले मुझे तुम्हारी आजीवन मित्रता के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।"

कर्ण ने कहा, "ऐसा ही होगा।" और फिर दोनों एक-दूसरे के गले मिले।

इतने में लाठी टेकता हुआ अधिरथ, पसीने से लथपथ, कांपता और गिरती चद्दर को संभालता हुआ रंगभूमि में आया।

अपने पालक पिता अधिरथ को देखते ही कर्ण धनुष छोड़कर सिंहासन से नीचे उतर आया। उसका मस्तक अभिषेक-जल से अभी भीगा हुआ ही था। उसने अधिरथ के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। अधिरथ ने स्नेह से व्याकुल होकर 'बेटा-बेटा' कहते कर्ण को उठाकर छाती से लगा लिया और आनन्दाश्रुओं से उसके मस्तक को दुबारा भिगो दिया।

अधिरथ को देखते ही भीमसेन समझ गया कि कर्ण रथ हांकने वाले का बेटा है। वह कर्ण का अपमान करने के उद्देश्य से हंसकर बोला, "अरे ओ सूतपुत्र कर्ण! तू तो इस योग्य भी नहीं कि अर्जुन के हाथ से मारा जाए। जा, चाबुक हाथ में ले और घोड़े हांक।"

भीमसेन के यों कहने पर कर्ण ने लम्बी सांस ली और उदास होकर आकाश की ओर देखने लगा। इसी समय दुर्योधन क्रोध में उबलता हुआ अपने भाइयों के बीच से निकलकर आगे बढ़ा। वह भीमसेन से बोला, "भीमसेन! तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। वीरों का बड़प्पन बल से होता है, कुल से नहीं। जन्म की बात पर जाते हो तो तुम सब भाइयों का जन्म जिस तरह हुआ, वह मुझसे छिपा नहीं है। कर्ण जैसा वीर समूची पृथ्वी का स्वामी होने की योग्यता रखता है। और सुन लो, जिस किसीको मेरा यह व्यवहार सहन न होता हो, वह अपने धनुष की डोरी चढ़ाकर हमसे निबट ले।"

यह सुनते ही दर्शक दुर्योधन की वाहवाही करने लगे, और ऐसी संभावना दिखने लगी कि अभी दोनों में युद्ध हो पड़ेगा। इतने में सूर्य अस्त हो गया। दुर्योधन ने कर्ण का हाथ पकड़ा और दोनों रंग-मण्डप से बाहर निकल गए। पाण्डव और गुरुजन यथास्थान चले गए। दर्शकों में से बाहर जाते कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की बड़ाई कर रहे थे।

कुन्ती ने पहचान लिया था कि यह कर्ण, पानी में प्रवाहित मेरा ही पुत्र है, परन्तु इस बात को वह किसी से प्रकट नहीं कर सकी। उधर कर्ण को मित्र बनाकर दुर्योधन के मन से अर्जुन की वीरता का भय दूर हो गया। कर्ण के आज के प्रदर्शन से युधिष्ठिर को भी यह विश्वास हो गया कि इस धरती पर कर्ण के समान कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है।

कौरवों-पांडवों की गुरुदक्षिणा

कौरवों तथा पाण्डवों को अस्त्रविद्या में कुशल देखकर द्रोणाचार्य के मन में बड़ी

प्रसन्नता हुई। अब उनका गुरुदक्षिणा लेने का समय आ रहा था। राजकुमारों से क्या गुरु-दक्षिणा लें, इस बारे में उन्होंने मन में कुछ निश्चय कर लिया। उन्होंने सारे शिष्यों को बुलाकर कहा, "प्रिय शिष्यो ! मेरी दी हुई अस्त्र-विद्या का प्रयोग करके पांचाल देश के राजा द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे सामने उपस्थित करो, यही मेरे लिए सर्वोत्तम गुरुदक्षिणा होगी।"

गुरु-आज्ञा पाकर सब राजकुमार शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर, अपने रथों पर बैठकर द्रुपद पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़े। आचार्य द्रोण भी उनके साथ चले।

दुर्योधनादि कौरव राजकुमार 'पहले मैं युद्ध करूंगा, पहले मैं युद्ध करूंगा' कहते हुए आगे निकल गए और नागरिकों को मारते-भगाते द्रुपद की राजधानी में घुसकर मार-काट मचाने लगे। राजा द्रुपद इस आक्रमण का सामना करने के लिए दल-बल सहित निकल पड़े और लड़ाई होने लगी। पाण्डव राजकुमार अभी नगर से बाहर ही थे कि द्रुपद ने कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन आदि को बाणों से बींध डाला। भागती कौरव सेना को नगरवासियों ने पत्थर, डंडों और मूसलों से पीटना प्रारंभ कर दिया। बालक-बूढ़े सभी नागरिक कौरव सेना का सामना कर रहे थे। कौरवों के पिटने और भागने का समाचार सुनकर पाण्डव शीघ्रता से आक्रमण के लिए दौड़ पड़े। अर्जुन ने युधिष्ठिर को युद्ध में भाग लेने से रोक दिया।

भीमसेन अपनी गदा से गज-सेना पर टूट पड़े। अर्जुन ने सीधे द्रुपद पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन छलांग लगाकर द्रुपद के रथ पर जा चढ़ा और उसे बन्दी बना लिया। द्रुपद की सेना भाग खड़ी हुई। कौरव सेना द्रुपद के नगर में विध्वंस मचाने लगी तो अर्जुन ने भीमसेन से कहकर सबको रोक दिया। अर्जुन ने कहा, "हमें केवल द्रुपद को गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरु को सौंप देना है। वे हमारे सम्बन्धी हैं। व्यर्थ का विनाश करने की आवश्यकता नहीं।"

अर्जुन ने बन्दी द्रुपद को द्रोणाचार्य के सामने उपस्थित किया। द्रोणाचार्य ने कहा, "द्रुपद डरो मत ! मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूं। तुम तो मेरे बाल मित्र हो। मैं अब भी तुमसे मैत्री करना चाहता हूं। स्मरण करो, तुमने कहा था, 'जो राजा नहीं, वह राजा का मित्र नहीं हो सकता। इसीलिए, तुम्हारी मित्रता पाने के लिए मैंने तुम्हारा राज्य जीता है, और यदि मैं सारा राज्य ले लूं तो भी तुम्हारे कथनानुसार मेरी तुम्हारी मित्रता नहीं हो सकेगी क्योंकि तब तुम राजा नहीं रहोगे। इसलिए मैं इसमें से आधा राज्य तुम्हें लौटाता हूं। अब तुम भी राजा हो और मैं भी राजा। ठीक समझो तो मुझे अपना मित्र मानो।"

द्रोणाचार्य के उदार व्यवहार से द्रुपद बड़ा प्रभावित हुआ और फिर से दोनों मित्र बन गए।

युधिष्ठिर को युवराज पद

एक वर्ष बीतने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर का युवराज पद पर अभिषेक कर दिया। युधिष्ठिर ने अपने शील और सदाचार से सबका मन मोह लिया। भीमसेन कृष्ण के बड़े भैया बलराम जी से खड्गयुद्ध, गदायुद्ध और रथयुद्ध की शिक्षा लेने लगे। अर्जुन में अद्भुत फुर्ती,

निशाने पर चोट करने की योग्यता थी। एक दिन द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा, "मैंने तुम्हें ब्रह्मशिरा नामक दिव्यास्त्र प्रदान किया है। इसे कभी दुर्बल पर मत चलाना। इस अस्त्र के बदले में मैं तुमसे एक और गुरुदक्षिणा चाहता हूं।"

अर्जुन ने कहा, "गुरुदेव ! आज्ञा कीजिए, क्या सेवा करूं ?"

द्रोणाचार्य ने कहा, "मुझे वचन दो कि युद्ध में, मैं भी तुम्हारे विरुद्ध लड़ूं तो तुम मेरा सामना करोगे। यही मेरी दूसरी गुरुदक्षिणा है।"

अर्जुन ने गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया। अर्जुन ने सौवीर नरेश और यूनान नरेश को जीतकर अपने अधीन कर लिया। उसने पूर्व और दक्षिण दिशा के अनेक राज्यों को मिलाकर अपने राज्य की वृद्धि की।

लाक्षागृह

युधिष्ठिर के युवराज पद पर अभिषिक्त होने और भीम तथा अर्जुन के परमवीर होने के कारण दुर्योधन उनसे जलने लगा। उसका मामा शकुनि उसका सलाहकार था और कर्ण उसका गहरा मित्र था। ये तीनों मिलकर पाण्डवों के नाश के उपाय सोचते रहते। उधर महात्मा विदुर यद्यपि धृतराष्ट्र के सलाहकार थे, पर वे समय-समय पर पुण्यशील पाण्डवों की भलाई के लिए प्रयत्न करते रहते। पाण्डवों के गुणों से नागरिकों में भी वे लोग प्रिय थे। जहां चार नागरिक इकट्ठे होते वहीं चर्चा चलती कि अब राजकाज युधिष्ठिर को सौंप दिया जाना चाहिए। जब अन्धे होने के कारण धृतराष्ट्र पहले ही राज्य के अयोग्य समझे गए तो अब वे राज्य कैसे संभाल सकते हैं ! भीष्म पहले ही राज्य को ठुकरा चुके हैं। अतः अब युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होना चाहिए।

इस तरह की बातें जब दुर्योधन के कानों तक पहुंचतीं तो वह नीच-प्रकृति ईर्ष्या की आग से जलने लगता। एक दिन वह धृतराष्ट्र के पास जाकर बोला, "पिताजी, नगर-निवासी आपको राज्य-सिंहासन से उतारकर युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहते हैं। इस तरह तो हम कहीं के न रहेंगे। इसलिए कोई ऐसा उपाय कीजिए कि राज्य का अधिकार हमारे ही पास रहे। आप यदि कुछ समय के लिए पाण्डवों को राजधानी से दूर भेज दें तो यहां उनकी लोकप्रियता समाप्त हो जाएगी।" धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति वैसा दुर्भाव नहीं था किन्तु पुत्रों से ऐसा मोह था कि उनकी बात टाल नहीं पाते थे। स्वर्गीय राजा पाण्डु और युधिष्ठिर उनका बड़ा सम्मान करते थे, इस कारण भी वे पाण्डवों का बुरा करने को प्रस्तुत नहीं थे। साथ ही पाण्डवों के साथ अन्याय होने पर प्रजा भी विरोध और विद्रोह कर सकती थी।

दुर्योधन ने कहा, "कोष और मंत्रिमंडल हमारे अधीन है। अश्वत्थामा हमारे साथ है तो आचार्य द्रोण भी इधर ही रहेंगे। फिर भानजे और बहनोई के विरुद्ध कृपाचार्य भी नहीं जाएंगे। रह गए विदुर। उनके आर्थिक हित हमारे साथ जुड़े हुए हैं। वैसे मन से वे पाण्डवों के साथ हैं। पर वे अकेले कर ही क्या सकते हैं। आप किसी तरह पाण्डवों को यहां से भेजिए। उनकी ख्याति कांटे की तरह मेरे हृदय में चुभती है।"

धृतराष्ट्र ने वारणावत नगर की सुन्दरता, समृद्धि और भगवान् शंकर की पूजा के

उसके बाद लाक्षागृह से सुरंग के रास्ते पांचो पांडव कुन्ती सहित बाहर निकल आए।

लिए जुटने वाले अभूतपूर्व मेले की चर्चा कई लोगों द्वारा पांडवों तक पहुंचाई जिससे वे वहां जाने के लिए तैयार हो जाएं। फिर उन्होंने सीधे पांडवों से कहा कि यदि वारणावत का उत्सव देखना चाहते हो तो जाओ।"

युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की चाल को समझ रहे थे फिर भी उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया।

उधर दुर्योधन ने अपने एक विश्वस्त मंत्री पुरोचन को कहा कि वारणावत में एक ऐसा सुन्दर भवन बनवाओ, जिसकी दीवारों में ज्वलनशील पदार्थ लगे हों। लाख, राल, घी, तेल, चर्बी और लकड़ी का ऐसा उपयोग उसमें करो कि देखने वाले को पता न चले। जब पांडव उसमें रहने लगें तो रात को उसमें आग लगा देना। पांडवों के जल मरने पर प्रजा समझेगी कि अपने ही घर की आग में जलकर वे मर गए। फिर उनकी मृत्यु के लिए कोई हमें दोषी नहीं ठहराएगा। पुरोचन दुर्योधन का मनचाहा पूरा करने के लिए पांडवों से पहले ही वारणावत जा पहुंचा और भवन बनवाकर तैयार करवा दिया।

पांडव सभी गुरुजनों को प्रणाम करके और उनका मंगल आशीर्वाद लेकर माता कुन्ती सहित रथों पर चढ़कर वारणावत को चल पड़े। नागरिकों के मन पांडवों को वारणावत भेज दिए जाने से शंका से भर गए। वे इस कार्य में बाधा न डालने के लिए भीष्म पितामह की भी आलोचना करने लगे पर युधिष्ठिर ने सौजन्यवश सब को चुप करा दिया और घर लौट जाने को कहा। महात्मा विदुर को किसी तरह दुर्योधन के कपट-जाल का पता लग गया था। उन्होंने सांकेतिक भाषा में समझाया कि वारणावत में दुर्योधन ने तुम्हारे लिए ज्वलनशील पदार्थों का घर बनवाया है। उसमें से तुम सुरंग के रास्ते बाहर निकल जाना। युधिष्ठिर ने उन्हें बताया कि मैंने आपकी बात समझ ली है और वैसा ही करूंगा। रास्ते में युधिष्ठिर ने सभी भाइयों और माता को बताया कि विदुर जी ने क्या कहा था।

वारणावत के नागरिकों ने पांडवों का बड़ा स्वागत किया। उन्होंने नगर के ब्राह्मणों और अधिकारियों तथा अन्य नागरिकों से परिचय प्राप्त किया। पुरोचन उन्हें उस नये भवन में ले गया। इस भवन के बारे में महात्मा विदुर ने पहले ही युधिष्ठिर को सूचित कर दिया था। अब वह सब पांडवों ने अपनी आंखों देख लिया पर मनोभाव को किसी प्रकार प्रकट नहीं किया। भीमसेन का कहना था कि हम इस भवन में रहें ही नहीं, पर युधिष्ठिर ने कहा कि हम यहां से बचकर निकल जाएं, ऐसा उपाय सोचना चाहिए। हमें यहां से भागकर किसी गुप्त स्थान में रहना चाहिए जिससे पापी दुर्योधन कोई नया कपट-जाल न रचे। यह भी निश्चय हुआ कि भवन के भीतर से एक सुरंग बाहर तक बनाई जाए जिसके रास्ते हम निकल सकें।

उधर विदुर जी पांडवों पर आने वाले संकट से चिंतित थे। उन्होंने एक विश्वासपात्र सुरंग खोदने वाले को वारणावत में पांडवों के पास भेजा। वह पांडवों से मिला और विदुर जी की सुरंग खोदने की योजना बताई। अपनी पहचान के लिए उस सुरंग खोदने वाले ने विदुरजी का बताया संकेत पांडवों को बताया। योजना के अनुसार सुरंग खोदने का काम प्रारंभ हो गया। यथा समय सुरंग तैयार हो गई और पुरोचन को कुछ पता नहीं चला।

पुरोचन इस भवन के मुख्य द्वार पर सोता था और ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था

कि आग लगा सके। पर पांडव तो पहले ही सावधान थे। वे भी पुरोचन के पास ही सोते थे। यही नहीं, वे सोने का दिखावा कर रात भर बारी-बारी से जागते थे ताकि पुरोचन पर नजर रख सकें।

पांडवों को वहां रहते एक वर्ष हो गया। तब युधिष्ठिर ने सब भाइयों से कहा कि अब हमें यहां से भाग निकलना चाहिए। इस पापी पुरोचन को जलाने के साथ-साथ हमें ऐसा भ्रम भी पैदा करना चाहिए कि पांडव इसी भवन में जल मरे हैं।

भागने की रात से पहले दिन माता कुन्ती ने ब्राह्मणों को दान देने और भोजन कराने का आयोजन किया। इसमें स्त्रियां भी सम्मिलित हुईं। खा-पीकर सभी लोग अपने-अपने घरों को लौट गए किन्तु काल से प्रेरित एक भीलनी अपने पांच बेटों सहित भोजन के लिए आई हुई थी। खूब खाकर और मदिरा पीकर वह बेटों सहित नशे में बेहोश उस भवन में ही पड़ी रही। रात को भीम ने जहां पुरोचन सोता था, वहां आग लगा दी और स्वयं कुन्ती सहित पांचों भाई सुरंग के रास्ते बाहर निकल गए।

आग लगने पर नगरवासी जाग गए और कहने लगे कि दुर्योधन के षड्यंत्र से पाण्डवों को जान-बूझकर जलाया गया है। हां, पुरोचन के जल मरने से सभी प्रसन्न थे।

विदुर जी पांडवों की सुरक्षा के लिए सदा चिंतित रहते। वह सुरंग खुदवाकर ही निश्चिंत नहीं हो गए थे। कार्यक्रम के अनुसार सुरंग के जंगल में खुलने वाले द्वार के समीपवर्ती गंगा-तट पर उन्होंने पांडवों के लिए एक यंत्र-चालित नौका की व्यवस्था कर दी थी। पांडव सुरंग से बाहर आकर नदी के तट पर पहुंचे तो विदुर का भेजा आदमी मिल गया। उसने अपनी पहचान के लिए विदुर के बताए सांकेतिक शब्द कहे। पांडवों को विश्वास हो गया कि यह विदुर जी का भेजा व्यक्ति है। पांडव नाव पर सवार होकर इच्छित स्थान में गंगा पार उतर गए तो नाव लौट गई।

उधर प्रातः आग बुझने पर वारणावत के नागरिक उस राख के ढेर में छानबीन करने लगे तो यह बात उनसे छिपी नहीं रही कि यह भवन ज्वलनशील पदार्थों से बनवाया गया था। द्वार पर उन्हें पुरोचन की जली हड्डियां देखकर कुछ संतोष हुआ। भीलनी सहित उसके पांच पुत्रों की अलग-अलग पड़ी हड्डियों की ढेरियों से उन्हें पूरा निश्चय हो गया कि मां सहित पांडव-कुमार जल मरे हैं।

इस दुःखद घटना की सूचना धृतराष्ट्र को मिली तो वे बड़े दुखी हुए। उन्होंने देवी कुन्ती और पांडवों के अन्तिम कृत्य करने के लिए व्यवस्था की। हस्तिनापुर पांडवों के शोक से संतप्त हो उठा। भीष्म जी के दुःख का पारावार नहीं था। वे एक-एक पांडव का नाम लेकर करुण विलाप कर रहे थे। उधर दुर्योधन अपने कपटजाल की सफलता पर प्रसन्न था।

भीष्म जी को शोक से व्याकुल देखकर महात्मा विदुर ने धीरे से उनके कान में कह दिया कि आप चिंता न करें, पांडव जीवित हैं।

अब तो भीष्म पितामह विदुर की बात सुनकर पूरा समाचार जानने के लिए उत्सुक हो उठे। वे उन्हें एक ओर ले गए तो विदुर ने उन्हें सारी बात बता दी।

हिडिम्बासुर-बध और हिडिम्बा-भीमसेन विवाह

उधर पांडव गंगा पार करके दक्षिण दिशा की ओर चलते गए। अंधेरी रात, थके-प्यासे और उनींदे उनके लिए चलना कठिन हो रहा था। उन्हें वारणावत में क्या हुआ, पुरोचन जल मरा या नहीं, इसकी भी जानकारी नहीं थी।

यह जंगल हिंस्र पशुओं से भरा हुआ और फल-कन्द-मूल रहित था। माता कुन्ती को बड़े जोर की प्यास लग आई। वे बोलीं, "बेटा, प्यास के मारे मेरा बुरा हाल है। कहीं से पानी लाओ तो प्राण बचें।"

सब भाइयों को एक पीपल के पेड़ के नीचे छोड़कर भीमसेन पानी लेने चला। उसे कुछ दूर एक सरोवर मिल गया। भीमसेन ने उसमें स्नान किया और पानी पिया। इसके बाद वह पानी लेकर वापस भाइयों के पास पहुंचा तो सभी सोए पड़े थे। कांटों-भरे जंगल में माता और भाइयों को धरती पर सोए देखकर भीमसेन को बड़ा आघात लगा। भीमसेन ने उन्हें पानी पीने के लिए नहीं जगाया। वह स्वयं जागकर पहरा देने लगा ताकि हिंस्र पशु आक्रमण न कर बैठें।

जहां पांडव सो रहे थे, उससे कुछ दूर शाल वृक्ष पर हिडिम्ब नाम का एक राक्षस रहता था। उसने सोए हुए पांडवों को देख लिया था और मनुष्य गंध पाकर उसकी मांस खाने की इच्छा बलवती हो चली थी। उसने अपनी बहन हिडिम्बा को कहा, "बहन! जाओ और ये जो सोए पड़े हैं, इन्हें मारकर मेरे पास ले आओ। हम दोनों आज पेट भर मनुष्य-मांस खाएंगे।"

भाई के कहने से हिडिम्बा पाण्डवों के पास पहुंची। उसने पहरा देते भीमसेन को देखा तो वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने मन में भीमसेन से विवाह करने का निश्चय किया। वह सुन्दरी युवती का रूप बनाकर भीमसेन के पास गई और बोली, "क्यों जी, आप कौन हैं और कहां से आए हैं और ये जो सब वहां सोए पड़े हैं, ये तुम्हारे कौन हैं? देखो न, कैसे गहरी नींद में सोए हैं जैसे घर में सोए हों। इन्हें पता नहीं है कि इस जंगल में पास ही हिडिम्ब नामक क्रूर राक्षस भी रहता है। वह मेरा भाई है। उसी ने तो मुझे यहां इनको मारने के लिए भेजा है। पर मैं किसीको मारूंगी थोड़े ही। मुझे तो वीर, आप बहुत ही अच्छे लग रहे हैं। मैं तो आपसे ही विवाह करना चाहती हूं। बस, मेरी बात मान जाइए। यदि आपने मेरी विनती न सुनी तो मैं जीवित नहीं बचूंगी।"

भीमसेन ने कहा, "राक्षसी! इनमें एक मेरे बड़े भाई और तीन छोटे भाई हैं और वह माता है। अभी तो बड़े भैया का ब्याह ही नहीं हुआ। फिर भला मैं कैसे ब्याह कर सकता हूं। और सुनो, मैं तुम्हारे भाई-वाई से जरा भी नहीं डरता हूं। तुम रहो चाहे जाओ, मुझे किसी की परवाह नहीं है।"

उधर हिडिम्बा को आते न देखकर मांस-लोभी हिडिम्ब स्वयं वहीं आ पहुंचा। हिडिम्बा ने कहा कि इन सबको जगा दीजिए और मैं आप सबको उठाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाऊंगी। पर भीम नहीं माना। हिडिम्ब ने बहन को जब मानवी रूप में भीमसेन से प्रेमालाप करते देखा तो वह उस पर बहुत बिगड़ा। भीमसेन ने उसे ललकारते हुए कहा, "अरे पापी! इस स्त्री को क्या डरा रहा है! मेरे रहते तू इसका बाल भी बांका नहीं कर सकता। आज मैं

हिडिम्बा और भीम

तेरा नाश करके इस जंगल को निरापद बना दूंगा।"

हिडिम्ब ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया तो इस झगड़े में मां और भाइयों की नींद न उचट जाए, यह सोचकर भीमसेन हिडिम्ब को पकड़कर वहां से परे ले गया और दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। पर उनके गर्जन से पाण्डवों और कुन्ती की नींद खुल ही गई। जागकर कुन्ती ने पास खड़ी हिडिम्बा सुन्दरी को देखा तो उसका परिचय पूछा। हिडिम्बा ने अपना परिचय देकर उन्हें बताया कि उसके भाई हिडिम्ब और भीमसेन में घमासान युद्ध हो रहा है। उसकी बात सुनते ही चारों पाण्डव भीमसेन के पास पहुंचे। भयंकर युद्ध के बाद भीम ने हिडिम्ब को मार डाला।

पाण्डव दिन निकलने तक समीप के नगर में पहुंच जाना चाहते थे ताकि वे छिप सकें। वे सब चल पड़े। हिडिम्बा भी उनके साथ चली। हिडिम्बा मन से भीम को अपना पति मान चुकी थी पर भीम उससे विवाह करने को राजी नहीं था, इसलिए वह मां कुन्ती और युधिष्ठिर से भीमसेन को विवाह के लिए राजी करने के लिए कहने लगी। कुन्ती को यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया तो उन्होंने युधिष्ठिर से सलाह की और भीमसेन को विवाह करने के लिए कहा। युधिष्ठिर भी राजी हो गए पर उन्होंने यह शर्त लगा दी कि हिडिम्बा दिन-भर भीमसेन के साथ रहकर, सूर्यास्त तक उसे भाइयों के पास पहुंचा देगी। हिडिम्बा ने स्वीकार कर लिया तब माता कुन्ती ने भीमसेन को आज्ञा दी कि हिडिम्बा को पत्नी रूप में स्वीकार करो। साथ ही यह भी कह दिया कि इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारी ओर से किन्तु-परन्तु नहीं सुनना चाहती।

भीमसेन को मां की बात माननी पड़ी पर उसने भी हिडिम्बा से वचन ले लिया कि जब उसके पुत्र हो जाएगा तो दोनों अलग रहने लगेंगे। हिडिम्बा ने स्वीकार किया और वे दोनों उस वन में आमोद-प्रमोद मनाने लगे।

कुछ समय बाद हिडिम्बा ने एक विकराल पुत्र को जन्म दिया। भीम का यह पुत्र अपनी मां राक्षसी के अनुरूप ही था। शिशु का नाम घटोत्कच रखा गया। यह घटोत्कच सदा पाण्डवों की आज्ञा में रहता था।

शर्त के अनुसार हिडिम्बा को अब भीमसेन के साथ नहीं रहना था। उसने कहा, "आप मुझे जब कभी स्मरण करेंगे, मैं उपस्थित हो जाऊंगी। अब मुझे आज्ञा दीजिए।"

घटोत्कच भी यह कहकर कि जब भी आप मुझे स्मरण करेंगे, मैं उपस्थित हो जाऊंगा, उत्तर दिशा की ओर चल दिया।

पांडव एकचक्रा नगरी में

पाण्डव वहां से मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल तथा कीचक जनपदों में होते हुए, जटा-वल्कल-धारी साधु वेश में वन-वन घूमते फिरे। एक दिन उन्हें महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास का साक्षात्कार हुआ। सबने उन ब्रह्मवेत्ता को साष्टांग प्रणाम किया। व्यास जी बोले, "बेटो, मुझे सब कुछ पता है कि तुम्हारे साथ क्या बीती है। पर चिंता मत करो। यह सब कुछ तुम्हारे भले के लिए ही हो रहा है। अब तुम मेरी बात मानो तो पास की एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण वेश में छिपकर रहो। वहीं मैं तुम्हारे पास फिर आऊंगा। मेरी प्रतीक्षा करना।"

माता कुन्ती सहित पाण्डवों ने एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर डेरा डाला और भिक्षा मांगकर निर्वाह करने लगे। पांचों पांडव जितनी भिक्षा मांगकर लाते, उसका आधा भाग अकेले भीमसेन खा जाता और शेष आधा अन्यों में बांटा जाता। इसी तरह कई मास बीत गए।

एक दिन भीमसेन घर पर था और शेष चारों भाई भिक्षा मांगने नगरी में गए हुए थे कि जिस ब्राह्मण के घर में वे रहते थे, उस घर के लोग दहाड़ मारकर रोने लगे। उस रोने-चिल्लाने को सुनकर कुन्ती का मन व्याकुल हो उठा। वे भीमसेन से बोलीं, "बेटा! इन ब्राह्मण देवता के घर हम बड़े सुख से दिन काट रहे हैं। मैं चाहती हूं कि इस उपकार का बदला चुकाने के लिए ब्राह्मण का कोई कार्य हम करें। मुझे लगता है कि आज इस ब्राह्मण पर कोई विपत्ति आई है। इस विपत्ति में यदि हम इसकी सहायता करें तो उपकार का बदला चुकाया जा सकता है।"

भीमसेन ने कहा, "आप पहले यह पता कीजिए कि उन पर क्या विपत्ति आई हुई है। फिर मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करूंगा।"

देवी कुन्ती ब्राह्मण के कक्ष में गईं तो ब्राह्मण परिवार को रोते और दुखी देखा। ब्राह्मण पत्नी और पुत्र-पुत्री के आसन्न वियोग से दुखी था और मोह के कारण करुण क्रंदन कर रहा था। कुन्ती के पूछने पर ब्राह्मण ने बताया, "यहां से दो कोस दूर, यमुना के किनारे गुफा में एक नरभक्षी बक नामक राक्षस रहता है। उसके लिए प्रतिदिन बीस खारी चावल का भात, दो भैंसे और एक मनुष्य भेजा जाता है। प्रत्येक गृहस्थ को अपनी बारी आने पर यह भोजन पहुंचाना होता है। आज हमारी बारी है। यदि मैंने इस नियम का पालन नहीं किया तो वह राक्षस समूचे परिवार को ही खा डालेगा। यदि मैं मरता हूं तो शेष परिवार का भरण-पोषण कौन करेगा। अपनी पत्नी को भेजता हूं तो गृहस्थ उजड़ता है।"

कुन्ती ने ब्राह्मण को धीरज बंधाते हुए कहा, "विप्रवर! आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिए। मैंने उपाय सोच लिया है। मेरे पांच पुत्र हैं, इनमें से एक आपके बदले राक्षस की भोजन सामग्री लेकर चला जाएगा।"

ब्राह्मण बोला, "कभी नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा। मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए ऐसा पापकर्म कभी नहीं करूंगा। एक तो ब्राह्मण, दूसरे अपने अतिथि के प्राणों का नाश मैं अपने स्वार्थ के लिए कराऊं!"

देवी कुन्ती बोलीं, "आप ठीक कह रहे हैं। ब्राह्मणों की रक्षा करनी ही चाहिए। मुझे अपने पुत्र क्या कम प्यारे हैं! पर बात यह है कि वह पापी राक्षस मेरे पुत्र का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसके विपरीत मेरा पुत्र उसे मारकर ही लौटेगा। मेरा पुत्र पराक्रमी, तेजस्वी और मंत्रसिद्ध है। कोई भी राक्षस उसका बाल बांका नहीं कर सकता। उसने पहले भी एक बड़े राक्षस को मारा है। पर आप यह बात किसीको मत बताना। नहीं तो लोग उसे मंत्र सीखने के लिए तंग करने लगेंगे।"

अब तो ब्राह्मण की सारी चिन्ता दूर हो गई। कुन्ती ने भीम को सारी बात बताई तो भीम भात और भैंसे लेकर राक्षस के पास जाने को तैयार हो गया। उधर शेष भाई भी भिक्षा लेकर लौट आए। युधिष्ठिर को लगा कि भीम को राक्षस के पास भेजने की बात कहकर मां ने ठीक नहीं किया। पर जब कुन्ती ने समझाया तो मान गया।

भीम और बकासुर

भीमसेन भोजन सामग्री लेकर उस स्थान पर पहुंचे, जहां राक्षस रहता था। वहां पहुंचकर भीमसेन ने राक्षस के लिए भेजे भात को खाना प्रारंभ कर दिया और राक्षस का नाम ले-लेकर पुकारने लगा। भोजन में देर होने और नाम लेकर पुकारे जाने पर क्रोध में लाल आंखें किए राक्षस गुफा से बाहर निकला तो उसने भीम को, अपनी भोजन-सामग्री खाते देखा। राक्षस जब गर्जता हुआ भीमसेन के पास पहुंचा तो भीम ने बड़ी उपेक्षा से उसकी ओर से मुंह फेर लिया और भोजन करता रहा। तब राक्षस ने भीमसेन की पीठ पर घूंसों की वर्षा करनी प्रारंभ की। किन्तु भीमसेन ने उसकी ओर देखा तक नहीं और भोजन करने में लगा रहा। जब भोजन समाप्त हो गया तो भीम हाथ-मुंह धोकर राक्षस का सामना करने के लिए डटकर खड़ा हो गया। दोनों में बड़ी देर तक हाथापाई होती रही। अन्त में भीमसेन ने राक्षस को धरती पर पटक दिया और घुटने से राक्षस की पीठ को दबाकर, दाहिने हाथ से उसकी गर्दन पकड़ ली और बाएं हाथ से कमर के लंगोट को पकड़कर दुहरा मोड़ दिया। इस तरह उस राक्षस की कमर ही तोड़ दी। इससे वह राक्षस रक्त-वमन करता हुआ मर गया।

अब भीम ने उस राक्षस की विशाल लाश को उठाया और नगर-द्वार पर जा पटका जिससे लोग अपनी आंखों से उसे मरा हुआ देखकर निर्भय हो जाएं।

पता लगते ही नगर-भर के बाल-युवा और वृद्ध स्त्री-पुरुष उसे देखने दौड़ पड़े और आनन्द मनाने लगे।

इस राक्षस को मारने वाला वीर कौन है, यह जानने के लिए अनेक नगरवासी उस ब्राह्मण के घर पहुंचे, जिसकी बारी थी। उस ब्राह्मण ने भी अपने घर रह रहे लोगों का नाम प्रकट करना उचित न समझा क्योंकि माता कुन्ती ने उसे मना कर दिया था। उसने कह दिया कि कोई अनजान मंत्रसिद्ध ब्राह्मण हमें रोता-बिलखता देखकर आया था और उसी ने हम पर दया करके इस राक्षस को मारा है।

द्रौपदी-स्वयंवर

एकचक्रा नगरी में पाण्डवों को एक ब्राह्मण से पता चला कि पांचाल देश में, वहां की राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है। स्वयंवर की बात सुनकर पाण्डवों के मन में सम्मिलित होने की इच्छा हुई। पाण्डव कुमारों की अवस्था विवाह योग्य हो चुकी थी, इसलिए माता कुन्ती ने उनके मन की बात को समझकर कहा, "पुत्रो! यहां रहते हमें बहुत दिन हो गए हैं। यहां के सारे सुन्दर स्थानों को हमने देख लिया है। अब यहां से मन ऊबने लगा है। मेरा विचार है कि हम यहां से पांचाल देश चलें। वह स्थान हमारे लिए नया और भिक्षा के लिए समृद्ध है। वहां के राजा बड़े ब्राह्मणभक्त हैं, इसलिए मेरे विचार में हमें वहां ही चलना चाहिए।"

मां की आज्ञा और अपनी इच्छा का मेल हो जाने से पाण्डवों ने पांचाल देश के लिए प्रस्थान कर दिया। मार्ग में चित्ररथ नामक गन्धर्व से अर्जुन की ठन गई। अर्जुन ने उस पर द्रोणाचार्य द्वारा प्रदत्त आग्नेय अस्त्र का प्रयोग कर दिया जिससे वह गन्धर्व परास्त हो गया।

उसने अर्जुन से मित्रता कर ली और चाक्षुषी नामक विद्या अर्जुन को सिखा दी, जिसके द्वारा किसी भी वस्तु को देखा जा सकता है। उसने मन के समान वेग वाले गन्धर्व देश के सौ-सौ घोड़े भी प्रत्येक पाण्डव को देने की प्रतिज्ञा की।

गन्धर्व चित्ररथ के साथ मित्रता करके पाण्डवों की शक्ति और बढ़ गई। फिर चित्ररथ के कहने से ही पाण्डवों ने ऋषि धौम्य को अपना पुरोहित बना लिया।

मार्ग में पाण्डवों को ब्राह्मणों की एक टोली मिल गई जो दान-दक्षिणा प्राप्त करने तथा स्वयंवर समारोह को देखने पांचाल देश जा रही थी। उन्होंने पाण्डवों को भी अपने साथ वहां चलने के लिए कहा तो पाण्डव भी साथ हो लिए। पांचाल देश की राजधानी में पहुंचकर पाण्डवों ने एक कुम्हार के घर में रहने की व्यवस्था की। वे ब्राह्मण वेश में भिक्षा मांगकर निर्वाह करने लगे जिससे उन्हें कोई पहचान न ले।

राजा द्रुपद की बड़ी इच्छा थी कि द्रौपदी का विवाह वीर वर अर्जुन के साथ हो पर वे अपने मन की बात किसी पर प्रकट नहीं करते थे। पर जब उन्हें पता लगा कि पाण्डव वारणावत में जल गए तो वे बहुत दुःखी हुए। किन्तु बाद में पता लगा कि जीवित हैं और गुप्त रूप से रह रहे हैं तो अर्जुन को खोजने के उपाय करने लगे। वे धनुविद्या में अर्जुन के कौशल को जानते थे। इसलिए उन्होंने ऐसा दृढ़ धनुष बनाया जिसे कोई दूसरा झुका भी न सके। इसके साथ एक स्तंभ पर घूमने वाला यंत्र स्थापित किया और उसके ऊपर लक्ष्य स्थापित किया। फिर उन्होंने स्वयंवर के लिए इस शर्त की घोषणा की—"जो कोई वीर इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, स्तंभ पर घूमते यंत्र के छेद में से बाण को निकालकर लक्ष्य का भेदन करेगा, उसी से मैं अपनी पुत्री का विवाह करूंगा।"

पूर्व निश्चित दिन को देश-देश के राजा और राजकुमार पांचाल में पधारे। द्रुपद ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया।

स्वयंवर मण्डप में खूब सजावट की गई और ऊपर चंदोवा ताना गया। प्रवेश के लिए कई द्वार थे। विविध वाद्य बज रहे थे और सुगन्ध वाली पवन बह रही थी। मार्गों पर पानी का छिड़काव हुआ था। फूलमालाओं से सारा मण्डप सजा था। मण्डप में बैठने के लिए सुन्दर-सुन्दर आसन लगे थे। सजे-धजे क्षत्रिय वीर स्वयंवर में विजयी होने की कामना से वहां बैठे थे। पाण्डव कुमार ब्राह्मण वेश में ब्राह्मणों की पंक्ति में जा बैठे।

यथासमय राजकुमारी द्रौपदी वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर, हाथों में स्वर्ण-निर्मित रत्नजटित जयमाला लिये स्वयंवर मण्डप में आई। इसी समय ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन का पाठ किया और अग्नि में आहुति डाली। बाजे बन्द करवा दिए गए। तदनन्तर द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने विधि के अनुसार मण्डप के मध्य खड़े होकर गंभीर वाणी में कहा, "यहां पधारे हुए नरेश महानुभावो! कृपया मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनिए। यहां यह धनुष और बाण रखे हैं..." फिर ऊपर की ओर संकेत करके कहा, "और यह वह लक्ष्य है, जिसका भेदन करना है। अधिकाधिक पांच बाणों द्वारा, यंत्र के छेद के भीतर से बाण को पार करते हुए लक्ष्य का भेदन करना है। मैं घोषणा करता हूं कि जो भी उत्तम कुल, सुन्दर रूप और श्रेष्ठ

बलशाली वीर यह कार्य कर दिखाएगा, आज से मेरी यह बहन कृष्णा उसकी धर्मपत्नी होगी।"

इसके पश्चात धृष्टद्युम्न स्वयंवर में पधारे राजाओं के नाम, गोत्र और पराक्रम का परिचय द्रौपदी कृष्णा को देने लगा। उसने दुर्योधनादि कौरवों, कर्ण, शकुनि, अश्वत्थामा, विराट्, सुशर्मा, चेकितान्, शल्य, वासुदेव श्रीकृष्ण, सात्यकि, ऋतुवर्मा, जयद्रथ, शिशुपाल, जरासंध आदि नरेशों का परिचय द्रौपदी को दिया।

सभी वीरों के मन में द्रौपदी को वरण करने की कामना थी। श्रीकृष्ण के नेतृत्व में यदुवंशी और वृष्णिवीर तो अपने स्थान पर बैठे रहे किन्तु राजा लक्ष्यवेध के लिए उठ खड़े हुए। वासुदेव श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के बीच ब्राह्मण वेश में बैठे हुए पाण्डवों को पहचान लिया। श्रीकृष्ण ने पास बैठे श्री बलराम को संकेत से दिखाया और बताया कि वे पाण्डव बैठे हुए हैं।

बारी-बारी से सभी वीर लक्ष्यवेध के लिए गए किन्तु उनमें से कोई भी धनुष पर प्रत्यंचा तक चढ़ाने में सफल नहीं हो सका। ज्यों ही वे धनुष को झुकाने के लिए जोर लगाते, उसके झटके से गिर पड़ते और उनके मुकुट धरती पर जा पड़ते। बेचारे लज्जित होकर चुपचाप एक ओर जा बैठते।

कर्ण की बारी आने पर वह उठा और उसने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। उसे देखते ही पाण्डव कुछ उदास हो गए। उन्हें लगा कि कर्ण लक्ष्यवेध कर लेगा। किन्तु तभी द्रौपदी ने ऊंचे स्वर में कहा, "मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नहीं करूंगी।" यह सुनते ही कर्ण खिसियानी हंसी के साथ धनुष रखकर अपने स्थान पर लौट आया। इसके पश्चात चेदिराज शिशुपाल उठे पर प्रत्यंचा चढ़ाने में असफल रहे और दूर जा गिरे। इसके बाद जरासंध और शल्य आए पर असफल होकर लौट गए। तब दुर्योधन उठा पर उसकी भी वही गति हुई।

जब कोई भी वीर प्रत्यंचा तक न चढ़ा सका और मण्डप में सन्नाटा-सा छा गया तो ब्राह्मणों की पंक्ति में से अर्जुन उठकर आगे बढ़ा। अर्जुन को उठते देखकर श्रीकृष्ण ने श्री बलराम का हाथ दबाया। उन्हें विश्वास था कि अर्जुन लक्ष्यवेध कर लेगा।

उधर ब्राह्मण मण्डली में अर्जुन को लक्ष्यवेध के लिए जाते देखकर खलबली मच गई। उनमें से कुछ का कहना था कि इतने बड़े-बड़े क्षत्रिय वीर जिस कार्य को नहीं कर सके, उसे यह ब्राह्मण युवक क्या खाकर कर लेगा। व्यर्थ में राजाओं के बीच ब्राह्मण समाज की हंसी उड़वाएगा। कुछ ने ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन को रोकने की सलाह दी। कुछ ब्राह्मणों का कहना था, "क्षत्रिय के काम को जब क्षत्रिय ही नहीं कर सके तब यदि एक ब्राह्मण भी नहीं कर पाता है तो इसमें लज्जा की क्या बात है! फिर ब्राह्मणों के पास मंत्रबल, योगबल, तपोबल आदि अनेक बल होते हैं, इसलिए ब्राह्मण के लिए कुछ भी कर सकना असंभव नहीं है।" उन्होंने परशुराम जी का उदाहरण दिया और अर्जुन की सफलता की कामना करने लगे।

वीर अर्जुन ने धनुष के पास जाकर उसकी प्रदक्षिणा की और भगवान् का स्मरण करते हुए उसे उठा लिया। उसने प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए उस धनुष को झुकाया और क्षणभर में प्रत्यंचा चढ़ा दी। इसके बाद अर्जुन ने वे पांच बाण उठाए जो लक्ष्यवेध के लिए रखे

गए थे। अर्जुन ने निशाना साधकर बाण मारा और लक्ष्य कट कर नीचे आ गिरा। ब्राह्मण मण्डली के हर्ष का पारावार नहीं रहा। स्वयंवर मण्डप में कोलाहल मच गया। बाजे-तुरही-नगाड़े बजने लगे।

इधर यह होहल्ला होने लगा और उधर यह शुभ समाचार माता कुन्ती को सुनाने नकुल और सहदेव सहित युधिष्ठिर अपने निवास—कुम्हार के घर को चल दिए। अर्जुन और भीम स्वयंवर मंडप में रहे।

बिंधे लक्ष्य को धरती पर गिरा देखकर और इस दुष्कर कार्य को सम्पन्न करने वाले महान वीर पर सस्मित दृष्टि डालकर हाथ में जयमाला लिये द्रौपदी अर्जुन के समीप गई और जयमाला अर्जुन के गले में डाल दी।

धनुर्धारी अर्जुन द्रौपदी के साथ मण्डप से बाहर निकल चले। द्रौपदी छाया की तरह अर्जुन का अनुसरण कर रही थी। ब्राह्मण मण्डली ने इस विजय से अपने को गौरवान्वित अनुभव किया और अपने उत्तरीय उछाल कर, तालियां बजाकर और जयघोष कर विजयी वीर का अभिनन्दन किया।

जैसा कि प्रायः स्वयंवरों में होता था, हारे हुए राजा और राजकुमार अपनी झेंप मिटाने के लिए, ब्राह्मणों को क्षत्रिय कन्या देने का विरोध करने लगे। वे मिलकर महाराज द्रुपद से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गए। वे कहने लगे कि ब्राह्मणों को तो स्वयंवर में कन्या प्राप्ति का अधिकार ही नहीं है। यदि यह कन्या हममें से किसी को स्वीकार नहीं करती तो इसे यहीं जला डालेंगे। हां, जयमाला पहनने वाला वह युवक ब्राह्मण होने से अवश्य अवध्य है। हम द्रुपद को जरूर दण्ड देंगे क्योंकि उसने स्वयंवर प्रथा की दुर्गति की है। वे आक्रमण की इच्छा से द्रुपद की ओर दौड़ पड़े। द्रुपद भयभीत होकर ब्राह्मण युवकों की ओर भागा। राजाओं को इस तरह उपद्रव करते देखकर भीम और अर्जुन उन्हें खदेड़ने के लिए धनुष-बाण तान कर डट गए। जब क्षत्रियों ने देखा कि ये ब्राह्मण लड़ने के लिए तैयार हैं तो उन्होंने कहा कि लड़ने वाले ब्राह्मणों से लड़ाई करने में शास्त्र की सम्मति है। लड़ाई प्रारंभ हो गई। अपने को सबसे बड़ा वीर समझने वाला कर्ण आगे बढ़कर अर्जुन से बाणयुद्ध करने लगा। ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन के धनुर्विद्या में कमाल को देखकर कर्ण विस्मित रह गया। कर्ण ने सोचा कि परशुराम जी की तरह अजेय यह ब्राह्मण अवश्य ही मंत्रशक्ति और तपोबल से युक्त है। इसे जीतना असंभव है। यही सोचकर वह पीछे हट गया।

उधर शल्य और भीमसेन में ठनी हुई थी। यों तो शल्य भीमसेन के मामा लगते थे। वे माद्री के सगे भाई थे पर इस समय तो भीम ब्राह्मण के वेश में थे। कौन जानता था कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। जब भीम ने शल्य को ऊपर उठाकर धरती पर दे मारा तो ब्राह्मण मण्डली में हंसी का ठहाका लग गया। जब कर्ण और शल्य जैसे महारथी वीर हार गए तो शेष राजा भी युद्ध छोड़कर और दोनों ब्राह्मण वेशधारी युवकों को घेर कर खड़े हो गए कि इन अप्रतिम वीरों के जन्म-वंश का परिचय तो प्राप्त करें। पर तभी वासुदेव श्रीकृष्ण ने 'अब इन्हें जाने दीजिए' कहते हुए सबको अपने-अपने स्थान पर जाने को कहा। तब ब्राह्मण मण्डली के बीच से वे कठिनाई से आगे बढ़ते हुए भीम, अर्जुन और द्रौपदी सहित मण्डप से बाहर निकले।

उनका ठीक-ठीक परिचय प्राप्त करने के लिए द्रौपदी का भाई राजकुमार धृष्टद्युम्न भी चुपचाप पीछे हो लिया।

मां कुन्ती बेटों के आने की राह देखती हुई कुटिया के भीतर बैठी थीं। बाहर से ही अर्जुन ने कहा, "मां, हम भिक्षा लाए हैं।"

भीतर बैठी कुन्ती ने वैसे ही उत्तर दिया, "सब मिलकर भोगो।" तत्पश्चात उसने जब द्रौपदी को देखा तो बहुत पछताई कि मैंने क्या कह दिया।

वासुदेव श्रीकृष्ण ने पहचान लिया था कि ये ब्राह्मण वेशधारी युवक पाण्डव हैं और लक्ष्यवेध करने वाला वीर अर्जुन है। वे उनसे मिलने के लिए उनके पीछे-पीछे उनके निवास स्थान पर जा पहुंचे। वहां युधिष्ठिर को चारों भाइयों से घिरा देखकर श्रीकृष्ण और बलराम ने उन्हें प्रणाम किया। फिर बुआ कुन्ती के चरण छुए। कुशल-समाचार पूछा और वापस शिविर में लौट आए। उन्होंने किसी को नहीं बताया कि ये पाण्डव हैं।

धृष्टद्युम्न ने जब कुम्हार की झोंपड़ी में पांचों भाइयों और उनकी माता को देखा तो उसे लगभग निश्चय हो गया कि ये पाण्डव ही हैं। उसने वापस लौटकर महाराज द्रुपद को सारी बात बताई। महाराज द्रुपद इससे पूर्व बहुत चिन्तित थे कि न जाने स्वयंवर जीतने वाले वे लोग कैसे कुल-शील के हैं। धृष्टद्युम्न से उनके पाण्डव होने की सुन बात महाराज द्रुपद ने अपने पुरोहित को पाण्डवों के निवास-स्थान पर भेजा जिससे वे उनका पूरा परिचय प्राप्त करके उन्हें राजप्रासाद में आने के लिए निमंत्रित कर आएं।

पुरोहित के पाण्डवों के पास पहुंचने पर उनका पाद्य और अर्घ्य से विधिवत स्वागत किया गया। पुरोहित जी ने परिचय पूछा तो युधिष्ठिर बोले, "पुरोहित जी, महाराज द्रुपद ने यह कन्या स्वेच्छा से नहीं दी है। इसे स्वयंवर की शर्त पूरी करके प्राप्त किया गया है। इसलिए राजा द्रुपद को इस बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। फिर आप इतना समझ लें कि हम इस राजकन्या को ग्रहण करने के सर्वथा योग्य हैं।

इसके बाद राजा द्रुपद के आग्रह और अनुरोध पर द्रौपदी सहित पाण्डव वीर राजा द्रुपद के राजप्रासाद में पहुंचे। राजा द्रुपद ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया और सोने-चांदी के पात्रों में विविध भोज्य सामग्री परोसी।

भोजन के पश्चात राजा द्रुपद ने ब्राह्मण वेशधारी युधिष्ठिर से पूछा, "कृपया हमें यह बताएं कि आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कौन हैं?"

पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ने सस्मित राजा द्रुपद की शंका-समाधान करते हुए कहा, "महाराज द्रुपद! आपकी मनोकामना पूरी हुई है। हम आपके समान कुल-शील वाले क्षत्रिय ही हैं। मैं ज्येष्ठ पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर हूं और ये भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव हैं।"

यह सुनकर द्रुपद की आंखों में आनन्दाश्रु छलकने लगे। उन्होंने पाण्डवों के वारणावत से बच निकलने की सारी कथा सुनी तो महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के पाप-कर्मों की निन्दा करने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर को आश्वासन दिया कि हम आपको राज्याधिकार दिलाने में पूरा सहयोग देंगे।

राजा द्रुपद ने कृष्णा-कुन्ती सहित पाण्डवों को आग्रहपूर्वक राजप्रासाद में रहने के लिए कहा और उन्होंने स्वीकार कर लिया।

फिर एक दिन विवाह संस्कार का मुहूर्त निश्चित कर ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से राजा द्रुपद ने अर्जुन और द्रौपदी के पाणिग्रहण की प्रार्थना की।

युधिष्ठिर बोले, "राजन्! द्रौपदी हम सब भाइयों की पटरानी होगी। हमारी माता की ऐसी ही आज्ञा है।"

यह सुनकर राजा द्रुपद दंग रह गए कि यह क्या कह रहे हैं। उन्होंने कहा, "एक पुरुष की कई पत्नियां होने की बात तो सुनी है किन्तु एक स्त्री के कई पति होने की बात तो कभी नहीं सुनी।" इस सम्बन्ध में देवी कुन्ती, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरादि मिलकर निश्चय करेंगे, यह निर्णय हुआ। इतने में वहां महर्षि व्यास का आगमन हुआ, फिर तो सभी उन्हें घेरकर इस समस्या का समाधान करने के लिए कहने लगे। उन्होंने राजा द्रुपद को अलग ले जाकर पाण्डवों और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाकर और उनको प्राप्त शाप और वर की बात बताकर दैवी विधान को स्वीकार करने के लिए मनाया। उन्होंने द्रुपद को समझाया कि जैसे द्रौपदी यज्ञ से प्रकट हुई है, वैसे ही पाण्डव भी धर्मराज, इन्द्र, वायु और अश्विनीकुमारों के तेजांश से उत्पन्न हुए हैं।

द्रौपदी का विवाह पांचों पाण्डवों के साथ सम्पन्न हुआ। राजा द्रुपद ने पाण्डवों को दहेज में सौ रथ, सौ सुसज्जित हाथी, दासियां, नौकर-चाकर और बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण प्रदान किए।

पाण्डवों को राज्य-प्राप्ति

कुछ ही दिनों में यह बात सर्वत्र फैल गई कि लक्ष्य को बींधने वाला कुन्ती पुत्र अर्जुन ही था। द्रौपदी के पांचों पाण्डवों के साथ विवाह समाचार भी फैलता-फैलता हस्तिनापुर पहुंचा।

महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र से कहा, "महाराज! हमारा बड़ा भाग्य है कि हमारे वंश की वृद्धि हुई है।"

धृतराष्ट्र विदुर से यह सुनकर बोले, "अहोभाग्य, अहोभाग्य! धृतराष्ट्र ने समझा कि संभवतः मेरा पुत्र दुर्योधन स्वयंवर में द्रौपदी को जीतकर लाया है। उन्होंने आज्ञा दी कि नगर के बाहर से उन्हें स्वागत समारोह के साथ ले आओ और बहूरानी के लिए उत्तमोत्तम वस्त्रालंकारों को लाओ।" किन्तु जब विदुर जी ने बताया कि द्रौपदी ने पाण्डवों का वरण किया है, वे सभी वीर जीवित हैं और राजा द्रुपद के यहां रह रहे हैं तो धृतराष्ट्र के मुखमण्डल पर विषाद की छाया मंडराने लगी। उन्होंने अपने मन के भाव छिपाने के लिए ऊपर से कहा, "अहोभाग्य! अहोभाग्य!! वे तो मुझे अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय हैं।"

विदुर बोले, "महाराज! मैं चाहता हूं कि आपके मन में सदा ऐसा ही पवित्र भाव बना रहे।" उसी समय दुर्योधन तथा कर्ण वहां आ पहुंचे। विदुर जी अपने घर चले गए।

दुर्योधन ने कहा, "महाराज! हमने जब से सुना है कि पाण्डव जीवित हैं और द्रौपदी ने जिनका वरण किया है, वे पाण्डव ही हैं तब से हमारी तो भूख-प्यास और नींद ही चली

गई। आप पाण्डवों पर आशीर्वादों की वर्षा कर रहे हैं और उनके जीवित होने से अपने को सहोभाग्य समझ रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है!"

धृतराष्ट्र बोले, "बेटा! तुम तो जानते ही हो कि विदुर पांडवों का पक्ष लेते हैं। उनके सामने तो ऐसी-वैसी बात नहीं की जा सकती न! मैं भी वही चाहता हूं, जो तुम चाहते हो। तुम कर्ण, शकुनि, अश्वत्थामा और अपने भाइयों से विचार-विमर्श करके जो करना चाहते हो, उसका निश्चय करो और मुझे बताओ।"

दुर्योधन ने कहा, "पिताजी! मैंने सोचा है कि कुन्ती और माद्री के पुत्रों में फूट डलवाई जाए तथा द्रुपद और युधिष्ठिर में भी मनमुटाव करा दिया जाए जिससे पाण्डवों को द्रुपद का सहयोग न मिल सके। या छल-बल से भीमसेन को ठिकाने लगा दिया जाए। क्योंकि उसी के बल-बूते पर ये लोग हमें कुछ नहीं समझते हैं। द्रौपदी के द्वारा भी पाण्डवों में कलह का बीज बोया जा सकता है। या फिर उन्हें यहां हस्तिनापुर में बुला लिया जाए और मरवा डाला जाए।"

कर्ण ने कहा, "मैं आपसे सहमत नहीं हूं। इस तरह के उपाय आपने पहले भी करके देख लिए हैं। परिणाम कुछ नहीं निकला। जब वे बालक थे, अरक्षित थे, तब भी तुम छल से उनका बाल बांका न कर सके। इसलिए मेरे विचार में तो उन पर तुरन्त आक्रमण करना चाहिए।"

धृतराष्ट्र बोले, "कर्ण ठीक कहता है। पर मेरा विचार है कि भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों बैठकर एक मन से कोई निश्चय करो जिससे भविष्य में पछताना न पड़े।"

धृतराष्ट्र के सुझाव पर मंत्रिमण्डल की बैठक बुला ली गई। सबसे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ भीष्म पितामह ने कहा, "मेरे लिए कौरव और पाण्डव एक समान हैं। मैं आपस में विरोध उत्पन्न करने वाली किसी बात का समर्थन नहीं करता। मेरी मानें तो उन्हें आधा राज्य देकर उनसे समझौता कर लें।"

द्रोणाचार्यजी ने भी भीष्म पितामह का समर्थन किया। इस पर कर्ण ने उनका विरोध किया तो उन्होंने भी उसे झाड़ दिया। विदुर जी ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य की सम्मति का ही समर्थन किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ये तीनों खोखली बुद्धि के व्यक्ति हैं। इनकी बात मानेंगे तो कुल के नाश का भय उपस्थित हो जाएगा।

सबकी सम्मति सुनने के पश्चात् महाराज धृतराष्ट्र बोले, "पाण्डु के पुत्र मेरे लिए अपने पुत्रों जैसे ही हैं। उनको राज्य का भाग मिलना ही चाहिए। इसलिए मैं आज्ञा देता हूं कि विदुर पांचाल देश जाकर देवी कुन्ती और कृष्णा सहित पाण्डवों को ससम्मान यहां बुला लाएं।"

धृतराष्ट्र की आज्ञा से महात्मा विदुर धन-रत्नों की भेंट लेकर राजा द्रुपद और पाण्डवों के पास गए। वासुदेव श्रीकृष्ण भी वहां उपस्थित थे। अभिवादन और कुशल-क्षेम पूछने के बाद विदुर जी ने जो-जो धन-रत्न जिस-जिस के लिए दिए गए थे, वे उन्हें सौंप दिए और महाराज धृतराष्ट्र ने मंत्रिमण्डल की सम्मति से जो निश्चय किया था, वह द्रुपद के सामने कह सुनाया और द्रुपद के साथ जो नया सम्बन्ध स्थापित हुआ था, उसका अभि-

नन्दन किया। फिर बोले, "हमारे राज्य के लोग कृष्ण और पाण्डवों को देखने और इनका स्वागत करने के लिए उतावले हो रहे हैं।"

प्रत्युत्तर में राजा द्रुपद ने कहा, "पाण्डव अपने राज्य में जाएं, यह उचित ही है। पर इसका निर्णय तो ये स्वयं ही करेंगे। श्रीकृष्ण और श्री बलराम सौभाग्य से यहां विद्यमान हैं, उनकी सम्मति से ये जो भी निश्चय करेंगे, वही ठीक होगा। महान कुल-वंश में अपनी बेटी को ब्याहकर हम भी अपने को सौभाग्यशाली अनुभव करते हैं।"

श्रीकृष्ण और द्रुपद की सम्मति से पाण्डव, देवी कुन्ती और पांचाल कन्या कृष्णा सहित श्रीकृष्ण और विदुर के साथ हस्तिनापुर की ओर चले।

महाराज द्रुपद ने एक हजार सुसज्जित हाथी, चार घोड़ों वाले एक हजार रथ, इसके अतिरिक्त पचास हजार घोड़े, दास और दासियां, गौएं और वस्त्रालंकर और सौ पालकियां दहेज में दीं।

हस्तिनापुर में पाण्डवों के आगमन का सम्वाद पहुंचने पर उनके स्वागत समारोह की तैयारियां होने लगीं। नगर को सजाया गया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण और चित्रसेन उन्हें स्वागतपूर्वक ले आए। नगरवासी झुण्ड के झुण्ड पाण्डवों का जयकार करते चल रहे थे। बाजों और कोलाहल के कारण कुछ भी सुनाई नहीं देता था। पाण्डवों ने भीष्म, धृतराष्ट्र तथा पूज्यों को साष्टांग प्रणाम किया। जब वे राजप्रासाद में प्रवेश करने लगे तो काशिराज की पुत्री, दुर्योधन की रानी ने द्रौपदी की अगवानी की और अन्तःपुर में ले गई। देवी कुन्ती और द्रौपदी ने गांधारी को प्रणाम किया। गांधारी के कहने से विदुर जी ने राजा पाण्डु वाले महल में उन सबके रहने की व्यवस्था कर दी।

कुछ दिन बाद, महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलाकर कहा, "तुम्हारे पिता और मेरे छोटे भाई पाण्डु ने इस राज्य को समृद्ध किया है। वे सदा मेरी आज्ञा का पालन करते रहे और मैं तुमसे से भी यही अपेक्षा करता हूं। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मेरे अपने पुत्र अहंकारी और दम्भी हैं। वे मेरे अनुशासन में नहीं रहेंगे, मुझे ऐसा लगता है। कल तुम्हारा और उनका कोई झगड़ा न हो, इसलिए तुम खाण्डवप्रस्थ में जाकर रहो। वहां तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।"

फिर उन्होंने विदुर जी को राज्याभिषेक के लिए प्रमुख नागरिकों, वेदवेत्ता ब्राह्मणों और राजकुल के लोगों को बुलाने, ब्राह्मणों को इस अवसर पर दान-दक्षिणा देने, राजदण्ड, राजमुकुट और राजछत्र की व्यवस्था करने, अभिषेक के लिए गंगाजल, राजा की सवारी के लिए गजराज आदि की व्यवस्था करने की आज्ञा दी। विदुर जी ने अभिषेक की पूरी तैयारी कर दी।

युधिष्ठिर का पूर्ण विधि के साथ राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। व्यास, भीष्म, द्रोण, कृप, धृतराष्ट्र आदि ने आशीर्वाद दिया। इस मंगलमय अवसर पर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को खूब दान दिया। उपस्थित जनों ने उनका जयकार किया और वे सजे हुए गजराज पर चढ़े। नगर की परिक्रमा की और तब महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से उसी दिन खाण्डवप्रस्थ के लिए चल पड़े। वहीं पर उन्हें अपने राज्य की नई राजधानी बसानी थी।

पाण्डव महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम करके, आधा राज्य पाकर खाण्डवप्रस्थ आ

पहुंचे। श्री कृष्ण भी उनके साथ थे। भगवान् श्री कृष्ण ने देवराज इन्द्र को स्मरण किया तो वे इनका मनोभिलषित समझ गए और खाण्डवप्रस्थ नगर का निर्माण करने के लिए उन्होंने अपने भवन-निर्माता विश्वकर्मा को नगर-निर्माण की आज्ञा दी। देवराज इन्द्र की आज्ञा से बनने के कारण इस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया। राजधानी में नगर-निर्माण के नियमों के अनुसार पानी से भरी खाई, ऊंची चहारदीवारी, सीधी चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े तोरणद्वार, शस्त्रागार, गजशालाएं, अश्वशालाएं, राजभवन आदि अनेक भवनों का निर्माण किया। इस नगर की शोभा से आकृष्ट होकर वेदविद् और अनेक भाषाओं के विद्वान ब्राह्मण, व्यापार में चतुर बनिये, शिल्पी और कलाकार वहां आकर बस गए।

नगर का कार्य पूरा होने पर विश्वकर्मा को सम्मानपूर्वक विदा किया। महर्षि व्यास भी नगर प्रतिष्ठा के बाद लौट गए। श्रीकृष्ण भी सुभद्रा कुन्ती से आज्ञा लेकर चले गए।

अर्जुन का वनवास

एक दिन देवर्षि नारद वीणा पर नाम-संकीर्तन करते इन्द्रप्रस्थ आ पहुंचे। राजा युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया। सभी पाण्डव उनके पास बैठे और द्रौपदी को बुलाया। नारद जी ने उन्हें समझाया कि यदि आप सब आपस में मिलजुलकर रहेंगे तो कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। पाण्डवों ने उन्हें वचन दिया कि हम कभी आपस में कलह नहीं करेंगे। यह निश्चय हुआ कि द्रौपदी प्रत्येक पाण्डव के साथ एक वर्ष रहेगी। द्रौपदी के साथ बैठे हुए में से किसीको जो भी दूसरा भाई देख लेगा, उसे बारह वर्ष तक वनवास में रहना होगा। सभी ने इस नियम को स्वीकार कर लिया।

बहुत समय इसी तरह बीतने पर एक दिन एक ब्राह्मण यह शिकायत लेकर आया कि चोर उसकी गायों को बलपूर्वक ले जा रहे हैं, इसलिए चलकर उन्हें छुड़ाओ। ब्राह्मण की पुकार सुनकर अर्जुन अपने शस्त्रास्त्र लेने भीतर गए तो वहां युधिष्ठिर और द्रौपदी एकान्त में बैठे थे। अर्जुन ने अपने वनवास की चिन्ता न करते हुए भीतर प्रवेश कर अपने शस्त्रास्त्र उठाए और चोरों को भगाकर ब्राह्मण की गाएं छुड़ा लीं। फिर अर्जुन ने युधिष्ठिर से स्वयं कहा कि मैंने नियम भंग किया है, इसलिए बारह वर्ष वनवास करूंगा। युधिष्ठिर ने बहुत रोका पर अर्जुन नहीं माना। वह हरिद्वार में जाकर ठहर गया। यहीं से नागकन्या उलूपी उसे नागलोक में ले गई और दोनों का गन्धर्व विवाह सम्पन्न हुआ। उलूपी ने इरावान् नामक पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया और साथ ही अर्जुन को जल से और जलचरों से अभय का वरदान भी दिया।

अब अर्जुन हिमालय के ऊंचे शिखरों पर चला गया। फिर पूर्व दिशा की ओर अंग, वंग और कलिंग की यात्रा की। समुद्र के किनारे चलते-चलते वह मणिपुर पहुंचा। मणिपुर नरेश चित्रवाहन की राजकुमारी चित्रांगदा से अर्जुन का विवाह हुआ। चित्रांगदा चित्रवाहन की एकमात्र संतान थी, अतः यह तय हुआ कि चित्रांगदा से उत्पन्न पुत्र इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा और यहीं रहेगा। तीन वर्ष तक अर्जुन मणिपुर में रहा और जब चित्रांगदा के

पुत्र हो गया तो फिर मणिपुर लौट गया। इस पुत्र का नाम बभ्रुवाहन रखा गया। कालांतर में चित्रांगदा को इन्द्रप्रस्थ बुला लेने का आश्वासन देकर अर्जुन वहां से चला आया।

दक्षिण सागर तटवर्ती तीर्थों का भ्रमण करते हुए अर्जुन पश्चिम सागर तटवर्ती तीर्थों में आ पहुंचा। घूमते-फिरते वह प्रभास क्षेत्र में आ पहुंचा। जब श्रीकृष्ण को अर्जुन के आने का समाचार मिला तो वे उससे मिलने आ पहुंचे। एक-दूसरे के गले मिलने और कुशल-समाचार के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन की तीर्थयात्रा का कारण पूछा तो अर्जुन ने सारी बातें बताईं। रात रैवतक पर्वत पर काटी और प्रातः द्वारकापुरी चला गया। कुछ दिन द्वारका में बड़े आनन्द से रहा।

सुभद्रा परिणय

कुछ दिनों बाद रैवतक पर्वत पर एक उत्सव का आयोजन हुआ। सारी द्वारकापुरी इस उत्सव को देखने रैवतक पर्वत पर आ पहुंची। महाराज उग्रसेन, बलराम-रेवती, प्रद्युम्न आदि सभी उत्सव में सम्मिलित थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी साथ-साथ घूम रहे थे। इसी समय वसुदेव जी की पुत्री सुभद्रा सखियों से घिरी वहां आई। अर्जुन सुभद्रा के रूप-सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त हो गया। वह सुभद्रा के भाई श्रीकृष्ण की अनुमति लेकर सुभद्रा को रथ पर बिठाकर ले चला। लोगों ने समझा कि सुभद्रा का अपहरण किया गया। द्वारकापुरी में यह समाचार पहुंचा तो सब युद्ध के लिए तैयार हो गए। श्री बलराम जी ने सबको समझाते हुए कहा कि पहले श्रीकृष्ण से तो पूछ लो कि वे क्या करना चाहते हैं। फिर उन्होंने स्वयं ही श्रीकृष्ण से बात की और अर्जुन के इस भद्दे व्यवहार की भर्त्सना की। श्रीकृष्ण जी के समझाने-बुझाने से मामला टल गया। अर्जुन द्वारका लौट आया और विधिवत उसका सुभद्रा से पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ।

यहां साल भर रहकर अर्जुन पुष्कर तीर्थ को चला गया। फिर जब वनवास की अवधि (बारह वर्ष) पूर्ण हो गई तो वह इन्द्रप्रस्थ पहुंचा और माता के चरणों में प्रणाम किया। भाइयों से मिलने के बाद वह द्रौपदी से मिला तो वह सुभद्रा को ब्याह लाने पर कुछ कुपित हुई। देवी कुन्ती ने इस नई बहू का स्वागत किया। फिर सुभद्रा ने द्रौपदी के चरण छुए और उनकी आज्ञा में रहने की बात कही तो द्रौपदी प्रसन्न हो गई।

कुछ समय बाद श्रीकृष्ण, उद्धव, अक्रूर आदि अन्धक वृष्णि वंशी सुभद्रा के लिए बहुत-सा दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थ पहुंचे। महाराज युधिष्ठिर ने उन सबका भव्य स्वागत किया।

कुछ समय बाद सुभद्रा ने एक शिशु को जन्म दिया। इस बालक का नामकरण अभिमन्यु किया गया। श्रीकृष्ण अपने इस भानजे से बहुत प्रेम करते थे। अर्जुन ने इस पुत्र की शिक्षा में विशेष रुचि ली और धनुर्विद्या में उसे अपने जैसा कुशल बना दिया।

पांचाली कृष्णा के भी पांच पुत्र हो चुके थे। इनके नाम थे—प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन। सभी बालक पाण्डवों के पुरोहित आचार्य धौम्य से शिक्षा ग्रहण करने लगे।

खाण्डव वन-दहन

ग्रीष्म ऋतु के एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यमुना में स्नान करने को चलने के लिए कहा। श्रीकृष्ण झट तैयार हो गए। उनके यमुना तट पर पहुंचने पर सुवर्ण के समान कान्ति वाले एक ब्राह्मण देवता पधारे। इन ब्राह्मण देवता को देखते ही श्रीकृष्ण और अर्जुन उठ खड़े हुए और प्रणाम किया। ब्राह्मण ने कहा, "मैं अधिक खाने वाला ब्राह्मण हूं। आप लोग मुझे पूर्ण भोजन कराकर तृप्त कीजिए। मैं अग्नि हूं। मैंने इस खाण्डव वन को जलाने का कई बार प्रयत्न किया पर इसमें इन्द्र का मित्र तक्षक नाग रहता है, इसलिए जब वन में आग लगती है तो इन्द्र वर्षा बरसाकर इसे शान्त कर देते हैं और मैं भूखा रह जाता हूं।"

अर्जुन और श्रीकृष्ण अग्निदेव को तृप्त कराने के लिए तैयार तो थे पर अर्जुन के पास उत्तम कोटि का धनुष नहीं था। इतने बाण भी नहीं थे जिनसे वर्षा को रोका जा सके। और फिर एक बढ़िया रथ की भी आवश्यकता थी। इसी तरह श्रीकृष्ण को भी किसी अमोघ अस्त्र की आवश्यकता थी। साधनों की इस कमी को अग्निदेव ने पूरा कर दिया। उन्होंने वरुणदेव से सोम का दिया हुआ दिव्य गाण्डीव धनुष और दो अक्षय तुणीर तथा कपिध्वज और श्वेत घोड़ों वाला रथ लेकर अर्जुन को दे दिया, और सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण को प्रदान किया। इस चक्र की विशेषता यह थी कि यह शत्रु का संहार करके छोड़ने वाले के पास लौट आता था। वरुण-देव ने एक कौमुदी नामक उत्तम गदा भी श्रीकृष्ण को भेंट की। इन दिव्य शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर श्रीकृष्णार्जुन खाण्डव वन-दहन में अग्निदेव की सहायता करने के लिए प्रस्तुत हो गए।

भगवान अग्निदेव ने खाण्डव वन को जलाना प्रारम्भ किया। वन में आग भड़कते ही जब पशु-पक्षी भागने लगे तो श्रीकृष्ण और अर्जुन उन्हें भागने से रोकने लगे। उधर देवराज इन्द्र ने मेघों को वर्षा बरसाने की आज्ञा दी। अर्जुन ने बाणों की बौछार से वर्षा को रोक डाला। वन धू-धू करके जल रहा था पर इन्द्र का मित्र तक्षक नाग उस समय कुरुक्षेत्र गया हुआ था। उसका पुत्र अश्वसेन नाग आग में बुरी तरह घिरा हुआ था। उस नाग की मां ने बेटे की सुरक्षा के लिए उसे निगल लिया और उड़कर भागने लगी पर अर्जुन ने बाण मारकर उसका सिर काटना चाहा तो इन्द्र ने धूल को आंधी चला कर अर्जुन की आंखों में धूल झोंक दी। इस प्रकार अश्वसेन के प्राण बचे। अब तो अर्जुन ने क्रुद्ध होकर इन्द्र से ही युद्ध ठान दिया। इस युद्ध में अर्जुन अजेय रहा। इन्द्र वापस लौट गये। इसी समय भागते हुए मय नामक असुर पर श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ी। वे चक्र से उसे मारने को उद्यत हुए ही थे कि मय अर्जुन के पास जाकर प्राणों की भिक्षा मांगने लगा तो अर्जुन ने उसे अभयदान दे दिया। अतः श्रीकृष्ण ने अपने चक्र को रोक लिया। खाण्डव वन पन्द्रह दिनों तक धू-धू करके जलता रहा। अश्वसेन नाग, मय असुर और शारंग पक्षी के चार बच्चों के अतिरिक्त कोई जीवित नहीं बच सका।

अर्जुन और श्रीकृष्ण के पराक्रम से प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र ने अर्जुन को उपयुक्त समय आने पर दिव्यास्त्र प्रदान करने का वचन दिया और श्रीकृष्ण ने वर मांगा कि मेरी और अर्जुन की मैत्री सदा बनी रहे। अग्निदेव भी तृप्त होकर चले गए।

सभापर्व

मयासुर का सभा भवन

अर्जुन ने मयासुर के प्राण बचाए थे, इसलिए वह इस उपकार के बदले अर्जुन का कोई कार्य सम्पन्न करना चाहता था। अर्जुन ने कहा, "मुझे बदले में कुछ नहीं चाहिए। आज से तुम मेरे मित्र हुए। अब जहां भी चाहो जा सकते हो।"

मय बोला, "आप महान हैं। आपकी बातें भी महान् हैं। पर मैं कुछ न कुछ सेवा अवश्य करना चाहता हूं। मैं दानवों का विश्वकर्मा हूं। मुझे अपनी कारीगरी दिखाने का अवसर प्रदान करें।"

अर्जुन ने कहा, "मैंने जो तुम्हारे प्राण बचाए हैं, मुझे उसका बदला कदापि नहीं चाहिए। इसलिए तुम श्रीकृष्ण से पूछो। यह जो कहें, वह करो।" श्रीकृष्ण से पूछने पर उन्होंने राजा युधिष्ठिर के लिए एक अभूतपूर्व सभाभवन बनाने के लिए कहा।

मय को श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से मिलाया तो उन्होंने मय का सत्कार किया। फिर मंगल मुहूर्त में शास्त्रविधि के अनुसार सभा भवन का कार्य प्रारम्भ किया।

श्रीकृष्ण ने देवी कुन्ती से आज्ञा लेकर और सुभद्रा से मिल कर द्वारका के लिए प्रस्थान किया।

मयासुर अर्जुन से आज्ञा लेकर, जल्दी लौटने की बात कह कर सभा भवन के लिए उत्तम कोटि का सामान लेकर आ गया। इस सामान में स्फटिक-मणिमय द्रव्य उल्लेखनीय था। इसके साथ ही वह भीमसेन के लिए वज्रतुल्य एक बड़ी भारी गदा और अर्जुन के लिए देवदत्त नामक शंख भी ले आया।

सभाभवन जब बनकर तैयार हो गया तो उसकी शोभा निराली थी। उसकी दीवारों पर चित्र अंकित थे। खम्भों और छत में अनेक मणि-माणिक्य जड़े गए थे। धरती पर ऐसा विलक्षण सभाभवन दूसरा नहीं था। इस सभाभवन के मध्य में एक सुन्दर जलाशय था, जिस में इन्द्र नीलमणिमय कमल के पत्ते फैले थे। कमलों के मृणाल भी मणिमय थे। उसमें सुनहली मछलियां और कछुए भी थे। उस जलाशय के मणि-मण्डित होने के कारण कुछ राजा लोग भ्रमवश स्थल समझ लेते थे। इस सभाभवन को मयासुर ने चौदह महीनों में बनाया था। जब यह बनकर तैयार हुआ तो महाराज युधिष्ठिर को पूर्ण होने की सूचना दी गई। महाराज

युधिष्ठिर ने प्रवेश मुहूर्त पर दस हजार ब्राह्मणों को भोजन करवाया और दक्षिणा दी तब वे सभाभवन में प्रविष्ट हुए। इस सभाभवन में पाण्डवों के साथ विभिन्न देशों से आए हुए नरेश तथा ऋषि-मुनि बैठकर विचार-विमर्श करते थे। एक बार देवर्षि नारद भी यहां पधारे और राजा युधिष्ठिर को उपदेश दिया तथा युधिष्ठिर की जिज्ञासा पर इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर और ब्रह्मा की सभा का वर्णन किया।

राजसूय यज्ञ

देवर्षि नारद द्वारा राजर्षियों द्वारा किए गए यज्ञों से पुण्य लोकों की प्राप्ति की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर के मन में राजसूय यज्ञ करने का विचार उत्पन्न हुआ। युधिष्ठिर ने अपने समस्त सभासदों से विचार-विनिमय करके राजसूय यज्ञ करने का दृढ़ निश्चय किया। उन्होंने राजपुरुषों को आज्ञा देकर जनकल्याण के अनेक कार्य सम्पन्न किए और राज्य पर जितना ऋण था सब चुका दिया। युधिष्ठिर सच्चे अर्थों में प्रजा का रंजन करने वाले बन गए। प्रजा ने उन्हें 'धर्मराज' और 'अजातशत्रु' की उपाधियों से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया।

युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक दूत श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजा। वासुदेव श्रीकृष्ण उस दूत के साथ ही इन्द्रप्रस्थ आ गए। उन्होंने भी राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने के विचार का अनुमोदन किया। किन्तु श्रीकृष्ण ने सम्राट जरासंध की बढ़ी-चढ़ी शक्ति का परिचय देते हुए बताया कि शिशुपाल उसका सेनापति बना है और उनसे समस्त नरेश आतंकित और पराजित हो चुके हैं। अनेक अन्यत्र भाग गए हैं और बहुत से बन्दी बना लिए गए हैं। जब से मैंने कंस को मारा है, जरासंध मेरा शत्रु बन गया है क्योंकि जरासंध की दो पुत्रियां कंस को ब्याही थीं। उसी के भय से हमें मथुरा छोड़ कर दूर पश्चिम में द्वारकापुरी जाकर रहना पड़ रहा है। वह अत्यन्त शक्तिशाली सेना का स्वामी है और इस समय अजेय बना हुआ है।

कौरव पक्ष में भी बड़े-बड़े शूरवीर हैं, जिन्हें जीतना सम्भव नहीं लगता पर सम्भवतः वह सौजन्यवश आपका गौरव स्वीकार कर लेंगे किन्तु महाबली जरासंध के जीवित रहते, आप राजसूय यज्ञ पूरा नहीं कर सकते। उसने पराजित राजाओं को गिरिव्रज में कैद कर रखा है और उनकी बलि देकर यज्ञ करना चाहता है।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले, "जब आप ही जरासंध के भगाए हुए द्वारका में पड़े हैं तो फिर दूसरा उसे कौन जीत सकता है।"

भीमसेन ने कहा, "श्रीकृष्ण राजनीति के पंडित हैं। लड़ने-भिड़ने में मैं भी दो हाथ दिखा सकता हूं। अर्जुन का तो जैसे जन्म ही विजय पाने के लिए हुआ है। हम तीनों मिल कर जरूर जरासंध को पराजित कर सकते हैं।"

अर्जुन ने भी जरासंध के द्वारा कैद राजाओं को छुड़ाने और जरासंध को मारने की बात का समर्थन किया। श्रीकृष्ण ने भी भीमसेन और अर्जुन का समर्थन किया। युधिष्ठिर

भी मान गए और श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन जरासंध को पराजित करने मगध की ओर चल दिए।

जरासंध की राजधानी मगध पहुंचकर उन तीनों ने नगर द्वार पर स्थित चैत्य में एक राक्षस के चमड़े से मढ़े हुए तीन नगारे रखे देखे। इन तीनों वीरों ने पहले इन नगारों को फोड़ डाला। चैत्य के शिखर को भीम ने कन्धे का धक्का मार कर गिरा दिया। नगर में अनेक अपशकुन होने लगे तो ब्राह्मणों ने अनेक टोने-टोटके किए।

कृष्ण, भीम और अर्जुन ब्राह्मणवेश में जरासंध के पास पहुंचे। जरासंध ने तीनों का स्वागत किया। अर्जुन और भीम के लिए श्रीकृष्ण ने कह दिया कि इन्होंने मौन व्रत रखा है। आधी रात से पहले बात नहीं करेंगे। राजा ने उन्हें अतिथि भवन में ठहराया और आधी रात को उनके पास गया। उसने झट पहचान लिया कि ये ब्राह्मण वेशधारी क्षत्रिय हैं। श्रीकृष्ण ने भी स्पष्ट कह दिया कि हम तुम्हारे शत्रु हैं और तुम्हें दण्ड देने आए हैं। तुमने राजाओं पर बहुत अत्याचार किए हैं। तुम रुद्र को मनुष्यबलि देना चाहते हो, और कहते हो कि तुम धार्मिक हो?" फिर श्रीकृष्ण ने अपना तीनों का वास्तविक परिचय दिया और बोले, "या तो तुम हमसे युद्ध करो या कैद राजाओं को छोड़ दो।"

यह निश्चय हुआ कि जरासंध और भीमसेन का युद्ध होगा, और उसी से हार-जीत का निर्णय हो जाएगा। जरासंध ने युद्ध से पूर्व अपने पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करके उसे राज्याधिकार दे दिया।

जरासंध और भीमसेन में बड़ी देर तक मल्ल-युद्ध होता रहा। दोनों अपने दांव-पेच दिखाकर एक-दूसरे को पछाड़ने का प्रयत्न करने लगे। यह युद्ध बिना खाए-पिये और विश्राम किए तेरह दिन तक चलता रहा। चौदहवें दिन जरासंध ढीला पड़ गया। श्रीकृष्ण ने भीम का उत्साह बढ़ाया। भीम ने जरासंध को उठाकर घुमाना प्रारम्भ किया। उधर श्रीकृष्ण ने भीम को दिखाते हुए एक सरकंडा लेकर उसे दातुन की तरह बीच में से चीर दिया, और दोनों टुकड़ों को दूर-दूर फेंक दिया। भीमसेन इस संकेत को समझ गया और उसने जरासंध को पटक कर, अपने एक हाथ से उसका एक पैर पकड़ कर और दूसरे पैर पर अपना पैर रखकर दो खण्डों में चीर डाला, और दोनों टुकड़ों को दूर-दूर फेंक दिया। फिर श्रीकृष्ण ने जरासंध के रथ को जोत लिया और तीनों उस पर बैठकर वहां पहुंचे जहां राजा कैद थे। उन्होंने सारे राजाओं को कैद से मुक्त कर दिया। राजाओं ने श्रीकृष्ण और पाण्डवों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की तो श्रीकृष्णजी ने उन्हें बताया कि महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, इस कार्य में सब उनकी सहायता करें। राजाओं ने सहायता करना स्वीकार कर लिया। फिर जरासंध का पुत्र सहदेव भेंट लेकर श्रीकृष्ण के पास आया और पिता के अपराध के लिए क्षमा याचना की। उसने पिता का दाह-कर्म करने की अनुमति ली और सारे अन्तिम कृत्य किए।

महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा और महर्षि व्यास का आशीर्वाद लेकर अर्जुन उत्तर, भीमसेन पूर्व, सहदेव दक्षिण और नकुल पश्चिम दिशा में विजय के लिए सेना सहित निकले।

अर्जुन जिन राजाओं को जीतता, उनसे कर प्राप्त करता और अपने साथ ले लेता। वह कुलिन्द, कालकूट, आनर्त और शाकल द्वीप को जीत कर प्राग्ज्योतिषपुर पहुंचा। वहां के

किरात नरेश भगदत्त, चीन देश तथा समुद्री टापुओं में रहने वाले लोगों को साथ लेकर लड़ा किन्तु हार गया। फिर अर्जुन अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि प्रदेशों को विजय करने गया। इसके पश्चात् काश्मीर मण्डल के नरेशों को जीता। फिर त्रिगर्त, सुह्म, चोल, वाह्लीक काम्बोज, दरद को जीत कर धवलगिरि पर आकर पड़ाव डाला। फिर वह किम्पुरुष, हाटक और उत्तर कुरु पर विजय प्राप्त करके इन्द्रप्रस्थ लौट आया।

इसी प्रकार भीमसेन ने पूर्व दिशा के नरेशों को और नकुल ने दक्षिण दिशा के नरेशों को जीता। सहदेव पश्चिम दिशा के नरेशों को जीत चुका तो उसने भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को लंकापति विभीषण से कर उगाहने के लिए दूत बनाकर भेजा। धर्मात्मा विभीषण ने प्रचुर धनराशि और अन्य सामग्री भेंट की। वे सब इन्द्रप्रस्थ लौट आए।

युधिष्ठिर का राज-कोष अकथनीय रूप से बढ़ गया। अब यज्ञ करने का ठीक समय जानकर श्रीकृष्ण की आज्ञा से राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेने का निश्चय हुआ। राजाओं, ब्राह्मणों, बन्धु-बान्धवों, वैश्यों और शूद्रों को निमंत्रित करने के लिए आदमी भेजे गए। ऋषियों, मुनियों ब्राह्मणों और राजाओं तथा प्रजाजनों से घिरे हुए युधिष्ठिर मूर्तिमन्त धर्म दिखाई देते थे। कौरव और यादव भी पधारे हुए थे। सभी के वास-भोजन की यथायोग्य व्यवस्था की गई थी।

भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, विदुर तथा दुर्योधनादि सबको व्यवस्था के भिन्न-भिन्न कार्य सौंपे गए। श्रीकृष्ण ने समागत ब्राह्मणों के चरण पखारने का काम अपने लिए रखा।

श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा

भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर से समागत राजाओं की पाद्य और अर्घ्य से पूजा करने को कहा। और सबसे प्रथम उसकी पूजा करने को कहा जो सबमें श्रेष्ठ हो। युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह ने सबसे पहले वासुदेव श्रीकृष्ण की पूजा करने को कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा चेदिराज शिशुपाल को अनुचित लगी। उसका आक्षेप था कि कृष्ण न तो ऋत्विज् है, न आचार्य और न राजा, फिर इनकी पूजा सर्वप्रथम क्यों? शिशुपाल विरोधस्वरूप उस यज्ञ सभा से बाहर जाने लगा तो युधिष्ठिर ने उसे मनाकर बिठाया। भीष्मजी ने शिशुपाल के आक्षेपों का जोरदार शब्दों में उत्तर दिया और उन्हें प्रथम पूजा के सर्वथा योग्य माना।

शिशुपाल के विरोध की परवाह न करते हुए जब श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा की गई तो वह भड़क उठा और युद्ध करने के लिए दूसरे राजाओं को भी भड़काने लगा। कुछ राजा शिशुपाल के बहकावे में आ गए और यज्ञ में विघ्न डालने को तैयार हो गए। इस विषम परिस्थिति को देखकर युधिष्ठिर चिंतित हो उठे तो भीष्म ने उन्हें सान्त्वना दी।

शिशुपाल ने अब भीष्म पितामह को जली-कटी बातें सुनानी प्रारम्भ कीं। फिर उसने श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा।

श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की काली करतूतें सभा को बताईं और शिशुपाल के संहार के लिए सुदर्शन चक्र का प्रयोग करने को उद्यत होकर कहा, "मैंने शिशुपाल की माता की याचना

पर इसके सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया था, इसलिए अब तक कुछ नहीं किया। अब वे सीमा लांघ गए हैं अतः मैं अभी आपके सामने इस का वध करता हूं।" यह कहकर उन्होंने चक्र से उसका सिर काट डाला।

युधिष्ठिर के कहने से शिशुपाल का अन्तिम संस्कार किया गया।

युधिष्ठिर ने इस यज्ञ में अपना सारा कोष दान-दक्षिणा में देकर यज्ञ सम्पन्न किया।

समागत राजा अनुमति लेकर अपने-अपने राज्य को लौट गए। श्रीकृष्ण भी द्वारका-पुरी लौट गए।

व्यास देव भी भावी अनिष्ट-शंका की युधिष्ठिर को सूचना देकर तपोभूमि में चले गए।

ज्येष्ठ कौरव दुर्योधन मामा शकुनि के साथ युधिष्ठिर के मय निर्मित सभाभवन को देख रहे थे। एक जगह ऐसा स्थल बना हुआ था जिसमें जल का भ्रम होता था। वहां पहुंचने पर दुर्योधन ने अपनी धोती का छोर ऊपर उठा लिया ताकि भीग न जाए। आगे एक बावली थी जो देखने पर स्थल दिखती थी। दुर्योधन उसे स्थल समझकर ठोकर लगने से गिर पड़ा और सारे वस्त्र भीग गए। दुर्योधन को यों गिरता देखकर पाण्डव हंस पड़े जिससे दुर्योधन क्षुब्ध हुआ। आगे एक ऐसा द्वार बना था जो बन्द होने पर भी खुला-सा दीखता था। उसमें प्रवेश करते ही दुर्योधन का सिर द्वार से टकरा गया और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। आगे इससे बिल्कुल उलट प्रकार का द्वार था जो खुला होने पर बन्द दिखता था। उसे खोलने के लिए दुर्योधन धक्का मारने लगा तो स्वयं गिर पड़ा। इस प्रकार बार-बार धोखा खाकर दुर्योधन का मन बड़ा खिन्न हुआ। पाण्डवों की समृद्धि उसे कांटे की तरह चुभने लगी। उसने एक बार फिर शकुनि से मिलकर षड्यंत्र रचने का निश्चय किया।

जुए की बाजी

दुर्योधन का विचार था कि पाण्डवों को युद्ध करके जीत लिया जाए पर शकुनि इसे संभव नहीं मानता था। वह छल से ही उनका नाश करने के पक्ष में था। वह जानता था कि युधिष्ठिर को जुआ खेलने की बुरी लत है और वह अनाड़ी खिलाड़ी है। इसलिए युद्ध क्षेत्र के बजाय जुए के पांसे फेंककर पाण्डवों का राज्य जीता जा सकता है। उसने कहा कि जुए में कोई भी मेरी बराबरी नहीं कर सकता। दुर्योधन के कहने से शकुनि ने अपनी योजना धृतराष्ट्र को बताई। वे इस सम्बन्ध में विदुर की सम्मति जानना चाहते थे पर दुर्योधन ने रोक दिया। बड़े पुत्र के हठ के कारण, सन्तान की ममता के वशीभूत होकर धृतराष्ट्र ने इसकी स्वीकृति दे दी। पता लगने पर विदुर जी ने विरोध किया जो व्यर्थ रहा।

बात यह थी कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में राजाओं द्वारा दिए गए 'कर' और भेंट में प्राप्त चीजों को देखकर और मयासुर द्वारा निर्मित उस सभाभवन को देखकर जिसमें जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम होता था, दुर्योधन ईर्ष्या से जल उठा था। उसे अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा था। राजा धृतराष्ट्र ने उसे समझाया पर वह नहीं माना। अन्त में

चौसर का खेल

जुआ खेलने के लिए एक विस्तृत भवन का निर्माण हुआ और धृतराष्ट्र ने विदुर को, युधिष्ठिर को जुए का निमंत्रण देने के लिए भेजा।

युधिष्ठिर भाइयों और द्रौपदी सहित दूसरे दिन हस्तिनापुर के लिए चल पड़े। दूसरे दिन शकुनि ने युधिष्ठिर से जुआ खेलने के लिए कहा तो युधिष्ठिर ने जुआ खेलने की खूब निन्दा की किन्तु यह भी कहा कि आप कहते हैं तो जरूर खेलूंगा। फिर जब यह बात सामने आई कि दुर्योधन के लिए शकुनि पांसे फेंकेगा, तो युधिष्ठिर ने फिर हल्का-सा विरोध किया पर यह विनाशकारी खेल होकर ही रहा।

फिर तो एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर दांव लगने लगे। शकुनि के कपटपूर्ण खेल के कारण युधिष्ठिर हारते गए और वह जीतता गया। धन-रत्न, हाथी-घोड़े, दास-दासी, रथ-वाहन, सेना और युद्धसामग्री—युधिष्ठिर सभी कुछ दांव पर लगाते गए और हारते गए।

विदुर जी ने राजा धृतराष्ट्र को फिर समझाने का प्रयत्न किया कि इस खेल को अब भी रुकवा दें पर सब व्यर्थ! इसके विपरीत दुर्योधन ने महात्मा विदुर को कहा कि आप हमारा अन्न खाकर भी पाण्डवों का पक्ष लेते हैं। आपकी जहां जाने की इच्छा हो वहां चले जाइए।

जुए का खेल होता रहा। युधिष्ठिर जब सम्पूर्ण राज्य हार चुके तो उन्होंने भाइयों के पहने हुए अलंकरण और भाइयों को भी दांव पर लगा दिया और हारते गए। इस पर भी वे नहीं रुके और अपने आपको ही दांव पर लगा दिया और हार गए, और अन्त में शकुनि के स्मरण कराने पर उन्होंने द्रौपदी कृष्णा को दांव पर लगा दिया।

जब सभासदों ने युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दांव पर लगाने की बात सुनी तो उन्हें धिक्कारने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र अपने पक्ष की जीत पर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गए।

अब तो दुर्योधन ने महात्मा विदुर को कहा, "विदुर! जाओ और द्रौपदी को बुला लाओ। वह मेरे महलों में अब झाड़ू लगाया करेगी और दासियों के साथ रहेगी।"

दुर्योधन को धृष्टतापूर्ण वचन कहते सुनकर महात्मा विदुर ने उसे खूब फटकारा और कहा, "क्योंकि युधिष्ठिर पहले अपने आपको जुए में हार चुके थे और उसके बाद उन्होंने द्रौपदी को दांव पर लगाया। इसलिए अपने आपको हार चुकने के बाद वे द्रौपदी को दांव पर लगाने का अधिकार खो चुके थे। इसलिए द्रौपदी हारी नहीं गई है।"

जब विदुर अन्तःपुर से द्रौपदी को बुलाने नहीं गए तो दुर्योधन ने सूतपुत्र प्रतिकामी को द्रौपदी को बुलाने भेजा।

द्रौपदी ने कहा, "प्रतिकामिन्! तुम सभा में जाकर राजा युधिष्ठिर से पूछकर आओ कि वह पहले अपने को हारे हैं या मुझे?"

प्रतिकामी सभा में गया और युधिष्ठिर से द्रौपदी का प्रश्न पूछा। पर वे तो दुःख से जड़-जैसे हो गए थे, इसलिए कुछ नहीं बोले। दुर्योधन ने प्रतिकामी को फिर द्रौपदी के पास भेजा और कहलाया कि वह स्वयं सभा में आकर युधिष्ठिर से पूछ ले। द्रौपदी ने प्रतिकामी से कहा कि वह सभा में जाकर भीष्म आदि वृद्धजनों से पूछकर आए कि मुझे क्या करना चाहिए। पर प्रतिकामी के पूछने पर भीष्म आदि गुरुजन भी मुंह लटकाए बैठे रहे। प्रतिकामी

ने दोबारा पूछा तब भी कोई कुछ न बोला। देर होते देख दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी, "तुम स्वयं द्रौपदी को पकड़कर यहां ले आओ।"

दुःशासन ने अन्तःपुर में जाकर द्रौपदी को सभा में चलने के लिए कहा तो द्रौपदी गांधारी के पास भाग गई किन्तु दुःशासन गर्जता हुआ उसके पीछे दौड़ा और द्रौपदी को केशों से पकड़ लिया और घसीटता हुआ सभा में ले चला। लज्जा और अपमान से व्यथित द्रौपदी ने अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से भगवान् कृष्ण का स्मरण किया।

दुःशासन द्वारा द्रौपदी को इस प्रकार खींचे जाते देखकर भी भीष्म, द्रोण आदि गुरुजन जब कुछ नहीं बोले तो द्रौपदी ने सभा को सम्बोधित करते हुए पूछा, "आप उत्तर दें, कि धर्म के अनुसार मैं जीती गई हूं या नहीं ?"

सब चुप। पाण्डव तो द्रौपदी की ओर आंख उठाकर देख भी नहीं पा रहे थे। दुःशासन उसके बालों को खींचते हुए 'दासी' कहकर द्रौपदी को अपमानित करने लगा तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। इस पर कर्ण बड़ा प्रसन्न हुआ।

भीष्म पितामह ने यद्यपि कहा कि युधिष्ठिर पहले स्वयं को हार चुका था तब उसने तुम्हें दांव पर लगाया है किन्तु इसकी वैधता और अवैधता का निर्णय करना कठिन है।

भीमसेन का क्रोध भीतर ही भीतर सुलग रहा था। उसने इस सबके लिए युधिष्ठिर को ही दोषी बताया और सहदेव से आग लाने के लिए कहा ताकि जिन भुजाओं से युधिष्ठिर ने जुआ खेलकर द्रौपदी को हारा है, उन भुजाओं को जला दिया जाए।

दुर्योधन के छोटे भाई विकर्ण ने दुर्योधन और शकुनि का विरोध किया। उसने कहा कि द्रौपदी को दांव पर लगाने का अधिकार युधिष्ठिर को नहीं रह गया था।

विकर्ण की बात सुनकर कर्ण ने उसे बुरा-भला सुनाया और दुःशासन को कहा कि पाण्डवों और द्रौपदी के वस्त्र उतार लो।

कर्ण की बात सुनकर पाण्डवों ने तो स्वयं ही अपने वस्त्र उतार कर रख दिए और दुःशासन बलपूर्वक द्रौपदी के वस्त्रों को खींचने लगा। द्रौपदी ने देख लिया कि भगवान् के सिवा इस अपमान से रक्षा करने वाला दूसरा कोई नहीं है। वह उन्हें पुकारने लगी।

भगवान् ने अपनी माया से द्रौपदी के वस्त्र को इतना विस्तार प्रदान किया कि दुःशासन उस साड़ी को खींचते-खींचते थक गया किन्तु वह समाप्त नहीं हुई। वह थककर हार मान बैठा। भगवान् ने द्रौपदी की लाज रख ली।

दुःशासन के इस पापकर्म से क्रुद्ध होकर भीमसेन ने सभी सभासदों को सुनाते हुए कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि युद्ध में इसकी छाती फाड़कर इसका रक्त पीऊंगा।"

द्रौपदी का प्रश्न अब भी अनिर्णीत था। दुर्योधन ने कहा कि इस बात का निर्णय धर्मात्मा युधिष्ठिर पर ही छोड़ दिया जाए कि द्रौपदी हारी गई है या नहीं।

ऐसा कहकर पापी दुर्योधन ने पाण्डवों को अपमानित करने के लिए अपनी दाहिनी जांघ को उघाड़कर, मुस्कराते हुए द्रौपदी की ओर देखा।

यह कौरवों की नीचता की सीमा थी। जीत के कारण वे भले-बुरे का विवेक खो बैठे थे। उधर भीमसेन इस अत्यन्त अपमानजनक दृश्य को देखकर बोला, "ऐ पापी दुर्योधन ! मैं तेरी इस टांग को युद्ध में न तोड़ डालूं तो मेरा नाम भीमसेन नहीं।"

बात बिगड़ चली थी। स्थायी कलह का बीज बो दिया गया था। रानी गांधारी और विदुर ने अन्धे धृतराष्ट्र को सारी परिस्थिति से परिचित कराया तो वे बोले, "बहू रानी द्रौपदी ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे मांगो।"

द्रौपदी ने कहा, "महाराज युधिष्ठिर दासत्व से मुक्त हो जाएं ताकि मेरी सन्तान को कोई दास-पुत्र न कह सके।"

फिर धृतराष्ट्र ने उसे दूसरा वर मांगने को कहा तो उसने शेष चारों पाण्डवों को भी दासत्व कर से मुक्त करने का वर मांगा। फिर तीसरे वर के लिए कहा गया तो द्रौपदी ने इनकार कर दिया। फिर महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को उनका हारा हुआ राज्य व समस्त सम्पत्ति लौटा दी और इन्द्रप्रस्थ जाकर पुनः पहले की तरह राज्य करने को कहा। फिर उन्हें पुरानी सारी बातें भूलने के लिए पाण्डवों को कहा।

पाण्डव द्रौपदी सहित इन्द्रप्रस्थ को लौट गए और पहले की ही तरह राज-काज देखने लगे।

दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन को लगा कि हम जीतकर भी हार गए। इसलिए फिर से छल-कपट की बातें होने लगीं। उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया कि अब पाण्डव हमसे जरूर बदला लेंगे और आक्रमण करेंगे। इसलिए मैंने सोचा है कि एक बार फिर युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुलाया जाए और इस बार जुए की शर्त यह हो कि जो पक्ष हार जाए बारह वर्ष तक वन में जाकर रहे और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करे। यदि अज्ञातवास की अवधि में उसे कोई पहचान ले तो दोबारा बारह वर्ष का बनवास काटे। यह तो निश्चित है कि जुए में शकुनि मामा को कोई नहीं हरा सकता। इस तरह तेरह वर्ष बनवास बिताकर जब पाण्डव लौटेंगे तो हम पर्याप्त शक्तिशाली हो चुके होंगे और पाण्डव दुर्बल। तब युद्ध करके उन्हें जीत लेंगे।"

धृतराष्ट्र ने इस शर्त के लिए स्वीकृति दे दी। परन्तु द्रोण, कृप, विदुर आदि सभी ने जुए का विरोध किया। गांधारी ने भी अपने पति राजा धृतराष्ट्र को पुत्रों के मोह में फंसकर उनकी हां में हां मिलाने से रोका। पर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को रोकने में असमर्थता प्रकट की।

अब की बार सूत पुत्र प्रतिकामी युधिष्ठिर को बुलाने गया। सब कुछ जानते-बूझते भी युधिष्ठिर फिर जुआ खेलने हस्तिनापुर लौट आए।

शकुनि ने बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की जुए की शर्त बताई और खेल प्रारम्भ हुआ। शकुनि ने पासा फेंका और जीत गया।

पाण्डवों का वनवास

कुन्ती पुत्र बनवास की दीक्षा लेकर वन को चल दिए। देवी कुन्ती को विदुर ने अपने यहां ही रहने के लिए कहा तो पाण्डवों ने मां कुन्ती को उनके पास छोड़ दिया। नगर-निवासी भी पाण्डवों के साथ वन जाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने जंगल में ही मंगल करने का निश्चय किया।

युधिष्ठिर के अनुरोध करने पर नागरिक बड़ी कठिनाई से वापस लौटे। नगर से बाहर

पाण्डवों की हिमालय-यात्रा

निकलकर पाण्डव गंगा जी के तट पर स्थित प्रमाण कोटि वट के समीप पहुंचे और रात वहीं बिताई। कुछ ब्राह्मण भी नगर से उनके साथ आ गये थे और अब भी लौटने को तैयार नहीं थे। ब्राह्मणों ने कहा कि हम अपने भोजन का भार आप पर नहीं डालेंगे। पर युधिष्ठिर के लिए यह बड़े दुःख की बात थी कि वे ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था भी न कर सकें। फिर ब्राह्मणों के उपदेश से युधिष्ठिर ने भगवान् सूर्य की उपासना की और उन्हें प्रसन्न करके ऐसा अक्षयपात्र प्राप्त किया जिसका अन्न तब तक समाप्त नहीं होता था, जब तक द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थी।

पाण्डव चलते-चलते अब काम्यक वन में प्रवेश कर रहे थे तब किर्मीक नामक राक्षस ने उनका मार्ग रोक लिया। यह किर्मीक भी बकासुर और हिडिम्ब का भाई-बन्धु था। भीम ने अनायास उसका संहार कर दिया।

जब यादवों को पता लगा कि कौरवों ने छल करके पाण्डवों को वनवास दे दिया है तो वे श्रीकृष्ण को साथ ले काम्यक वन में पहुंचे तो द्रौपदी ने अपनी व्यथा-कथा रो-रोकर श्री कृष्ण को सुनाई। द्रौपदी की करुण कथा सुन कर श्रीकृष्ण बोले, "द्रौपदी, तुम जिन पर क्रुद्ध हुई हो, उनकी पत्नियां तुमसे कई गुना दुःख पाएंगी। उनके पति युद्ध में मारे जाएंगे।"

इस प्रकार द्रौपदी को आश्वासन देकर भगवान श्रीकृष्ण ने बताया कि शाल्व ने हमारे ऊपर आक्रमण कर दिया था, इसलिए युद्ध में व्यस्त होने के कारण मैं द्यूत-सभा में नहीं आ सका, अन्यथा जो कुछ हुआ, इसे होने न देता। इधर भगवान् कृष्ण द्वारकापुरी को लौट चले और पाण्डवों ने पुरोहित धौम्य सहित द्वैतवन को प्रस्थान किया। यहां चिरजीवी महर्षि मार्कण्डेय ने पाण्डवों को धर्मोपदेश दिया और उत्तर की ओर चले गए।

द्वैतवन में जहां पाण्डव निवास करते थे, वहां दूर-दूर से वेदज्ञ ब्राह्मण और ऋषि-मुनि पधारने लगे। वैदिक ऋचाओं के गान और यज्ञाग्नि से वह तपोवन पवित्र यज्ञ-मण्डप जैसा दिखने लगा।

धर्मराज युधिष्ठिर कर्मगति को अटल मान कर सारे संकट को बड़े धीरज के साथ सहन कर रहे थे कि द्रौपदी की छाती में अपमान का बदला लेने की आग दिन-रात धू-धू कर के जल रही थी। उसने एक दिन युधिष्ठिर की धर्म-आस्था और शान्ति की बातों की खूब भर्त्सना की और तुरन्त युद्ध छेड़ने के लिए कहा। महाबली भीमसेन ने भी द्रौपदी का समर्थन किया। पर अपनी अचल धर्म-निष्ठा के कारण युधिष्ठिर अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। सबको सत्य और धर्म मार्ग पर चलने का उपदेश दिया।

इन्हीं दिनों घूमते-फिरते महर्षि वेदव्यास भी यहां आ पहुंचे और युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति नामक विद्या का उपदेश दिया। उन्होंने यह भी कहा कि महाबाहु अर्जुन तपस्या करके देवाधिदेव रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा यम से दिव्यास्त्रों को प्राप्त करें जिससे भावी युद्ध में विजयी हो सकें। उन्होंने पाण्डवों को एक स्थान पर देर तक न रहने की सलाह दी और दूसरे वन में चले जाने को कहा।

पाण्डव द्वैतवन से काम्यक वन में चले गए और वहां बस गए। एक दिन युधिष्ठिर ने महर्षि वेदव्यास के कथनानुसार अर्जुन को तपस्या द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की प्रेरणा दी। अर्जुन तप की दीक्षा लेकर और व्यास द्वारा सिखाई प्रतिस्मृति विद्या सीख कर वहां से

पाशुपत अस्त्र-प्रदान

विदा हुआ और हिमालय को प्रस्थान किया। अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर रुक गया और तपस्या करने लगा। अर्जुन से प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र ने उसे वर मांगने को कहा किन्तु जब अर्जुन ने सम्पूर्ण अस्त्रों के ज्ञान का वर मांगा तो इन्द्र बोले, "अस्त्रों का ज्ञान लेकर क्या करोगे, स्वर्ग मांगो तो मैं तुम्हें वह भी दे सकता हूं।" पर अर्जुन ने कहा, "मैं तो वैर का बदला लेना चाहता हूं, मुझे स्वर्ग की कामना नहीं है।"

इन्द्र ने कहा, "तुम तपस्या करके महादेव का दर्शन प्राप्त करो। तभी मैं तुम्हें सारे दिव्यास्त्रों का ज्ञान दूंगा।"

अब अर्जुन ने भगवान् महादेव की उपासना प्रारम्भ की। अर्जुन की उग्र तपस्या से प्रभावित होकर तपोवन के ऋषियों ने भगवान् शंकर से अर्जुन की मनोकामना पूरी करने की प्रार्थना की। महादेव पार्वती सहित किरात का रूप धारण कर अर्जुन के समीप पहुंचे तो क्या देखते हैं कि मूक नामक दानव सूअर का रूप बनाकर अर्जुन पर आक्रमण के लिए उद्यत था। अर्जुन ने उसे आक्रमण के लिए तैयार देखा तो धनुष-बाण उठाकर मारने के लिए तैयार हो गया। किरात वेशधारी शंकर ने अर्जुन को रोकना चाहा पर उसने बाण चला ही दिया। उधर किरात रूपधारी शंकर ने भी उसी सूअर पर बाण मारा। बाणों के लगने से सूअर रूपधारी राक्षस तो मर गया पर अर्जुन और किरात में झगड़ा होने लगा। एक कहता था कि इसे मैंने मारा है, और दूसरा कहता था कि मैंने। दोनों में इसी बात को लेकर युद्ध होने लगा। अन्त में अर्जुन के युद्ध-कौशल से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया तो अर्जुन अपने आराध्य देवता का दर्शन पाकर उनके चरणों में गिर पड़ा। भगवान् ने अपना पाशुपतास्त्र अर्जुन को प्रदान किया। इस अस्त्र को शक्ति अमोघ थी और इसका प्रयोग मानसिक संकल्प, दृष्टि, वाणी अथवा बाण द्वारा किया जा सकता था। शिवजी तदनन्तर अन्तर्धान हो गए।

इसके पश्चात् वरुणदेव, कुबेर, यमराज और देवराज इन्द्र अर्जुन के पास पधारे। इन सभी देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियां अर्जुन को प्रदान कीं और विजय का आशीर्वाद दिया।

विविध दिव्यास्त्रों को प्राप्त करके और उग्र तपस्या के कारण अर्जुन की शक्ति का कोई पारावार नहीं था।

अर्जुन की इच्छा थी कि स्वर्ग में देवराज इन्द्र के दर्शन करूं। उसकी इस मनोकामना को जानकर देवराज ने मातलि को रथ ले जाकर अर्जुन को लाने की आज्ञा दी। वहां अर्जुन ने इन्द्रसभा का दर्शन किया। इन्द्र ने भी अर्जुन को वज्र और अन्य अस्त्रों की शिक्षा दी। अर्जुन की इच्छा अब भाइयों के पास लौट जाने को हुई किन्तु इन्द्रदेव के अनुरोध से वह पांच वर्ष देवलोक में ही रहा। इस बीच उसने चित्रसेन से नृत्य, गीत और वाद्य की शिक्षा ग्रहण की।

देवराज इन्द्र ने अर्जुन के देर तक देवलोक में ठहरने के कारण, उसके भाई पाण्डवों को होने वाली चिन्ता का अनुमान लगाकर, महर्षि लोमश से कहला भेजा कि अर्जुन के बारे में चिन्ता न करें, वह लौटने ही वाला है।

उधर व्यास देव जी से राजा धृतराष्ट्र को पता लग गया था कि अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए देवलोक को गया हुआ है। धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों के भविष्य की बड़ी चिन्ता हुई।

उधर द्रौपदी सहित पाण्डव इतने वर्षों तक अर्जुन के तपस्या करके न लौटने से चिन्तित हो उठे।

महर्षि लोमश ने काम्यक वन में पहुंचकर युधिष्ठिर को अर्जुन का दिव्यास्त्रों का प्राप्त करना और देवलोक में सकुशल होना निवेदित किया तो उनकी चिन्ता दूर हुई। अर्जुन की तपस्या की सफलता से उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अब उन्होंने तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया।

विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हुए द्रौपदी सहित पाण्डव प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। यहीं पर यदुवंशी श्री कृष्णादि ने उनसे भेंट की। पाण्डवों को वन-वन भटकते देखकर बलराम जी ने ईश्वरीय न्याय पर कुछ शंका प्रकट की। सात्यकि ने भविष्य में जो कुछ करना चाहिए, उस पर प्रकाश डाला और श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर के धर्माचरण की प्रशंसा की। यदुवंशी द्वारका चले गये और पाण्डव पयोष्णी नदी के तटप्रदेश में वास करने लगे।

पाण्डव वनवास काल में तीर्थ-भ्रमण, स्नान और माहात्म्य-श्रवण के साथ-साथ प्राचीन पुण्य कथाओं का श्रवण करते हुए घूमते रहे। इससे उन्हें अपनी विपत्ति के दिन काटने में बड़ी सुविधा हुई। यात्रा करते-करते वे उत्तराखण्ड पहुंचे। महर्षि लोमश उनके साथ थे और वे सब स्थानों-तीर्थों से सुपरिचित थे। यहां से वे गन्धमादन पर्वत पर गए। पहुंचे ही थे कि प्रचंड आंधी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। इस अन्धड़ में अपनी जगह खड़े रहना भी कठिन हो गया। ओलावृष्टि से शरीर क्षत-विक्षत होने लगे। बिजली की चमक, बादलों की गर्ज, धूल-कंकड़ और वर्षा से प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। इस उत्पात के थमने पर जब वे फिर आगे बढ़े तो थोड़ी ही दूर चलने पर द्रौपदी को मूर्छा आ गई। सबने मूर्च्छा दूर करने के प्रयत्न किये और मृगचर्म बिछाकर द्रौपदी को उस पर लिटा दिया। थोड़ी देर में मूर्छा तो दूर हो गई किन्तु द्रौपदी के लिए आगे चलना कठिन था। इस कठिन अवसर पर भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच को स्मरण किया और उसके साथियों की सहायता से गन्धमादन पर्वत को लांघ कर बद्रीकाश्रम में प्रवेश किया।

हनुमान और भीमसेन

बदरिकाश्रम में एक दिन वायु में उड़ता हुआ एक सहस्रदल कमल आ गिरा। द्रौपदी ने उस अत्यन्त सुन्दर और सुगन्धयुक्त कमल को देखा। वह कमल उसे इतना भाया कि वैसे ही और कमल लाने के लिए उसने भीमसेन से आग्रह किया। भीमसेन कमल लाने चल पड़े। मार्ग में हिंस्र पशुओं का संहार करते वे चले जा रहे थे कि गंधमादन के एक शिखर पर उन्हें कदलीवन दिखाई दिया। वे उस कदलीवन में जा पहुंचे। वहां उन्होंने जल-पक्षियों को उड़ते देखा तो यह सोचकर कि ये सरोवर की ओर जा रहे हैं, उनकी दिशा में चलना प्रारंभ किया। आगे जाने पर उन्हें एक विशाल सरोवर दिखाई दिया। यह सरोवर सहस्रदल कमलों

से भरा हुआ था। भीमसेन ने पहले इस सरोवर में स्नान किया। यहां से वे जिस मार्ग पर चले वह देवलोक की ओर जाता था। चिरंजीवी पवनपुत्र हनुमान ने भाई भीमसेन को इस ओर जाने से रोकने के लिए एक युक्ति सोची। वे मार्ग को रोककर लम्बे लेट गये।

जब भीमसेन वहां पहुंचे और मार्ग में लेटे हुए हनुमान को देखा तो मार्ग छोड़ने के लिए जोर-जोर से कहने लगे।

हनुमान ने कहा, "अरे भाई! क्यों शोर मचाते हो। मैं बीमार हूं और यहां सोया हूं। खामखाह मुझे जगा दिया। तुम यहां किसलिए आ धमके हो? लगता है तुम्हें धर्म-कर्म का कुछ विचार नहीं है तभी तो तुम यहां बेचारे हरिणों को मार रहे हो। और फिर आगे कहां जा रहे हो? आगे का मार्ग अगम्य है। मेरी बात मानो तो आगे जाने का विचार छोड़ दो। नहीं तो तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जायेंगे।"

भीमसेन ने कहा, "तुम कौन हो मेरे प्राणों की चिन्ता करने वाले। मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं है। उठो, एक ओर हो जाओ। यह रास्ता है, सोने की जगह नहीं।"

हनुमान ने कहा, "भैया, मैं रोग का मारा यहां पड़ा हूं। मुझसे उठा नहीं जाता। तुम मेरे ऊपर से निकल जाओ। या फिर मेरी पूंछ को एक ओर हटाकर निकल जाओ।"

भीमसेन पूंछ को बायें हाथ से पकड़कर उठाने लगे पर वह तो हिली तक नहीं। फिर तो उन्होंने दोनों हाथों से पूरा जोर लगाकर भी पूंछ उठाने का प्रयत्न किया पर वह हिली तक नहीं। अब अपने बल का घमण्ड करने वाले भीमसेन का मुंह लज्जा से नीचे झुक गया। भीमसेन भी समझ गया कि यह कोई साधारण वानर नहीं है। उसने परिचय पूछा तो हनुमान ने अपना वास्तविक परिचय दिया और युद्ध में सहायता करने का आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गए।

यहां से चलकर भीम सौगन्धिक वन में पहुंचे। वहां उनकी भेंट पहरा देने वाले राक्षसों से हुई। उन्होंने भीमसेन से इस वन में आने का कारण पूछा। भीमसेन ने परिचय दिया तो वे राक्षस बोले यहां प्रवेश के लिए कुबेर से अनुमति लेना आवश्यक है। पर भीमसेन ने अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और सरोवर में घुस गए। पहरेदार राक्षस जब उन्हें मारने-पकड़ने दौड़े तो भीमसेन ने उन सबको मार भगाया और कमल लेकर वापस लौटने को उद्यत हुए। उधर द्रौपदी युधिष्ठिर आदि भी उन्हें खोजते यहां आ पहुंचे। भीमसेन उन्हें मिल गए और कमल लेकर द्रौपदी प्रसन्न हो गई।

बदरिकाश्रम में

यहां से फिर वे विशाला बदरी के नाम से प्रसिद्ध नर-नारायण आश्रम को लौट गए। यहां एक ब्राह्मण वेशधारी राक्षस भी उनके समीप रहने लगा। इसका नाम जटासुर था। एक दिन भीम की अनुपस्थिति में उसने युधिष्ठिर-द्रौपदी और नकुल-सहदेव सबका हरण कर लिया। भीमसेन ने उसका पीछा किया और उसे युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ और भीम ने उसे अपनी गदा के प्रहार से मार डाला।

पाण्डव घूमते-फिरते कैलास पर्वत पर आ पहुंचे। उनका विचार था कि यहां उनकी

भेंट अर्जुन से हो जाएगी।

यहां भ्रमण करते वे महर्षि वृषपर्वा के आश्रम में पहुंचे और उनके दर्शन किए। अपने साथ के ब्राह्मणों को उसने यहीं छोड़ा और अपने यज्ञपात्र तथा आभूषण भी यहीं रख दिये। वृषपर्वा ने मार्ग के जानकार लोगों को उनके साथ कर दिया और पाण्डव उत्तर दिशा की ओर बढ़ चले। उन्होंने मुनि आर्ष्टिषेण के आश्रम में पहुंचकर पड़ाव डाला। वे आर्ष्टिषेण के आग्रह से यहीं रहकर अर्जुन की प्रतीक्षा करने लगे।

यहां एक दिन भीमसेन यक्षराज कुबेर की राजधानी देखने गया। वहां उसकी मुठभेड़ राजधानी के रक्षकों—यक्ष-राक्षसों से हो गई। भीमसेन ने वहां मणिमान् को मार डाला। यक्षों ने इस घटना की सूचना कुबेर को दी। उधर युधिष्ठिर पाण्डव भी भीम को खोजते आ रहे थे। कुबेर भी वहां पहुंचे तो पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम किया। पाण्डवों का परिचय पाकर धनपति कुबेर का क्रोध जाता रहा। कुबेर चले गए तो पाण्डव भी आश्रम को लौट आए।

महर्षि धौम्य अब पाण्डवों को मेरु पर्वत के शिखर दिखाने ले गए।

अर्जुन की वापसी

देवराज इन्द्र से स्वीकृति मिलने पर, वीर अर्जुन उन्हीं के रथ में बैठकर गन्धमादन पर्वत पर प्रकट हुए। सबसे पहले धौम्य ऋषि को प्रणाम करके उन्होंने अन्य पूज्यजनों को प्रणाम किया। दोनों ओर से कुशल-समाचार का आदान-प्रदान हुआ। फिर अर्जुन ने प्रवास-काल का संक्षिप्त विवरण उन्हें सुनाया। अर्जुन द्वारा अनेक दिव्यास्त्रों की प्राप्ति की बात सुनकर युधिष्ठिर ने उनका प्रदर्शन करने को कहा। दूसरे दिन जब अर्जुन अस्त्रों का प्रदर्शन करने लगा तो देवर्षि नारद ने यह कहकर रोक दिया कि लक्ष्य के बिना इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पाण्डवों के वनवास के दस वर्ष पूरे हो चुके थे। गन्धमादन से उतरकर घूमते-फिरते पुनः सरस्वती तटवर्ती द्वैतवन में लौट आए। यहां पहुंचते-पहुंचते वनवास का बारहवां वर्ष प्रारंभ हो गया।

एक दिन वन में घूमते भीमसेन को एक अजगर ने जकड़ लिया। महाबली भीम ने उससे छूटने का बहुत प्रयत्न किया पर असफल रहा। तब भीमसेन ने अजगर से उसका परिचय पूछा। उसने बताया कि वह पूर्वजन्म में तुम्हारा पूर्वज राजर्षि नहुष था। मैंने ब्राह्मणों का अनादर किया था और महर्षि अगस्त्य के शाप से अजगर बना हूं। मैं भूखा हूं और तुम्हें अपना भोजन बनाऊंगा। हां, यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं।

बड़ी देर तक भीमसेन के वापस न लौटने से चिन्तित युधिष्ठिर उसे खोजने निकले हुए थे, उन्होंने अजगर द्वारा जकड़े भीमसेन को देखा और भीमसेन के कहने से उन्होंने अजगर के प्रश्नों के उत्तर देना स्वीकार किया। अजगर के प्रश्न पूछने पर युधिष्ठिर ने स्पष्ट कहा कि ब्राह्मण और शूद्र आदि जातियां कर्म पर आधारित हैं, जन्म पर नहीं। इससे वह अजगर सन्तुष्ट हुआ और उसने भीमसेन को छोड़ दिया। वह स्वयं भी शाप से मुक्त हो गया और स्वर्ग चला गया।

पाण्डव द्वैतवन से फिर काम्यक वन को चले गए। यहां श्रीकृष्ण मुनि, मार्कण्डेय और नारदजी पाण्डवों से मिलने आए। श्रीकृष्ण ने यदुवंशियों की ओर से युधिष्ठिर को सहायता का वचन दिया। महामुनि मार्कण्डेय ने कर्म सिद्धान्त का उपदेश किया और श्रीकृष्ण द्वारका लौट गए।

उधर एक ब्राह्मण से पाण्डवों के वनवास का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र की चिन्ता बढ़ने लगी। पाण्डवों के साथ दुर्योधन और शकुनि द्वारा किए गए छल-कपट का उन्हें बड़ा दुःख था। शकुनि ने राजा धृतराष्ट्र को पाण्डवों की प्रशंसा करते सुन लिया था। उसने कर्ण और दुर्योधन को बताया। उन्होंने मिलकर निश्चय किया कि अपने शत्रु पाण्डवों को वनवास का दुःख भोगते अपनी आंखों देखना चाहिए। द्वैतवन जाने के लिए धृतराष्ट्र की स्वीकृति लेना आवश्यक था। उसके लिए उन्होंने बहाना ढूंढ निकाला कि वहां राज्य का जो गोधन है उसकी गणना और निरीक्षण के लिए जाना आवश्यक है। अनुमति मिल गई और दल-बल सहित कौरव उस वन में पहुंचे जहां पाण्डव वनवास कर रहे थे। गौओं की गणना हुई। फिर शिकार खेलने का कार्यक्रम बना। द्वैतवन सरोवर के निकट जब दुर्योधन के कर्मचारी पहुंचे तो गन्धर्वों ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। दुर्योधन को पता लगा तो उसने युद्ध करके गन्धर्वों को मार भगाने की तैयारी कर दी। कौरवों और गन्धर्वों में युद्ध होने लगा। गन्धर्वों के प्रमुख चित्रसेन ने मायामय युद्ध से कौरवों को खदेड़ना प्रारंभ किया। कर्ण और शकुनि गन्धर्वों से हार गए और भाग गए। गन्धर्वों ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया तब कौरवों के सैनिक दौड़कर पाण्डवों के पास पहुंचे। पाण्डवों को पता चल गया कि कौरव यहां सद्‌उद्देश्य से नहीं आए थे। भीमसेन इस बात से प्रसन्न थे कि गन्धर्वों के हाथों कौरवों की खूब दुर्गति हुई। पर महामना युधिष्ठिर ने इस समय अपने बन्धु कौरवों को गन्धर्वों से छुड़ाना ही उचित समझा। उन्होंने भीमसेन अर्जुनादि को कौरवों को छुड़ा लाने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा, "जब हम आपस में लड़ेंगे तो हम पांच और कौरव सौ होंगे। किन्तु जब किसी तीसरे पक्ष से लड़ने की बात होगी तो हम एक सौ पांच होंगे अर्थात् मिलकर उसका सामना करेंगे।"

भीमसेन ने युधिष्ठिर की इस नीति का विरोध किया किन्तु अन्त में सब कौरवों को छुड़ाने चल पड़े। पाण्डवों और गन्धर्वों में बड़ी देर तक भयंकर युद्ध होता रहा किन्तु अन्त में चित्रसेन गन्धर्व जो खाण्डव-वन-दहन के समय अर्जुन का मित्र बन गया था, उसे पहचानकर पाण्डवों ने युद्ध बन्द कर दिया और आपस में प्रीतिपूर्वक कुशल-क्षेम पूछने लगे।

अर्जुन ने दुर्योधन को छोड़ देने के लिए कहा तो चित्रसेन ने उनके दुष्टाचरण की बात बताई। अन्त में युधिष्ठिर के कहने से गन्धर्वों ने कौरवों को मुक्त किया।

दुर्योधन जिन्हें अपमानित करने वन में गया था, उनके सामने गन्धर्वों से अपमानित हुआ और उन्हीं की कृपा से जान भी बची। उसे इस बात से भारी धक्का लगा और आत्म-ग्लानि का अनुभव हुआ। उसने मार्ग में ही आमरण अनशन करने का विचार कर अपने स्थान पर दुःशासन को राजा बनाने का आदेश दिया। कर्ण के समझाने-बुझाने से भी वह नहीं माना।

फिर शकुनि ने भी दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न किया पर आत्मग्लानि से दुखी

दुर्योधन नहीं माना और आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया। पर जब शकुनि ने कहा कि पाण्डव अब तक इतने बड़े-बड़े अपमान सहकर भी जीवित हैं और तुम्हें नष्ट करने के सपने देखते हैं और तुम एक छोटी-सी पराजय से अपमान अनुभव कर प्राण देने चले हो, यह कैसी मूर्खता है! पाण्डवों ने तुम्हारे साथ जो भलाई की है, उसके बदले उनका राज्य उन्हें लौटा दो न?

ये बातें सुनकर दुर्योधन का दर्प फिर जाग उठा। वह हस्तिनापुर पहुंचा। वहां भीष्म पितामह ने सारी घटना सुनी तो कर्ण की बहुत निन्दा की और दुर्योधन को पाण्डवों के साथ सन्धि करने को कहा। पर दुर्योधन ने उनकी बात को अनसुना करके बड़ी ढिठाई का व्यवहार किया और दूसरी ओर चला गया। अब फिर कर्ण और शकुनि के साथ उसकी मंत्रणा होने लगी। कर्ण ने कहा, "ये बूढ़े भीष्म जब देखो तब पाण्डवों की प्रशंसा और तुम्हारी निंदा करते रहते हैं। मैं क्योंकि तुम्हारा मित्र हूं, इसीलिए मुझे तो वे फूटी आंखों भी नहीं देखना चाहते। भीष्म ने जो मेरी निन्दा की है, उसका उत्तर मैं उन्हें अपने ढंग से देना चाहता हूं। राजसूय यज्ञ के लिए सारे पाण्डवों ने जो दिग्विजय का काम किया था, वह मैं तुम्हारे लिए अकेला ही कर दिखाऊंगा। तुम मुझे सेना और आवश्यक सामग्री देने की व्यवस्था करो।"

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने आवश्यक तैयारी के लिए आज्ञा दी और कर्ण सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़ा।

यथासमय कर्ण समूची पृथ्वी को जीतकर वापस हस्तिनापुर लौट आया। राजा दुर्योधन ने बड़े समारोह के साथ कर्ण का स्वागत किया। कर्ण की प्रशंसा करते हुए दुर्योधन ने कहा, 'मेरे लिए जो कार्य भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य नहीं कर सके, वह अप्रतिम वीर कर्ण ने कर दिखाया। ऐसे मित्र को पाकर मैं अपने को गौरवशाली मानता हूं।"

अब दुर्योधन ने भी राजसूय यज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की तो पुरोहित ने कहा कि जब तक आपके पिता धृतराष्ट्र जीवित हैं, यह यज्ञ नहीं किया जा सकता। हां, एक दूसरा यज्ञ है, उसे आप कर सकते हैं। उसका नाम वैष्णव यज्ञ है। दुर्योधन ने वैष्णव यज्ञ करने का निश्चय किया। तैयारी होने लगी। द्वैतवन में वास कर रहे पाण्डवों को भी निमंत्रण भेजा गया किन्तु वनवास के कारण उन्होंने नगर में आना अस्वीकार कर दिया और यथासमय यज्ञ प्रारम्भ होकर निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

यज्ञ समाप्ति के बाद जब दुर्योधन राजकार्य देखने लगा तो एक दिन कर्ण ने कहा, "मित्र दुर्योधन! जब सारे पांडव मारे जाएंगे, और तुम राजसूय यज्ञ करोगे तब तुम्हारा हम अभिनन्दन करेंगे।" इस बात को सुनकर दुर्योधन ने कर्ण को छाती से लगा लिया। तब प्रसन्न होकर कर्ण ने प्रतिज्ञा की, "मैं अर्जुन को जब तक मार नहीं लेता तब तक मैं दूसरे से अपने पैर नहीं धुलवाऊंगा और किसी के कुछ मांगने पर 'नहीं है' नहीं कहूंगा।" कर्ण द्वारा अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा सुनकर कौरवों ने समझ लिया कि एक न एक दिन कर्ण के हाथों अर्जुन अवश्य मारा जाएगा। वे जोर से सिंह गर्जना करके अपने हर्षातिरेक को व्यक्त करने लगे।

पाण्डव द्वैतवन में पर्याप्त कन्द-मूल-फल न मिलने से पुनः काम्यक वन में गए। उधर दूतों द्वारा जब युधिष्ठिर को पता लगा कि कर्ण ने अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा की है तो वे चिंतित हो उठे। वे जानते थे कि अपने दिव्य कवच-कुण्डलों के कारण कर्ण को जीतना कठिन है।

इन्हीं दिनों घूमते-फिरते महर्षि वेदव्यास पाण्डवों के पास पहुंचे और उन्हें बहुत-सी ज्ञान की बातें समझाईं।

दुर्वासा का आतिथ्य-सत्कार

एक दिन महातपस्वी दुर्वासा ऋषि अपने दस हजार शिष्यों सहित हस्तिनापुर पधारे। दुर्योधन ने उनके साथ अत्यन्त शिष्ट व्यवहार किया और उनका खूब आदर-सत्कार किया। वे कभी कहते, "जल्दी भोजन तैयार करवाओ, भूख लगी है।" और जब भोजन तैयार हो जाता तो कहते, "भूख नहीं है।" कभी आधी रात को भोजन मांगते और कभी भोजन को बुरा बताते। इतना होने पर भी दुर्योधन ने उन्हें क्रोध करने का अवसर नहीं दिया। तब वे अत्यंत प्रसन्न हुए। दुर्वासा ने दुर्योधन को वर मांगने के लिए कहा। दुर्योधन ने अपनी ओर से ऐसा वर मांगा जिससे दुर्वासा पाण्डवों पर कुपित हो जाएं और उन्हें शाप दे दें। उसने कहा, "महर्षे! हमारे कुल में धर्मात्मा युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। इस समय वे वन में वास कर रहे हैं। कृपा कर अपने शिष्यों सहित उनके भी अतिथि बनिये। और यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो वहां ऐसे समय पर जाइए जब सबको भोजन करा कर द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकी हो।"

दुर्योधन को तथास्तु कह कर दुर्वासा असमय पाण्डवों के पास पहुंचे। ब्राह्मणों और पाण्डवों को भोजन करा कर द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकी थी। युधिष्ठिर ने उनका सत्कार किया और नित्य नियम पूरा करके भोजन करने के लिए आने को कहा। ऋषि दुर्वासा शिष्यों सहित स्नान करने चले गए।

द्रौपदी को बड़ी चिन्ता हुई कि अब क्या किया जाये। बहुत सोचने-विचारने पर भी भोजन की व्यवस्था करने का कोई उपाय उसे नहीं सूझा। अन्त में उसने भगवान् श्रीकृष्ण को स्मरण किया। भक्तवत्सल भगवान् वासुदेव द्रौपदी का संकट दूर करने के लिए तुरंत वहां पहुंचे। द्रौपदी ने उन्हें प्रणाम किया और अपनी समस्या उनके सामने रखी।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले, "देवि! मुझे बड़ी भूख लगी है। पहले मेरे लिए भोजन लाओ। उसके बाद कुछ और करो।" द्रौपदी ने बताया, "भगवान् सूर्य द्वारा दिए गए अक्षय-पात्र से तभी तक अन्न मिलता है, जब तक मैं भोजन न कर लूं। आज मैं भोजन कर चुकी हूं। अतः इस समय भोजन नहीं मिल सकता।" श्रीकृष्ण बोले, "तुम उस अक्षयपात्र को मेरे पास ले आओ।" उसमें जरा-सा अन्न कहीं चिपका रह गया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे खा लिया और सन्तुष्ट होकर बोले, "जाओ, और शीघ्र मुनि दुर्वासा को शिष्यों सहित भोजन करने को कहो।"

सहदेव महर्षि और उनके शिष्यों को बुलाने नदी तट पर पहुंचे। किन्तु जगदीश्वर की अपार महिमा और माया के कारण वे सभी पूर्ण तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने अपने गुरु से कहा कि हमें तो जरा भी भूख नहीं है तो दुर्वासा जी ने भी यही अनुभव किया। अब उन्हें चिन्ता हुई कि भोजन व्यर्थ जाने से कहीं पाण्डव हमें शाप न दे दें। उसी डर से वे सब भाग खड़े हुए।

सहदेव ने युधिष्ठिर को आकर बताया कि वे सब इधर-उधर भाग गए हैं तो युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें भय था कि कोपी महर्षि दुर्वासा किसी भी समय आकर फिर भोजन के लिए कह सकते हैं। तब श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें दुर्वासा के भय से मुक्त किया और द्वारकापुरी को लौट गए।

द्रौपदी-हरण

काम्यक वन में पाण्डव अपने वनवास के दिन जैसे-तैसे काट रहे थे कि एक दिन ब्राह्मणों की रक्षा के लिए, वन के हिंसक पशुओं को मारने पांचों पाण्डवों को जाना पड़ा और देवी द्रौपदी आश्रम में अकेली ही रह गई। पाण्डवों की अनुपस्थिति में सिन्धु देश का प्रतापी राजा जयद्रथ शाल्व देश की ओर जा रहा था। काम्यक वन के मार्ग से निकलते हुए उसने आश्रम-द्वार पर खड़ी देवी द्रौपदी को देखा। कृष्णा द्रौपदी के रूप-यौवन को देखकर जयद्रथ ठगा-सा रह गया। उसने अपने साथी राजा कोटिकास्य को द्रौपदी का परिचय जानने के लिए भेजा। कोटिकास्य ने द्रौपदी का परिचय प्राप्त करके जयद्रथ को दिया। द्रौपदी ने समझा कि ये राजा लोग कहीं जा रहे हैं और हमारे आतिथ्य के योग्य हैं। फिर जयद्रथ द्रौपदी के पास पहुंचा और उसने द्रौपदी से कहा, "तुम इन राज्यभ्रष्ट पाण्डवों को छोड़कर मेरी रानी बन जाओ और राजसुख का उपभोग करो।"

यह सुनकर द्रौपदी ने उसे खूब फटकारा और उसके दुर्भाव को जानकर, उसे लम्बी बहस में उलझाए रखा, जिससे पाण्डव आ जाएं तो इसे उचित दण्ड दें। पर जयद्रथ बलपूर्वक उसे हर लेना चाहता था। द्रौपदी ने पुरोहित धौम्य को पुकारा और जयद्रथ को धक्का मारकर गिरा दिया। धौम्य जी ने भी जयद्रथ को रोका पर वह नहीं माना। वह द्रौपदी को बलपूर्वक ले गया। धौम्य उनका पीछा करते चले। जब पाण्डव लौटकर आए तो आश्रम में द्रौपदी नहीं थी और उसकी दासी धात्रेयी रो रही थी। उसने सारी बातें पाण्डवों को बता दीं। पाण्डव जयद्रथ का पीछा करने चल पड़े। उन्होंने जयद्रथ को द्रौपदी को ले जाते देख लिया और युद्ध प्रारंभ हो गया। महापराक्रमी पाण्डवों ने जयद्रथ की सेना का संहार कर द्रौपदी को तो छुड़ा लिया किन्तु जयद्रथ भाग खड़ा हुआ। युधिष्ठिर तो द्रौपदी और नकुल-सहदेव के साथ आश्रम को लौट आए किन्तु भीम और अर्जुन जयद्रथ का पीछा करने लगे। अन्ततोगत्वा भीमसेन ने जयद्रथ को पकड़ ही लिया और थप्पड़ों तथा लातों-घूंसों से उसकी खूब पिटाई की। अर्जुन को लगा कि भीमसेन इसे जान से ही मार डालेगा, इसलिए उसने कहा, "भैया! इसे जान से मत मारना। यह दुःशला का पति है। वह बेचारी विधवा हो जाएगी।" भीमसेन ने जयद्रथ से कहा, "यदि तू अपने को सार्वजनिक रूप में युधिष्ठिर का दास घोषित करने का वचन दे तो मैं तुझे छोड़ सकता हूं।" मरता क्या न करता! जयद्रथ ने शर्त स्वीकार कर ली तो भीम ने उसकी पिटाई बन्द कर दी और उसे अपने रथ पर बिठाकर आश्रम को चल पड़ा। अन्त में युधिष्ठिर के कहने से जयद्रथ को सिर मूंडकर छोड़ दिया और दासत्व की शर्त से भी मुक्त कर दिया।

अपने अपमान का बदला लेने के लिए जयद्रथ ने हरद्वार में भगवान् शंकर की उपासना

प्रारंभ की और उन्हें प्रसन्न करके पांचों पाण्डवों को जीतने का वर मांगा पर महादेव ने अर्जुन के अतिरिक्त चार पांडवों पर विजय पाने का ही वरदान दिया।

पाण्डवों पर आये दिन नयी विपत्ति आ पड़ती थी। वे बड़े दुखी थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि इन दुखों का अन्त कब और कैसे होगा! इस निराशा के अवसर पर मार्कण्डेय ने बताया, "तुम्हारे ऊपर जैसी विपत्तियां आई हैं, इससे भी बड़ी-बड़ी विपत्तियां दूसरों पर आ चुकी हैं और उन्होंने धैर्य के साथ उनका सामना किया है। उन्होंने भगवान् श्री रामचन्द्र की करुण कहानी धर्मात्मा युधिष्ठिर को सुनाई तो उनके मन में धीरज का भाव आया।

कवच-कुण्डल-दान

पाण्डवों का हितसाधन करने के लिए देवराज इन्द्र ने सोचा कि कर्ण की शक्ति को क्षीण करना चाहिए, और यह तभी हो सकता था जब कर्ण अपने दिव्य कवच और कुण्डल उतार दे। युधिष्ठिर को भी कर्ण के अतिरिक्त कौरव पक्ष के किसी वीर का भय नहीं था। कर्ण ने अकेले ही दिग्विजय की थी और अर्जुन से वीरता में कम नहीं था। उसने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा भी कर रखी थी। क्योंकि अर्जुन देवराज इन्द्र के वरदान से और कर्ण सूर्य के वरदान से उत्पन्न हुआ था, इसलिए दोनों देवता अपने-अपने पुत्रों की सुरक्षा करना चाहते थे। सूर्य देव को इन्द्र के मनोभाव का पता लग गया था। अतः उन्होंने स्वप्न में कर्ण से कहा कि वह अपने कवच-कुण्डल किसी को दान में न दे। किन्तु कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि मैं किसी भी मांगने वाले को 'न' नहीं कहूंगा। अत उसने निश्चय किया कि कवच-कुण्डल दे देने से मेरे प्राण भले ही चले जाएं पर मेरा वचन झूठा नहीं होना चाहिए। सूर्य के स्वप्न में बहुत समझाने पर भी कर्ण अपनी बात पर दृढ़ रहा। अन्त में सूर्य देव ने सलाह दी, "यदि तुम अपना वचन पूरा करने के लिए उन्हें कवच-कुण्डल दे ही दो तो भी उनसे कोई अमोघ अस्त्र मांग लेना।

दूसरे ही दिन देवराज इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर महादानी कर्ण के पास आए। कर्ण को क्या पता था कि ये ही इन्द्र हैं। कर्ण ने ब्राह्मण देवता से पूछा, "विप्रवर! आज्ञा कीजिए, आपको दान में क्या दूं?"

ब्राह्मण ने कहा, "दानवीर, मुझे दान में तुम्हारे कवच और कुण्डल चाहिए।"

कर्ण ने कहा, "भूमि, गौएं, धन-सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर चाहे जो कुछ मांग लीजिए पर मैं कवच-कुण्डल नहीं दे सकता।"

ब्राह्मण भी अपनी बात पर अड़ा रहा तब कर्ण ने सहजात कवच-कुण्डल देने की तैयारी की। उसे पता लग गया था कि यह ब्राह्मण वेशधारी देवराज इन्द्र ही हैं। उसने कहा, "इसके बदले में मुझे कोई शक्ति दीजिए।"

तब इन्द्र ने कहा, "मेरे वज्र के अतिरिक्त तुम और जो भी वस्तु मांगोगे, मैं तुम्हें दूंगा।"

कर्ण ने कवच-कुण्डलों के बदले इन्द्र से अमोघ शक्ति ले ली। अमोघ शक्ति के लिए शर्त यह थी कि वह कर्ण के किसी एक शत्रु पर प्रयोग होने के बाद इन्द्र के पास वापस चली

जाएगी। इन्द्र ने अमोघ शक्ति देकर बदले में कवच-कुण्डल ले लिये।

जब दुर्योधनादि कौरवों को पता लगा कि कर्ण ने अपने कवच-कुण्डल दे दिए तो वे बड़े दुखी हुए। वे तो कर्ण के सहारे ही उछल-कूद रहे थे। उधर काम्यक वन में पाण्डवों को पता लगा कि कर्ण अब कवच-कुण्डलों से विहीन हो गया है तो वे निश्चित हो गए।

यक्ष और युधिष्ठिर

पाण्डव काम्यक वन से पुनः द्वैतवन में लौट आए। एक दिन की बात है—एक ब्राह्मण का रस्सी में बंधा अरणी सहित मंथन काष्ठ वृक्ष में टंगा था। एक मृग उस वृक्ष से अपना शरीर खुजलाने लगा। इस बीच अरणी और मंथन काष्ठ उसके सींग में अटक गए, और मृग कहीं दूसरी ओर भाग गया। बेचारा ब्राह्मण पाण्डवों के पास आया और बोला कि मृग का पीछा करके मेरी अरणी और मथनी को ला दीजिए। ब्राह्मण की सहायता करने के लिए पांचों पाण्डव धनुष-बाण लेकर मृग को खोजने निकल पड़े। मृग उन्हें दीख तो गया पर उसे बींध नहीं सके। अन्त में थकथकाकर एक वृक्ष की छाया में बैठकर सुस्ताने लगे। प्यास से उनके मुंह सूख रहे थे।

युधिष्ठिर ने नकुल से वृक्ष पर चढ़कर आस-पास किसी सरोवर का पता लगाने को कहा। नकुल ने बगुलों और सारसों के कूजने से अनुमान लगाया कि उस ओर सरोवर होगा। उसने पानी भर लाने के लिए तरकश उठाया और चल पड़ा। जलाशय के पास पहुंचकर ज्यों ही नकुल पानी पीने लगा, उसे आकाशवाणी सुनाई दी : "इस सरोवर पर मेरा अधिकार है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तभी पानी पियो और ले भी जाओ।"

नकुल ने आकाशवाणी को सुना-अनसुना करके ज्यों ही पानी पिया, अचेत होकर गिर पड़ा। उधर देर तक नकुल की प्रतीक्षा करने पर सहदेव को भेजा गया, किन्तु उसका भी वही हाल हुआ। इसी तरह अर्जुन और भीम भी आए और पानी पीते ही अचेत होकर गिर पड़े। जब चिन्ता और प्यास से व्याकुल युधिष्ठिर सरोवर पर आए तो अपने चारों भाइयों के लिए करुण विलाप करने लगे। फिर वे सोचने लगे कि यहां न तो लड़ाई-झगड़े का कोई चिह्न है और न इनके शरीर पर कोई आघात ही है। वे सोचने लगे, कहीं इस पानी में विष तो नहीं मिला हुआ है। फिर जब वे स्वयं भी पानी में उतरने लगे तो फिर वही आकाशवाणी हुई। युधिष्ठिर ने कहा, "मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा, प्रश्न पूछो।"

यक्ष ने अनेक प्रश्न पूछे और युधिष्ठिर ने जो उत्तर दिए, उनसे यक्ष का समाधान हो गया। यक्ष ने प्रसन्न होकर कहा, "युधिष्ठिर, तुम अपने इन चार भाइयों में जिस किसी एक को चाहो, उसे मैं जीवित कर दूंगा।"

तब धर्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा, "नकुल को जीवित कर दीजिए।"

यक्ष बोला, "महाबली भीम और धनुर्धारी अर्जुन को छोड़ कर तुम अपने सौतेले भाई नकुल को क्यों जीवित करवाना चाहते हो?"

युधिष्ठिर ने कहा, "कुन्ती और माद्री मेरे पिता की दो पत्नियां थीं। मैं कुन्ती का पुत्र

जीवित हूं ही। माद्री का भी एक पुत्र जीवित रहे, यही सोचकर मैं नकुल को जीवित करवाना चाहता हूं।"

युधिष्ठिर के इस समता-भाव से प्रसन्न होकर यक्ष ने चारों पाण्डवों को जीवित कर दिया।

फिर युधिष्ठिर के पूछने पर यक्ष ने बताया, "मैं तुम्हारा धर्मपिता धर्मराज हूं। तुम्हारी परीक्षा लेने आया था। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो चाहो, वर मांगो।"

युधिष्ठिर ने कहा, "ब्राह्मण की अरणी और मंथन-काष्ठ मिल जाएं।"

धर्मराज बोले, "उन्हें तो मृग रूप में मैं ही ले आया था। वे दोनों मेरे पास हैं। तुम लेते जाओ।"

फिर युधिष्ठिर ने दूसरा वर मांगा, "प्रभो! हमारे बनवास के बारह वर्ष पूरे हो रहे हैं। तेरहवें वर्ष हमें अज्ञातवास में रहना है। ऐसा वरदान दीजिए कि कोई हमें पहचान न सके।"

धर्मराज ने 'तथास्तु' कहा।

फिर तीसरे वर के रूप में युधिष्ठिर ने कहा, "मुझे ऐसा वर दीजिए कि लोभ, मोह और क्रोध को जीत सकूं तथा दान, तप और सत्य में सदा मेरा मन लगा रहे।"

धर्मराज ने यह वर भी प्रसन्नता से प्रदान किया और अन्तर्धान हो गए। पाण्डव आश्रम में लौट आए और ब्राह्मण को उसकी अरणी और मंथन-काष्ठ दे दिए।

युधिष्ठिर ने अपने साथ रहने वाले ब्राह्मणों से हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "बारह वर्ष बनवास की अवधि पूरी हो रही है और अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष प्रारम्भ होने वाला है। इसलिए आप लोग हमें आज्ञा दें। कौरवों ने हमें पहचानने के लिए अवश्यमेव गुप्तचर नियत कर रखे होंगे। आपके आशीर्वाद से यदि दोबारा ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि हम अपने राज्य में विप्रवरों सहित प्रतिष्ठित हुए तो पुनः आपकी पूजा और उपदेश से अपना जीवन सफल बनाएंगे।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर रोने लगे और मूर्छित होकर गिर पड़े।

आचार्य धौम्य ने उन्हें धीरज धरने और दुःख को प्रसन्नतापूर्वक सहने का उपदेश दिया। सभी ब्राह्मण पाण्डवों को आशीर्वाद प्रदान कर अभिलषित स्थानों को चले गए।

फिर द्रौपदी और पुरोहित धौम्य सहित पांचों पाण्डव वहां से दूसरे स्थान को चल दिए।

विराट् पर्व

अज्ञातवास

वे यह निश्चय करने बैठे कि अज्ञातवास का एक वर्ष कहां रहकर बिताया जाए। सर्व-सम्मति से विराट् नगर में जाकर रहने का निश्चय हुआ किन्तु समस्या यह थी कि वहां रहकर कौन अपने को क्या बताए और क्या काम करे।

युधिष्ठिर ने कहा, "मैं कंक नामक ब्राह्मण बनकर राजा विराट् को अपने पासों के खेल से प्रसन्न करूंगा और उनका सभासद बनकर वहां रहूंगा।"

भीमसेन ने कहा, "मैं बल्लव नाम से अपना परिचय देकर राजा की पाकशाला के अध्यक्ष का कार्य करूंगा। और कहूंगा कि मैं महाराज युधिष्ठिर के गजशिक्षक, सूपकर्ता (रसोई बनाने वाला) और पहलवान का काम करता था।"

अर्जुन ने कहा, "मैं अपने को हीजड़ा बताकर वहां रहूंगा। और अपना नाम बृहन्नला बताऊंगा। मैं गीत गाने, बाजे बजाने और नाचने की शिक्षा वहां की स्त्रियों को दूंगा।"

नकुल ने कहा, "मैं घोड़ों को काबू करने और सिधाने के कार्य पर वहां नियुक्त हो जाऊंगा। मैं अपना नाम ग्रन्थिक बताऊंगा। मैं घोड़ों को तरह-तरह की चालें सिखाने और उनके इलाज का काम भी करूंगा। मैं कहूंगा कि यही काम महाराज युधिष्ठिर के यहां भी करता रहा हूं।"

सहदेव ने कहा, "मैं विराट् के यहां गोशाला का अध्यक्ष बनकर रहूंगा। मेरा नाम तन्तिपाल होगा। मैं राजा विराट् के गोधन को स्वस्थ, सुन्दर, नीरोग और दुधारू बनाऊंगा। उसकी संख्या बढ़ाऊंगा।"

द्रौपदी ने कहा, "मैं सैरन्ध्री नाम से राजा विराट् के अन्तःपुर में रहूंगी और रानियों के बाल संवारने, वेणी गूंथने का काम किया करूंगी। मैं कहूंगी कि मैं रानी द्रौपदी की परिचारिका थी।"

इतना निश्चय होने पर उन्होंने अपने रथों, सारथियों को द्वारकापुरी जाने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् द्रौपदी की परिचारिकाओं और पाकशाला में काम करने वालों को द्रौपदी के मायके पांचाल देश में भेज दिया।

आचार्य धौम्य के साथ नकुल और सहदेव को पहले भेज देने का निश्चय हुआ। जाने से पूर्व धौम्य बोले, "युधिष्ठिर, तुम और अर्जुन सावधान रहकर द्रौपदी की रक्षा करना। इसके अतिरिक्त राजसेवा के सम्बन्ध में भी उन्होंने अनेक उपयोगी बातें बताईं। फिर यात्रा के मांगलिक कृत्य करके सब वहां से विदा हुए।

पाण्डव विराट् नगर के बाहर श्मशान भूमि के पास जा पहुंचे। अब यदि वे अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ नगर में जाते तो ठीक नहीं होता। पहचान लिए जाने का डर था। इसलिए श्मशान के पास टीले पर एक शमी वृक्ष था। यह वृक्ष बड़ा घना और कठिनाई से चढ़ पाने योग्य था। उस वृक्ष के एक कोटर में, जिसमें वर्षा का पानी जाने का भी डर नहीं था, सबने अपने शस्त्रास्त्र छिपा कर रख दिए। फिर श्मशान से एक लाश उठाकर उस वृक्ष की शाखा के साथ लटका दी जिससे लाश की सड़ांध के कारण कोई उस वृक्ष के पास भी न आए। युधिष्ठिर ने पांचों भाइयों के गुप्तनाम रखे जिससे समय पड़ने पर उन नामों का प्रयोग किया जा सके। नाम क्रमशः इस प्रकार थे—जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल।

अब पाण्डवों ने द्रौपदी सहित अपना-अपना वेश बदला। सबसे पहले युधिष्ठिर राजा के दरबार में गए। कंक नाम और चौसर खेलने में निपुणता अपना काम बताकर वे राजा के प्रिय सभासद और सखा बन गए।

फिर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपना नाम और काम बताकर वहां पर नौकर हो गए।

भीमसेन बल्लव नाम से रसोइये का कार्य करने लगे। अर्जुन बृहन्नला नामक हीजड़े के रूप में नाच, गान और वाद्य सिखाने लगे।

नकुल ग्रंथिक नाम से अश्वशाला में नियुक्त हुए। सहदेव अपने को अरिष्टनेमि वैश्य बताकर गोशाला में नियुक्त हो गया।

द्रौपदी मैले-से वस्त्र पहनकर नगर में घूमने लगी। राजा विराट् की रानी सुदेष्णा ने उसे दीन अवस्था में देखा तो अपने पास बुला लिया और पूछा, "भद्रे! तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?"

द्रौपदी ने कहा, "मेरा नाम सैरन्ध्री है और मैं केश-प्रसाधन के कार्य में दक्ष हूं। वही काम करना चाहती हूं।"

रानी सुदेष्णा को सैरन्ध्री की बात पर विश्वास नहीं हुआ क्योंकि वह देखने में महारानी जैसी लगती थी। पर द्रौपदी ने फिर कहा, "मैं केश गूंथने, माला पिरोने, शृंगार करने में चतुर हूं। पहले मैं श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा की प्रसाधिका थी, बाद में पाण्डवों की धर्मपत्नी द्रौपदी की प्रसाधिका रही।"

रानी ने कहा, "मैं तुम्हें रख तो लेती पर तुम्हारे रूप में ऐसा जादू है कि राजा तुम्हें चाहने लगेंगे। देखो, राजकुल की ये स्त्रियां ही तुम पर मोहित हैं, फिर पुरुषों का क्या हाल होगा? कौन तुम्हें अपनी पत्नी न बनाना चाहेगा! इसलिए तुम्हें महल में रखना विपत्ति मोल लेना है!"

द्रौपदी ने कहा, "महारानी! महाराज विराट् या दूसरा कोई भी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। पांच गन्धर्व मेरे पति हैं और वे मेरी सदा रक्षा करते हैं। जो मुझसे अपने पैर नहीं

बुलवाता और मुझे अपना झूठा अन्न नहीं देता, उससे वे प्रसन्न रहते हैं। किन्तु यदि कोई मुझे साधारण स्त्री समझ कर बलपूर्वक अपनी पत्नी बनाना चाहता है, उसे उसी रात वे मार डालते हैं।"

रानी सुदेष्णा ने उसे अपनी प्रसाधिका नियुक्त कर दिया।

राजा विराट् के यहां छद्मवेश में रहते पाण्डवों के तीन मास व्यतीत हो गए। तब एक बड़े उत्सव का दिन आया। उस उत्सव के अवसर पर प्रसिद्ध पहलवानों की कुश्तियां होती थीं। नामी पहलवान इकट्ठे हुए। उनमें एक जीमूत पहलवान था। उसके साथ मल्लयुद्ध करने के लिए कोई भी पहलवान तैयार नहीं हुआ। तब राजा ने अपने रसोइये बल्लव (भीमसेन) को बुलाया। वह लंगोट बांधकर अखाड़े में उतरा तो दर्शक तालियां बजाने लगे। मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ। दर्शक दोनों का उत्साह बढ़ाने लगे। अन्त में भीमसेन ने उसे ऊपर उठाकर और चक्कर घिन्नी देकर धरती पर दे मारा। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि नामी पहलवान को इस रसोइये ने मार डाला। राजा ने भीमसेन को खूब पुरस्कार दिया। जब भीमसेन से लड़ने के लिए कोई पहलवान नहीं मिलता तो राजा हाथियों और सिंहों से भीमसेन का युद्ध करवाते।

कीचक-वध

पाण्डवों को छद्मवेश में यहां रहते दस मास बीत चले। एक दिन राजा विराट् के सेनापति महाबली कीचक की दृष्टि द्रौपदी पर पड़ी। कीचक रानी सुदेष्णा का भाई था। राजा का साला। कीचक सैरन्ध्री के रूप-यौवन पर आसक्त होकर उसे अपनी पत्नी बनाने की इच्छा करने लगा। उसने अपने मन की बात बहन सुदेष्णा को बताई। सुदेष्णा ने कहा कि तुम स्वयं सैरन्ध्री से बात कर लो। कीचक सैरन्ध्री के पास गया और अपना प्रस्ताव उसके सामने रखा। सैरन्ध्री ने कहा, "मैं किसी की विवाहिता हूं। मुझसे आपका इस तरह बात करना भी धर्म-विरुद्ध है।" पर कामासक्त कीचक पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह सैरन्ध्री को तरह-तरह के प्रलोभन देने लगा। तब सैरन्ध्री ने उसे स्पष्ट बताया कि मेरी ओर पापपूर्ण दृष्टि से देखोगे तो जो पांच गंधर्व मेरे पति हैं और मेरी रक्षा करते हैं, वे तुम्हें मार डालेंगे। निराश होकर कीचक फिर अपनी बहन सुदेष्णा के पास गया और सैरन्ध्री को प्राप्त करने का उपाय करने को कहा। सुदेष्णा ने उसे बहुत समझाया पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में भ्रातृ-स्नेह के कारण सुदेष्णा ने कहा, "मैं कुछ लेने के बहाने उसे तुम्हारे महल में भेजूंगी, तब तुम उससे बात करना।"

एक दिन कीचक के महल में भोज का आयोजन हुआ और रानी ने भोजन लाने सैरन्ध्री को भेजा। सैरन्ध्री ने जाने से आनाकानी की। पर रानी ने आश्वासन दिया कि वह तुम्हारे साथ किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार नहीं करेगा। तब सैरन्ध्री वहां गई। कीचक को लगा कि मेरी मनोकामना पूर्ण होने वाली है। वह पहले तो सैरन्ध्री से मीठी-मीठी बातें कहता रहा, फिर उसका हाथ पकड़कर एक ओर ले चला। इस हाथापाई में सैरन्ध्री ने कीचक को जोर का धक्का देकर गिरा दिया और स्वयं भाग खड़ी हुई और राजसभा में

पहुंची। कीचक भी उसका पीछा करता हुआ राजसभा में पहुंचा और उसके केश पकड़कर जोर की लात मारी। द्रौपदी गिर पड़ी और उसके मुंह से रक्त बहने लगा। सभा में सभी कीचक की निन्दा करने लगे। युधिष्ठिर और भीमसेन यह सब देख रहे थे। भीमसेन कीचक को मारने के लिए उठने लगे तो युधिष्ठिर ने संकेत से रोक दिया। चेतना आने पर सैरन्ध्री ने राजा से अपनी सुरक्षा के लिए कहा। पर सेनापति और साले कीचक को दण्ड देने की हिम्मत राजा को नहीं हुई। तब सैरन्ध्री ने सारी राजसभा को फटकार सुनाई।

सैरन्ध्री रानी सुदेष्णा के महल में चली गई। उसने अपनी व्यथा-कथा सुनाई। उसने रानी को फटकारा कि तुमने जान-बूझकर मुझे भेजा है।

फिर अपमान की आग में जलती द्रौपदी ने रात में भीमसेन से जाकर कहा कि किसी तरह इस पापी कीचक को ठिकाने लगाओ। भीम ने द्रौपदी को आश्वस्त करके विदा किया।

दूसरे दिन कीचक फिर द्रौपदी के पास आया और बोला, "तुमने देख लिया न, राजा तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। यहां का वास्तविक राजा मैं ही हूं। इसलिए मेरी बात मान मेरी रानी बन जाओ।"

सरन्ध्री ने कहा, "ठीक है। पर मैं अपवाद से डरती हूं। तुम चुपचाप रात को आना और नृत्यशाला में मिलना।"

द्रौपदी ने भीमसेन को बताया, रात को कीचक नृत्यशाला में आएगा। भीमसेन पहले ही नृत्यशाला में छिपकर बैठ गया। कीचक के वहां आने पर दोनों में लड़ाई प्रारम्भ हो गई। देर तक संघर्ष होता रहा। अन्त में कीचक को भीमसेन ने मार ही डाला।

कीचक के मारे जाने से राजा के मन में भय बैठ गया। उसने रानी सुदेष्णा के द्वारा सैरन्ध्री को कहलाया कि देवी, तुम यहां से चली जाओ। तुम्हारे रूप के जादू से पुरुष तुम्हारे प्रति आसक्त होंगे ही, और तुम्हारे पति गन्धर्व उन्हें मार डालेंगे। इससे सदा ही संकट बना रहेगा।

सैरन्ध्री ने कहा, "अब मुझे केवल तेरह दिन यहां और रहने दें। गन्धर्व राजा विराट् के बड़े कृतज्ञ होंगे और कुछ उपकार ही करेंगे।"

रानी ने स्वीकार कर लिया।

गोहरण

दुर्योधन ने अज्ञातवास की अवधि में पाण्डवों को खोज लेने के लिए सभी जगह अपने गुप्तचर भेज रखे थे। वे असफल होकर लौट आए। पाण्डवों का कहीं पता नहीं चला।

इससे दुर्योधन को बड़ी चिन्ता हुई। अज्ञातवास के कुछ ही दिन शेष थे। कीचक के मारे जाने का समाचार सुनकर दुर्योधन ने अनुमान लगाया कि उसको भीम के सिवा और कौन मार सकता है! उसे इस बात में भी सन्देह नहीं रहा कि सैरन्ध्री के वेश में द्रौपदी ही वहां रह रही है। इसलिए हम दल-बल सहित विराट् के गोधन का हरण करें। पाण्डव राजा विराट् की सहायता के लिए युद्ध में कूद पड़ेंगे और पहचान लिए जाएंगे।

त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा अपनी सेना सहित विराट् पर आक्रमण करने के लिए दुर्योधन और कर्ण के साथ चला।

त्रिगर्तराज सुशर्मा की सेना ने विराट् की गौओं पर अधिकार कर लिया।

पाण्डवों के वनवास के तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे।

गोरक्षकों ने सामना किया किन्तु हार गए। उन्होंने आक्रमण की सूचना राजा को दी।

राजा ने अपनी सेना को तैयार किया और युद्ध के लिए निकल पड़ा। कंक (युधिष्ठिर), वल्लव (भीम), ग्रन्थिक (नकुल), और तंतिपाल (सहदेव) भी युद्ध के लिए निकले।

राजा विराट् की और त्रिगर्त देश की सेना में भयंकर युद्ध छिड़ गया। त्रिगर्त देश की सेना ने विराट् की सेना को पराजित कर दिया और राजा विराट् को बन्दी बनाकर ले चली। युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि राजा को शत्रुओं के चंगुल से छुड़ा कर लाओ।

भीमसेन ने सुशर्मा को हराकर विराट् नरेश को छुड़ा लिया और सुशर्मा को कैद कर लिया। त्रिगर्त की सेना भाग खड़ी हुई। सारा गोधन भी उसके सैनिकों से वापस ले लिया। अन्त में युधिष्ठिर के कहने से भीम ने सुशर्मा को छोड़ दिया।

विराट् कंक और वल्लव के प्रति बड़ा कृतज्ञ था। उन्होंने ही उसे शत्रु के चंगुल से छुड़ाया था और शत्रु को कैद कर लिया था।

उधर दूसरी ओर से कौरव सेना ने विराट् की साठ हजार गौओं के समूह पर बल-पूर्वक अधिकार कर लिया, और उन्हें खदेड़कर ले जाने लगे। गोपालक भयभीत होकर सूचना देने पहुंचे। राजा तो पहले ही लड़ाई में गए हुए थे। चारों पाण्डव भी साथ थे। पीछे था राजकुमार उत्तर और पाण्डवों में से बृहन्नला (अर्जुन)।

राजकुमार उत्तर अन्तःपुर में स्त्रियों के बीच बैठा था जब गोपालक ने उसे यह सूचना दी।

राजकुमार उत्तर इस समय उत्तम सारथि का अभाव होने का रोना रोने लगा। वह बोला, "मेरे पास अच्छा सारथि होता तो मैं अभी गौओं को छुड़ा लाता। मैं दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा सबको मार भगाता।

यह सुनकर सैरन्ध्री (द्रौपदी) ने कहा, "यह बृहन्नला अर्जुन का सारथि रह चुका है। यह आपके सारथि का काम कर देगा।"

उत्तर ने अपनी बहन उत्तरा से बृहन्नला को सारथि बनने के लिए कहा।

बृहन्नला को सारथि बनाकर उत्तर युद्ध करने चला। पर जब शत्रु सेना सामने देखी तो भय से भागने लगा। बृहन्नला उसे धीरज बंधाता रहा पर अन्तःपुर में स्त्रियों के बीच डींग हांकने वाला राजकुमार उत्तर धनुष-बाण को रथ में ही छोड़ कर, उतरकर भाग खड़ा हुआ।

बृहन्नला ने भागते उत्तर को पकड़कर फिर रथ पर चढ़ाया। अब बृहन्नला ने उत्तर से कहा, "यदि तुम युद्ध करने से डरते हो तो रथ हांको और मैं युद्ध करूंगा।"

अर्जुन शमी वृक्ष पर से अपने शस्त्रास्त्र ले आया और कौरव सेना से युद्ध करने लगा। अर्जुन ने उत्तर को भयमुक्त करने के लिए अपना वास्तविक परिचय बता दिया।

अर्जुन शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर, उत्तर को सारथि बनाकर युद्ध-क्षेत्र में उतरा।

अर्जुन ने शंख बजाया तो कौरव समझ गए कि यह तो अर्जुन है। दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ कि हमने अज्ञातवास में पाण्डवों को पहचान लिया।

कर्ण ने अपने बल-पौरुष की डींग मारकर, युद्ध में अर्जुन को धराशायी करने की गर्वोक्ति की तो कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने के लिए उसे फटकार सुनाई। भीष्म पितामह ने संगठित होकर युद्ध करने की सलाह दी।

अर्जुन ने दुर्योधन की सेना पर आक्रमण करके गौओं को मुक्त करा लिया। फिर कर्ण पर आक्रमण किया तो कर्ण युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। फिर तो बारी-बारी सभी महारथियों को अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से युद्धक्षेत्र से पलायन करने पर विवश कर दिया।

कौरव सेना अर्जुन से परास्त होकर स्वदेश को लौट चली। विजयी अर्जुन और उत्तर भी वापस राजधानी को लौट चले।

राजा विराट् जब युद्ध से लौटे और पता लगा कि राजकुमार उत्तर बृहन्नला को सारथि बनाकर अकेला ही कौरव महारथियों से लड़ने चला गया है तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें चिन्तित देखकर कंक (युधिष्ठिर) ने कहा, "महाराज! बृहन्नला के सारथि होते आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। इतने में समाचार मिला कि उत्तर ने कौरव सेना को मार भगाया और गौएं छुड़ा लीं। उत्तर के स्वागत की तैयारियां होने लगीं। राजा विराट् को इस प्रसन्नता के समय जुआ खेलने की इच्छा हुई। खेलते-खेलते वे उत्तर की प्रशंसा करते तो कंक बृहन्नला की प्रशंसा करता। इस पर विराट् को क्रोध आ गया और उसने पासे को कंक के मुंह पर दे मारा। कंक की नाक से रक्त बहने लगा। पास खड़ी द्रौपदी ने उस रक्त को सुवर्णपात्र में पकड़ लिया। इसी समय उत्तर और बृहन्नला के आने की सूचना मिली। उत्तर ने युधिष्ठिर की यह दशा देखी तो पिता से पूछने लगा कि क्या हुआ है? क्योंकि उसे पाण्डवों का वास्तविक परिचय मिल चुका था। उत्तर के कहने से विराट् ने युधिष्ठिर से क्षमा मांगी।

विराट् फिर युद्ध-विजय के लिए प्रशंसा करने लगा तो राजकुमार उत्तर ने उन्हें बताया कि युद्ध मैंने नहीं, एक देव कुमार ने जीता है।

फिर तीन दिन बाद पांचों पाण्डव विराट् की सभा में उपस्थित हुए तो विराट् को पाण्डवों का वास्तविक परिचय मिला।

विराट् का राज्य पाण्डवों की सहायता से ही बचा था, इसलिए वे उनके प्रति कृतज्ञ थे और अपने को सौभाग्यशाली मानते थे। उन्होंने अर्जुन से अपनी पुत्री उत्तरा को ब्याहने का प्रस्ताव किया।

अर्जुन ने कहा, "मैं उत्तरा को अपने पुत्र अभिमन्यु के लिए स्वीकार करता हूं। वह मुझे अपना गुरु मानती है, इसलिए वह मेरी पत्नी नहीं हो सकती।"

विराट् ने राजकुमारी उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ सम्पन्न किया। विराट् ने दहेज में घोड़े, हाथी, गौएं, रत्न, वस्त्र और आभूषण दान किए और स्वयं को भी एक प्रकार से पाण्डवों को सौंप दिया।

उद्योग पर्व

युद्ध और शान्ति

उत्तरा-अभिमन्यु का विवाह सम्पन्न होने के एक दिन पश्चात् राजा विराट् के सभा-भवन में सभी समागत अतिथि—द्रुपद, श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि और पाण्डवों के अतिरिक्त राजा विराट् और दूसरे प्रमुखजन बैठे। इस सभा के संयोजक थे श्रीकृष्ण। उद्देश्य था कि अब पाण्डवों को राज्य-प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए।

सर्वप्रथम वासुदेव श्रीकृष्ण ने विषय-प्रवर्तन करते हुए कहा, "मान्य उपस्थित महानुभाव! आप सब जानते हैं कि शकुनि ने पाण्डवों को कैसे छल से जुए में परास्त किया और बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की शर्त रखकर इन्हें राज्यच्युत कर दिया। सत्याचरण करते हुए पाण्डवों ने वह शर्त भी पूरी कर दी। अब ऐसा उपाय सोचें जिससे कि दोनों पक्षों का हित हो और दोनों के साथ न्याय भी। भविष्य में कौरव इन्हें छल न सकें और कष्ट न दें, इस तरह की व्यवस्था करनी होगी। यदि युद्ध हुआ तो संख्याबल में अधिक होने पर भी कौरव परास्त होंगे। दोनों पक्षों की अपार जन-धन की हानि होगी। दुर्योधन इस सारी परिस्थिति के सम्बन्ध में क्या सोचता है, यह भी पता लगाना होगा। अतः किसी दूत को वहां भेजना चाहिए।"

श्री बलरामजी श्रीकृष्ण का भाषण सुनकर बोले, "पाण्डव अपने भाग का आधा राज्य प्राप्त कर लेंगे तो दोनों पक्षों में शान्ति रहेगी। दूत भेजने की बात का भी मैं समर्थन करता हूं। कौरवों को किसी तरह भी कुपित नहीं करना चाहिए। राज्य पर इस समय उनका अधिकार है और युधिष्ठिर में जुए की बुरी लत है। इन्हें भी निर्दोष तो नहीं कहा जा सकता। इन्होंने स्वयं सब कुछ हारा है। हमें सन्धि द्वारा ही इस समस्या को सुलझाना चाहिए।"

सात्यकि ने श्री बलराम का विरोध किया। बोले, "श्री बलराम जो कुछ कह रहे हैं, वह अनुचित है। जुए में तेरह वर्ष के वनवास की ही तो शर्त थी, वह पूरी हो गई। उसमें यह कहां था कि तेरह वर्ष बाद भी राज्य नहीं मिलेगा। क्षत्रियों में हार-जीत युद्ध द्वारा होती है, जुए में छल करके नहीं। हम किसलिए दूत भेजें? किसलिए विनम्र आचरण करें? दुर्योधन एक ही भाषा समझता है और वह भाषा है तीखे बाणों की भाषा। हम कौरवों को मारकर

आधे पर नहीं, सम्पूर्ण राज्य पर युधिष्ठिर का अभिषेक करेंगे। राज्य मांगकर नहीं मिलते। पुरुषार्थ से प्राप्त किए जाते हैं।"

संक्षेप में सभा का यही विचार था कि महाराज धृतराष्ट्र चाह कर भी दुर्योधन को किसी शान्ति-सन्धि के लिए मना नहीं सकेंगे। किन्तु दूत भेजने में हानि भी कोई नहीं है। किन्तु हमें अपने हितैषियों के पास युद्ध में सहायता देने के लिए भी दूतों को भेजना चाहिए। सन्धि हो जाए तो ठीक है, अन्यथा युद्ध से तो निर्णय हो ही जाएगा। राजा द्रुपद के पुरोहित को हस्तिनापुर में दूत बनाकर भेज दिया गया।

विवाह में आए सभी नरेश अपने-अपने राज्यों को लौट गए। इसके साथ ही युद्ध की संभावना को देखते हुए हितैषी राजाओं से सेना की सहायता प्राप्त करने के लिए दूत भी भेज दिए गए।

पाण्डव सभी राजाओं के यहां दूत भेजने लगे। द्वारकापुरी में यदुवंशियों से सहायता प्राप्त करने वासुदेव श्रीकृष्ण के पास अर्जुन स्वयं गए।

पाण्डवों की सारी गतिविधियां दुर्योधन को अपने गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हो गई थीं। वह भी स्वयं श्रीकृष्ण के पास द्वारकापुरी सहायता प्राप्त करने पहुंचा। संयोग से दुर्योधन और अर्जुन जब श्रीकृष्ण के पास पहुंचे तो वे सोये हुए थे अपने शयनागार में। दुर्योधन उनके सिरहाने की ओर और अर्जुन पैरों की ओर जा बैठा। श्रीकृष्ण की आंखें खुलीं तो उनकी दृष्टि पहले अर्जुन पर पड़ी, फिर दुर्योधन पर। दोनों ने श्रीकृष्ण से युद्ध में सहायता मांगी। दुर्योधन पहले पहुंचा था और अर्जुन को श्रीकृष्ण ने पहले देखा था, इसलिए दोनों को सहायता देने का निश्चय करके उन्होंने कहा, "एक ओर तो हमारी सेना होगी और दूसरी ओर मैं अकेला रहूंगा। मैं न तो युद्ध करूंगा और न शस्त्र धारण करूंगा। अर्जुन इन दोनों में जिसे लेना चाहे ले ले।"

अर्जुन ने श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेना स्वीकार किया और दुर्योधन ने सेना लेकर प्रसन्नता प्रकट की।

राजा शल्य के पास पाण्डवों का दूत पहुंचा तो वे सेना सजाकर पाण्डवों की सहायता करने चले। दुर्योधन को इस बात का पता लग गया। उसने शल्य के मार्ग में जगह-जगह पड़ाव बनवाए और सभी प्रकार के भोजन-पान की व्यवस्था कर दी। शल्य समझ रहे थे कि यह व्यवस्था युधिष्ठिर ने करवाई है। जब उसे पता लगा कि यह सब दुर्योधन ने किया है तो प्रसन्न होकर दुर्योधन को मुंह-मांगी चीज देने का वचन दिया। तब दुर्योधन ने कहा, "आप मेरी सेना का सेनापतित्व कीजिए।" शल्य ने सेनापति बनना स्वीकार कर लिया।

फिर शल्य ने युधिष्ठिर के पास जाकर दुर्योधन को वचन देने की बात बताई। युधिष्ठिर ने कहा, "आप अपना वचन अवश्य पूरा कीजिए पर हम भी आपके भानजे हैं। इसलिए यदि आपको कर्ण का सारथि बनाया गया तो आपको कर्ण के उत्साह को बार-बार भंग करना होगा। बस, हमारे लिए आप इतना भर कर दीजिएगा।"

शल्य ने यह बात स्वीकार कर ली।

कौरवों और पाण्डवों के सहायक राजा अपनी-अपनी सेनाएं लेकर आने लगे।

उधर द्रुपद का पुरोहित, जो दूत बना था, हस्तिनापुर पहुंचा और उसने पाण्डवों को

आधा राज्य देने और सन्धि करने का प्रस्ताव रखा। भीष्म पितामह प्रस्ताव सुनकर पाण्डवों के बारे में कुछ कह ही रहे थे कि कर्ण ने उन्हें बीच में टोक दिया और दुर्योधन को लड़ाई के लिए उकसाने लगा।

राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म जी का पक्ष लेते हुए उस समय कर्ण को चुप करा दिया और दूत को कहा, "हम विचार करके उत्तर देंगे। सम्प्रति आप लौट जाइए।"

अब धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों का समाचार जानने और यह संदेश देने भेजा कि धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ शान्तिपूर्ण व्यवहार करना चाहते हैं।

संजय ने पाण्डवों के पास पहुंचकर राजा धृतराष्ट्र का सन्देश कह सुनाया।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा, "मेरी युद्ध करने की कोई इच्छा नहीं है। पर मुझे मेरा इन्द्रप्रस्थ का राज्य तुरन्त वापस मिलना चाहिए।

संजय को दूत बना पाण्डवों के पास भेजकर भी चिन्ता के मारे धृतराष्ट्र व्याकुल रहे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। उन्होंने धर्मात्मा विदुर को बुलाया और अपनी चिन्ता उनके सामने रखी। विदुर ने भी उन्हें धर्म-अधर्म का विवेचन करके पाण्डवों का राज्य लौटाकर निश्चिन्त होने के लिए कहा। महात्मा विदुर सारी रात उन्हें धर्म और नीति के सारयुक्त वचनों से समझाते रहे।

दूसरे दिन जब संजय हस्तिनापुर लौट आए तो कौरव और उनके पक्ष के समस्त राजा सभा में एकत्र हुए। संजय ने पाण्डवों से हुई सारी वार्ता सभा को सुनाई।

सब कुछ सुनकर भीष्म पितामह ने दुर्योधन को सन्धि करने की सलाह दी। उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुन की दिव्य शक्तियों से कौरवों को परिचित कराया। उन्होंने कर्ण के बहकावे में आकर पाण्डवों के साथ लड़ते-झगड़ते रहने के लिए भी दुर्योधन को फटकारा।

कर्ण ने भीष्म पितामह के कथन को अनुचित बताया और कहा कि मैं अकेला ही पांचों पाण्डवों को मार डालूंगा।

कर्ण की कोरी डींग सुन भीष्म पितामह बोले, "विराट् नगर में तुम्हारा शौर्य कहां चला गया था? जब गन्धर्वों ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया था तब तुम क्या कर रहे थे?"

द्रोणाचार्य जी ने भीष्म का समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने इन सुझावों की उपेक्षा करते हुए संजय से युधिष्ठिर की सहायता करने वाले राजाओं का विवरण पूछा।

अब तो धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें सबसे अधिक चिन्ता पराक्रमी भीमसेन से थी। वह बचपन में भी अकेला सौ कौरवों को भारी पड़ता था। अर्जुन ने तपस्या द्वारा जो दिव्य और अमोघ शक्तियां प्राप्त कर ली थीं, उनके कारण भी धृतराष्ट्र भयभीत थे। उन्होंने अपने पुत्रों को युद्ध में कूदने से रोका। पर दुर्योधन तो धृतराष्ट्र के अनुशासन से बाहर हो चुका था।

दुर्योधन ने जब देखा कि सभी बड़े-बूढ़े युद्ध-विरोधी रुख अपना रहे हैं तो उसने यह बताने का प्रयत्न किया कि हम पाण्डवों से अधिक शक्तिशाली हैं और युद्ध में उन्हें अवश्य परास्त करेंगे। बड़ी देर तक विचार होता रहा। कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन युद्धोन्माद की ही बातें करते रहे। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और धृतराष्ट्र सन्धि कर लेने और कलह समाप्त करने की बातें करते रहे।

उधर संजय के हस्तिनापुर लौट जाने के पश्चात् शान्तिप्रेमी युधिष्ठिर ने सबसे विचार-विमर्श करके वासुदेव श्रीकृष्ण को कौरवों के पास शान्ति-दूत बनकर जाने को कहा।

श्रीकृष्ण इस कार्य को करने के लिए तैयार हो गए। युधिष्ठिर ने कहा, "राजा धृतराष्ट्र राज्य-लोभ के कारण हमें हमारा राज्य लौटाना नहीं चाहते। यदि हम भी अपनी बात पर अड़े रहे तो दोनों पक्षों के लिए विनाशकारी युद्ध अवश्यंभावी हो जाएगा। अतः मैं शान्ति-स्थापना के लिए केवल पाँच गाँव ही लेकर संतोष कर लूँगा। आप दोनों पक्षों की समान भलाई के लिए जो भी उचित समझें, कौरवों से संधि कर लें।"

श्रीकृष्ण कौरवों की आसुरी प्रकृति से परिचित थे। यद्यपि किसी प्रकार की सन्धि की आशा क्षीण ही थी, तथापि अन्तिम प्रयत्न कर लेना वे उचित मानते थे किंतु युद्ध प्रयत्नों में ढील नहीं आने देना चाहते थे। पर इन दिनों तो भीमसेन भी शान्त थे, जबकि वह दुराशा-मात्र थी। श्रीकृष्ण ने उन्हें भी सचेत किया। अर्जुन और नकुल ने भी युद्ध-वर्जन का समर्थन किया पर सहदेव ने युद्ध का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। सात्यकि तथा अन्य राजाओं ने सहदेव का खूब समर्थन किया और वातावरण में गर्मी आ गई।

चारों बड़े पाण्डवों की युद्ध वर्जन की बातें सुनकर द्रौपदी का माथा ठनका। वे चकित थीं कि युधिष्ठिर तो सदा के धर्मभीरु हैं ही, आज तो भीमसेन भी शान्तिपाठ कर रहे हैं। उसने श्रीकृष्ण से कहा, "श्रीकृष्णजी, कौरवों ने पाण्डवों के साथ सदा जैसा अपमानजनक व्यवहार किया है, वह आपको ज्ञात है और अब ये बड़े पाण्डव युधिष्ठिर महाराज दीनों-याचकों जैसी जो भाषा बोल रहे हैं, और जिस प्रकार गिड़गिड़ाकर सन्धि करना चाह रहे हैं, उसे भी आप देख रहे हैं। भीम और अर्जुन ने दुःशासन, दुर्योधन और कर्ण को मारने की जो प्रतिज्ञा की थी, आज वे उसे भी भूल चुके हैं। किन्तु मैं भरी सभा में अपना केशों से खींचा जाना, और अपमानित होना कैसे भूल सकती हूँ! उस समय भी आपने मेरे चीर की रक्षा की थी, और आज भी मेरी आशा और विश्वास आप ही पर केन्द्रित है। आप को पता ही है, जब राजा धृतराष्ट्र ने मुझे वर माँगने के लिए कहा था तो मैंने पाण्डवों को दासभाव से मुक्त कराया था। भीष्म और धृतराष्ट्र के सामने मेरा अपमान हुआ था। मेरा अपमान करने वाले दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण के जीवित रहते अर्जुन का धनुष धारण करना व्यर्थ है। भीमसेन की गदा से और कौन-सी सिद्धि होने वाली है!" यह कहती हुई द्रौपदी ने अपने केशों को बायें हाथ में लेकर श्रीकृष्ण को दिखाया और उसकी रुलाई फूट पड़ी।

तब द्रौपदी को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण बोले, "यदि कौरवों ने मेरी न्याय-सम्मत बात नहीं मानी, तो तुम शत्रुओं को युद्धभूमि में धूल चाटते और कुत्तों सियारों का भोजन बनते देखोगी।"

शान्ति-दूत श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे। धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत करना चाहते थे और बहुमूल्य उपहार भी भेंट करना चाहते थे पर दुर्योधन ने इसका विरोध किया। उसने कहा, "श्रीकृष्ण ही पाण्डवों के सबसे बड़े सहायक हैं। मैं यहाँ आने पर उन्हें कैद में डाल दूँगा। तब पाण्डव असहाय हो जाएँगे और हमारे आज्ञावर्ती।"

धृतराष्ट्र ने इस विचार को प्रत्येक दृष्टि से धर्म विरुद्ध बताया और भीष्म पितामह तो यह कहते हुए कि दुर्योधन का विनाशकाल समीप आ गया है और इसके विचार पापपूर्ण

हैं, सभा से उठकर चले गए।

श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर में खूब स्वागत हुआ। राजसभा में उनके पधारते ही सभी उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण सबसे मिले। अभिनन्दन और कुशल-मंगल पूछने के बाद पूर्व निश्चित स्वर्णासन पर उन्हें बिठाया गया। सभा में कुछ देर अनौपचारिक बातें करने के पश्चात वे महात्मा विदुर के निवास पर पधारे। उनका आतिथ्य ग्रहण करने के पश्चात् वे देवी कुन्ती के पास गए और पाण्डवों का कुशल-समाचार सुनाया। देवी कुन्ती अपनी दुःखगाथा सुनाते हुए विलाप करने लगीं तो श्रीकृष्ण ने उन्हें धीरज बंधाया।

यहां से वे दुर्योधन के भवन में पहुंचे। दुर्योधन ने उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया किंतु श्रीकृष्ण ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते हैं। दुर्योधन का भोजन-निमन्त्रण अस्वीकार करके श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर गए और वहां भोजन किया।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण को शान्ति-वार्ता के लिए बुलाने दुर्योधन और शकुनि पहुंचे।

श्रीकृष्ण रथारूढ़ होकर सभा में गए तो सभी ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। उनके आसन ग्रहण करने के बाद सबने आसन ग्रहण किया। तब श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए बोले, "मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया हूं कि वीरों का संहार हुए बिना ही कौरवों और पाण्डवों में शान्ति-स्थापन हो जाए। महाराज! क्या पाण्डवों के युद्ध में मारे जाने पर आपको सुख मिलेगा? और यदि कौरव नष्ट हुए तो? युद्ध के भयावह परिणाम की कल्पना करके निर्णय कीजिए। पीछे जो कुछ हुआ है, वह तो आपको ज्ञात है। पाण्डव आपको पितातुल्य मानते हैं। आप भी उन्हें अपने पुत्र समझें। पाण्डव आपकी सेवा करने को भी तैयार हैं और युद्ध के लिए भी। निर्णय आपके हाथ में है।"

श्रीकृष्ण की धर्मयुक्त बात का किसीके पास कोई उत्तर नहीं था। सभी चुपचाप बैठे रहे। तब धृतराष्ट्र बोले, "आपने जो कुछ कहा, मैं उससे पूर्णरूप से सहमत हूं पर क्या करूं, अपने पुत्रों पर मेरा वश नहीं चलता। आप ही इन्हें समझाने की कृपा करें।"

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न किया। भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्र ने भी बार-बार समझाया।

तब दुर्योधन ने कहा, "आप सब लोग मुझे ही सब बातों के लिए दोषी ठहरा रहे हैं। यह सब अनुचित है। पाण्डव पहली बार जुए में हार गए तो सब कुछ उन्हें लौटा दिया गया। यदि हम कपटी थे तो वे दोबारा क्यों खेले? न खेलते! जुए का दांव हार कर उन्होंने वनवास भोगा—मेरे कहने से नहीं। अब वे फिर लड़ाई ठान रहे हैं और धमकियां दे रहे हैं। तो क्या हम चुप बैठ जाएं? राज्य मेरे पिता का था और मैं उनका उत्तराधिकारी हूं। आधे राज्य की कौन कहे, पांच गांवों की कौन कहे, मैं तो उन्हें सूई की नोंक भर भूमि भी देने को तैयार नहीं हूं।"

अपने को निरपराध बताने वाले दुर्योधन के नीच कर्मों का कच्चा चिट्ठा श्रीकृष्ण ने सभा के सामने रखा तो दुर्योधन सभा से बाहर चला गया और उसके साथ सारे राजा भी।

श्रीकृष्ण ने भीष्म आदि को सुनाकर कहा, "आप सब कुरुकुल के वृद्धों ने दुर्योधन को सिंहासन पर तो बिठा दिया पर उसे अनुशासन में नहीं रख पा रहे हैं। वह आपकी बात नहीं

मानता है किन्तु आपसे अपनी बात मनवा लेता है। अब केवल एक उपाय से युद्ध को टाला जा सकता है। दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि इन चारों को कैद में डाल दिया जाए। फिर पाण्डवों से सन्धि कर लीजिए।"

राजा धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहकर भी दुर्योधन को सन्धि के लिए मनाने की चेष्टा की पर दुर्योधन नहीं माना।

उसने शकुनि, कर्ण और दुःशासन से गुप्त मंत्रणा में निश्चय किया कि जब तक ये हम लोगों को कैद करें, हम उससे पहले ही श्रीकृष्ण को कैद कर लें। सात्यकि को इसका पता चल गया। उन्होंने श्रीकृष्ण को इसकी सूचना दी और सारी सभा को भी बताया।

दुर्योधन को फिर सबने फटकारा। श्रीकृष्ण ने भी अपना विराट रूप प्रकट किया। इसके पश्चात वे सभाभवन से बाहर चले गए। वापस लौटने से पूर्व श्रीकृष्ण देवी कुन्ती के पास गए और पाण्डवों के लिए उनका सन्देश लिया। लौटते समय श्रीकृष्ण ने कर्ण को अपने रथ पर बिठा लिया और पाण्डवों के पक्ष में होने की सलाह दी। पर हठी कर्ण नहीं माना। श्रीकृष्ण वापस लौट आए।

कर्ण और कुन्ती

जब शान्ति-स्थापन के समस्त प्रयत्न विफल हो गए तो देवी कुन्ती ने मन में निश्चय किया कि वह स्वयं कर्ण से मिलेगी और वास्तविकता को प्रकट कर देगी, जिससे मेरा ज्येष्ठ पुत्र कर्ण अपने ही भाइयों से युद्ध न करे।

कर्ण गंगातट पर सायं सन्ध्यावन्दन करने गया हुआ था। कुन्ती भी अकेली वहां पहुंची। कर्ण ने कुन्ती को देखकर प्रणाम किया।

कुन्ती ने कहा, "कर्ण, मैं आज तुम्हें वह सत्य बताने आई हूं, जो तुम्हें अज्ञात है। पुत्र! तुम राधा के नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। तुम्हारा पिता सूत अधिरथ नहीं है। तुम मेरे पुत्र हो। फिर कुन्ती ने सूर्य वरदान की कथा कर्ण को बताई और अन्य घटनाक्रम भी।

महारथी कर्ण जिसका अनेक बार सूतपुत्र कहकर अपमान किया गया था, अपनी व्यथा को बताते हुए बोला, "देवी! तुमने मेरे साथ बड़ा भारी अन्याय किया है। तुमसे बढ़कर कोई भी मेरा अहित नहीं कर सकता। तुम आज भी केवल अपने स्वार्थ के लिए मुझे अपना रही हो। दुर्योधन ने मुझे राज्य दिया, सम्मान दिया, बड़े भैया की तरह माना और मेरे ही बलबूते पर उसने मनोरथ रचे। आज संकट की घड़ी में मैं उसे छोड़कर मित्र-द्रोही बनूं, यह कदापि नहीं हो सकता। मुझे अपने प्राणों की तनिक भी चिन्ता नहीं है। मैं तो अपने ऊपर चढ़े ऋण को उतारना चाहता हूं। पर तुम्हारा मेरे पास आना व्यर्थ नहीं जाएगा। अर्जुन के अतिरिक्त मैं तुम्हारे चारों पुत्रों को अपनी ओर से अभयदान देता हूं। मैं उन्हें नहीं मारूंगा। देवी, तुम्हारे पांच पुत्र तो रहेंगे ही, अर्जुन मेरे हाथों मर गया तो पांचवां मैं होऊंगा और यदि मैं मर गया तो भी पांच ही रहेंगे।"

कुन्ती कर्ण को छाती से लगाकर और आशीर्वाद देकर वापस लौट आई।

युद्ध की तैयारी

श्रीकृष्ण लौटकर पाण्डवों के शिविर उपप्लव्य नगर में पहुंचे और हस्तिनापुर में कौरवों से हुई सारी बातचीत से अवगत कराया। माता कुन्ती का सन्देश भी बताया। उन्होंने कहा, "दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन की हठधर्मी के कारण शान्ति-स्थापन का प्रयत्न विफल हो गया है। अब युद्ध के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

युधिष्ठिर ने युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दिया। पाण्डवों के पास अब तक सात अक्षौहिणी[1] सेना एकत्र हो चुकी थी। एक-एक अक्षौहिणी सेना के लिए एक-एक सेनापति की नियुक्ति कर दी गई। द्रुपद, विराट्, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन ये सात सेनापति बने। अब प्रश्न यह था कि महासेनापति किसे बनाया जाए। कई नामों का सुझाव आया किन्तु अन्तिम निर्णय के लिए सबने श्रीकृष्ण को कहा। उन्होंने द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न को महासेनापति पद पर नियुक्त किया।

रणयात्रा की तैयारी होने लगी। सागर की तरह उमड़ती यह सेना कुरुक्षेत्र की ओर बढ़ चली। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में पहुंचकर पाण्डव सेना ने पड़ाव डाला और मोर्चाबन्दी कर ली।

दुर्योधन ने अपनी सेना को कुरुक्षेत्र की ओर कूच करने का आदेश दिया। उसके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृपवर्मा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाह्लीक—इन्हें एक-एक अक्षौहिणी सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। भीष्म पितामह को समस्त कौरव सैन्य का महासेनापति नियुक्त किया गया। भीष्म जी ने इस शर्त के साथ महासेनापति बनना स्वीकार किया कि यदि पाण्डव किसी विषय में मेरी सम्मति मांगेंगे तो मैं उन्हें अवश्य दूंगा। एक शर्त उन्होंने और रखी। वे बोले, "या तो पहले कर्ण युद्ध कर ले या मैं करूं।" कर्ण ने कहा, "मैं भीष्म जी के जीते-जी युद्ध नहीं करूंगा। इनके मारे जाने पर केवल अर्जुन के साथ ही युद्ध करूंगा।"

सेना ने कुरुक्षेत्र की ओर कूच किया तो अनेक अपशकुन होने लगे। कुरुक्षेत्र में पहुंचकर सेना ने अपना शिविर स्थापित किया और मोर्चेबन्दी कर ली।

पाण्डवों के महासेनापति धृष्टद्युम्न ने अपने सेनापतियों को निर्देश दिया कि कौन किस सेनापति के साथ लड़ेगा।

भीष्म जी ने भी दुर्योधन को अपनी युद्ध योजना बताई। दोनों पक्षों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं और रणचण्डी चेतने वाली थी, कर्ण और भीष्म एक-दूसरे को बुरा-भला कह रहे थे। तब दुर्योधन ने भीष्म जी को किसी तरह शान्त किया। पर भीष्म जी ने शिखण्डी और पाण्डुपुत्रों का वध न करने की शर्त रखी क्योंकि उनके लिए कौरव-पाण्डव दोनों समान थे।

दोनों पक्षों की सेनाएं आमने-सामने डट गईं।

युद्ध में पालन करने योग्य नियमों को दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया।

---

१. चतुरंगिणी सेना जिसमें २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, ६५,६१० घोड़े, तथा १,०९,३५० पदाति हों।

भीष्म पर्व

गीता-ज्ञान

इसी समय महर्षि व्यास ने संजय को दिव्य-दृष्टि प्रदान की ताकि वे युद्ध की घटनाओं को राजा धृतराष्ट्र को बताते रहें।

धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा, "संजय, इस समय धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में मेरे और पाण्डुपुत्रों ने क्या किया ?"

संजय ने कहा, "राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य को पाण्डव सेना दिखा रहे थे कि दूसरी ओर अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा, 'हे अच्युत ! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए जिससे मैं विपक्षी वीरों को देख सकूं।'

"जब अर्जुन ने विपक्ष में खड़े अपने सगे-सम्बन्धियों को देखा तो शोक में डूबा हुआ वह बोला, 'श्रीकृष्ण ! मुझे न तो विजय चाहिए, न राज्य-सुख। सारे सगे-सम्बन्धी जब इस युद्ध में मर जायेंगे तो राज्य पाकर क्या होगा ! हा ! राज्य-सुख के लिए गुरुजनों को मारूं ? कौरव यदि पाप-पुण्य का विचार नहीं करते तो क्या हम भी न करें।' युद्धजनित दोषों का परिणाम बताते हुए अर्जुन ने धनुष-बाण को रथ में रख दिया और शोकमग्न होकर बैठ गया।"

अर्जुन के इस दैन्य, शोक और मोह को दूर करने के लिए ही भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें जो उपदेश दिया और जिसके द्वारा अर्जुन का मोह नष्ट हो गया, उसी दिव्य उपदेश का नाम भगवद्गीता है। यह भगवद्गीता भारतीय तत्त्वज्ञान का सार है।

उधर युद्ध प्रारम्भ होने ही वाला था कि धर्मात्मा युधिष्ठिर बिना अस्त्र-शस्त्र के कौरवों की ओर पैदल ही वह चले। चारों भाई भी उनके पीछे हो लिये और पूछने लगे कि यह आप क्या कर रहे हैं ? युधिष्ठिर तो मौन रहे किन्तु श्रीकृष्ण बोले, "मुझे सब पता है। इन्हें जाने दीजिए।"

युधिष्ठिर सीधे भीष्म पितामह के पास पहुंचे और उन्हें प्रणाम कर बोले, "इस युद्ध में मुझे आपके साथ लड़ना होगा। इसकी आज्ञा दीजिए।"

भीष्म जी ने युद्ध करके विजय पाने का आशीर्वाद दिया और अपनी विवशता बताई कि वे क्यों कौरव पक्ष में लड़ रहे हैं। उन्होंने युधिष्ठिर को वर मांगने के लिए कहा तो वे

कृष्ण और अर्जुन युद्ध-क्षेत्र में

बोले, "पितामह ! आप तो किसीसे पराजित होने वाले नहीं हैं। फिर युद्ध में मेरी विजय कैसे होगी ?"

पितामह बोले, "फिर कभी आना तो इसका उपाय भी बताऊंगा।"

फिर युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास गए और प्रणाम किया। आचार्य ने विजय का आशीर्वाद दिया। जब उन्होंने वर मांगने को कहा तो युधिष्ठिर बोले, "मैं आपको युद्ध में जीत सकूं, इसका उपाय बताइए।"

द्रोणाचार्य बोले, "मुझे ऐसा कोई वीर दिखाई नहीं देता जो युद्ध में मुझे परास्त कर सके। और यह भी सच है कि मेरे जीते-जी तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। हां, यदि युद्ध करते समय कोई विश्वस्त व्यक्ति मुझे अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनाएगा तो मैं शस्त्र रख दूंगा। उस समय मुझे मार सकते हो।"

फिर युधिष्ठिर कृपाचार्य के पास गए और प्रणाम करके युद्ध की आज्ञा मांगी। आशीर्वाद लिया और फिर शल्य के पास गए। प्रणाम करके युद्ध की आज्ञा मांगी। विजय का आशीर्वाद लिया। युधिष्ठिर ने उन्हें स्मरण कराया कि उन्होंने युद्ध में कर्ण का सारथि बनने पर उसे हतोत्साह करने का वचन दिया हुआ है। शल्य ने स्वीकार किया कि वह अपने वचन का पालन करेंगे।

इस समय युधिष्ठिर के यह कहने पर कि यदि शत्रु पक्ष का कोई वीर हमारे पक्ष में आना चाहे तो हम उसे स्वीकार करेंगे। धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सु पाण्डवों में जा मिला।

युद्ध का प्रारम्भ

दोनों ओर रण-वाद्य बजने लगे। हाथी-घोड़े चिंघाड़ने लगे और रथों की घर्घर तथा जयघोष से आकाश भर गया।

उधर से भीष्म आगे बढ़े और इधर से भीमसेन। कौरव पक्ष के अनेक वीर भीष्म की रक्षा करते हुए पाण्डवों के साथ लड़ने लगे। शस्त्रास्त्रों से आहत हाथी-घोड़े और सैनिक चिंघाड़ते और चीखते गिरने-पड़ने लगे। सारी युद्ध-भूमि रक्त से सन गई। अर्जुन पुत्र अभिमन्यु भीष्म पितामह का सामना करने लगा और उस किशोर ने महासेनापति भीष्म को भारी आघात पहुंचाया। कृतवर्मा, कृपाचार्य और शल्य भी अभिमन्यु से लड़ने लगे पर वह अकेला ही सबको पायल किए डालता था। उधर पाण्डव पक्ष के महारथी भी अभिमन्यु की सहायता करने लगे। उधर द्रुपद-राजकुमार उत्तर शल्य से जा भिड़ा और मारा गया। तब उत्तर का भाई श्वेत भयंकर युद्ध करने लगा और शत्रु महारथियों के छक्के छुड़ा दिए। उसके सामने किसीसे टिका नहीं जाता था। जब कोई भी उसका सामना करने में समर्थ नहीं हुआ तो महासेनापति भीष्म आगे बढ़े और भयंकर युद्ध करने लगे। श्वेत का पराक्रम अद्भुत था। उसने तो भीष्म को भी नाकों चने चबवा दिए। तब दुर्योधन ने आदेश देकर भीष्म की रक्षा के लिए अनेक वीरों को उनके चारों ओर खड़े होने को कहा। उसे भय हो गया था कि श्वेत आज पहले ही दिन हमारे महासेनापति का अन्त कर देगा। लगता था कि राजकुमार श्वेत आज पहले दिन ही कौरव पक्ष का अन्त कर देगा। उसने भीष्म के सहायकों को भगा दिया,

ध्वजा और धनुष को काट डाला। और अन्त में गदा के प्रहार से रथ, सारथि और घोड़ों का भी नाश कर दिया। अन्त में भीष्म पितामह ने उस वीर पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उसे धराशायी कर दिया। श्वेत को मरा देखकर महा पराक्रमी शंख ने क्रोध में भरकर राजा शल्य को अपना लक्ष्य बनाया। आज श्वेत के मरने से पूर्व जहां यह लगता था कि कौरव सेना अब हारी कि अब हारी, वहां उसके मरने के बाद भीष्म पितामह के प्रचण्ड पराक्रम से पाण्डव सेना छिन्न-भिन्न होने लगी और पासा पलट गया।

सायंकाल होने पर युद्ध बन्द हो गया तो युधिष्ठिर बहुत चिन्तित हुए। श्रीकृष्ण ने उन्हें ढाढ़स बंधाया और महासेनापति धृष्टद्युम्न दूसरे दिन के युद्ध की तैयारी करने लगे। उन्होंने क्रौंचारुण नामक व्यूह का निर्माण किया। व्यूह की सुरक्षा का भार अर्जुन को सौंपा गया।

दूसरा दिन

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ। वीर योद्धा प्राणों का मोह छोड़कर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। व्यूह-रचना भंग हो गई और पाण्डव सेना भागने लगी। तब क्रुद्ध अर्जुन भीष्म पितामह को लक्ष्य बनाकर भीषण युद्ध करने लगा। अर्जुन को आता देख द्रोण, कृप, दुर्योधन शल्य, जयद्रथ और शकुनि सभी उस पर टूट पड़े और बाणों से बींधने लगे। पाण्डव पक्ष के योद्धा भी अर्जुन की सहायता के लिए दौड़े आए। अब अर्जुन ने कौरव सेना का शीघ्रता से संहार करना प्रारम्भ कर दिया। तब दुर्योधन भीष्म जी के पास जाकर बोला, "पितामह! किसी तरह अर्जुन को यमलोक पहुंचाइए, नहीं तो यह हमारी सेना का नाश कर डालेगा। कर्ण तो आपके कारण युद्ध से अलग बैठ गया है।"

दुर्योधन के यह कहने पर क्रोध में भरे भीष्म जी ने अर्जुन पर प्रहार करना प्रारंभ किया। भीष्म ने अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण की छाती में भी अनेक बाण मारे। श्रीकृष्ण को क्षत-विक्षत देखकर अर्जुन को क्रोध आ गया और उसने भीष्म के सारथि को मार डाला। पर एक-दूसरे को मार गिराने में कोई समर्थ नहीं हुआ। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य में भीषण युद्ध हो रहा था। भीमसेन भी शत्रु-संहार में लगा हुआ था। सात्यकि ने कौरव सेना को बुरी तरह रौंद डाला था।

अभिमन्यु और अर्जुन आज के युद्ध में खूब चमक रहे थे। दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण अभिमन्यु का सामना कर रहा था। पुत्र को संकट में देखकर दुर्योधन अभिमन्यु पर प्रहार करने लगा और उसके पक्ष के अन्य वीर भी अभिमन्यु को घेरकर प्रहार करने लगे। अर्जुन भी अभिमन्यु की सहायता के लिए दौड़ पड़ा। इस घमासान युद्ध में कौरव सेना की बहुत क्षति हुई। कौरव सेना में भगदड़ मच गई। अर्जुन के सामने कोई भी महारथी टिक नहीं पा रहा था। यह देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने विजय के उल्लास में शंख बजाए।

भीष्म ने अर्जुन की प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्य से कहा, "अर्जुन तो साक्षात यमराज बन गया है। हमारी सेना भाग रही है। युद्ध बन्द करने में यद्यपि थोड़ी-सी देर है, पर मैं अभी बन्द करने की घोषणा किए देता हूं। यही बचने का एक उपाय है।" यह कह महासेनापति भीष्म ने आज का युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी।

तीसरा दिन

आज भीष्म ने गरुड़ व्यूह की रचना की और स्वयं अग्रभाग का मोर्चा संभाला। इस व्यूह रचना का सामना करने के लिए पाण्डव पक्ष ने अर्धचन्द्राकार व्यूह की रचना की। युद्ध प्रारम्भ हुआ। अर्जुन द्वारा भारी सैनिक संहार करने पर भी कौरव डटे रहे। कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष की व्यूह रचना को नहीं तोड़ सका। वह रणभूमि रक्त के कीचड़ से दुर्गम हो गई किन्तु कोई भी पक्ष पीछे नहीं हट रहा था। दुर्योधन भीमसेन-पुत्र घटोत्कच से भिड़ा हुआ था। अभिमन्यु और सात्यकि ने शकुनि की सेना पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य और भीष्म से अर्जुन और भीम भिड़ गए। घटोत्कच का पराक्रम अभूतपूर्व था। वह तो अपने पिता भीमसेन से अधिक बलवान लग रहा था। भीमसेन के बाण से घायल होकर दुर्योधन रथ में गिर पड़ा तो उसका सारथि रथ को दूर ले गया। कौरव सेना भाग खड़ी हुई और भीमसेन उसे खदेड़ने लगे। भीष्म और द्रोण भागती सेना को रोकने का निष्फल प्रयत्न करने लगे। जब दुर्योधन की मूर्छा दूर हुई तो उसने भागती हुई अपनी सेना को देखा और उसे पुनः लौटाया। फिर वह भीष्म जी के पास गया और बोला, "आपके देखते-देखते हमारी सेना भाग खड़ी हो, यह आपके लिए बड़े अपयश की बात है। मैं पाण्डवों को आपसे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा से अधिक बलवान नहीं मानता। मैं समझता हूं, आप सब पाण्डवों पर कृपा करके अपनी पूरी क्षमता के साथ उन पर प्रहार नहीं कर रहे हैं। यदि आपको ऐसा ही करना था तो युद्ध के पहले ही बता देते। आज मेरी यह दशा तो न होती। तब मैं कोई और व्यवस्था करता। और यदि आप समझते हैं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह सच नहीं है तो अपना पूरा पराक्रम दिखाइए।"

यह सुनकर भीष्म पितामह मुस्करा कर बोले, "दुर्योधन! मैंने तुझसे पहले ही कह दिया था कि पाण्डवों को युद्ध में जीतना अत्यन्त कठिन है। फिर भी मैं अपनी ओर से कोई कसर नहीं रखूंगा।"

दुर्योधन के व्यंग्य बाणों से पीड़ित वृद्ध भीष्म पितामह प्राणान्तक युद्ध करने लगे। रण-भूमि मनुष्यों और पशुओं की लाशों से इस प्रकार पट गई कि चलने-फिरने का मार्ग तक नहीं रहा। भीष्म बिजली जैसी फुर्ती के साथ बाण-वर्षा करने लगे। पाण्डवों की सेना छिन्न-भिन्न होकर बिखरने लगी। सैनिक भागने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सावधान होकर युद्ध करने के लिए कहा। भीष्म पितामह के डर से पाण्डव सेना वैसे ही भाग रही थी जैसे सिंह के भय से हरिणों का झुंड भागता है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण को अपना रथ भीष्म जी के सामने ले चलने को कहा। अर्जुन को भीष्म जी के सामने अड़ते देखकर भागती हुई कौरव सेना भी लौट पड़ी। अब भीष्म और अर्जुन में भयंकर युद्ध होने लगा। अर्जुन ने बाणों से भीष्म के धनुष को ही काट डाला। उन्होंने दूसरा उठाया तो उसे भी काट डाला। इस फुर्ती पर भीष्म बड़े गद्‌गद हुए और प्रशंसा करने लगे। श्रीकृष्ण रथ इस खूबी से हांक रहे थे कि भीष्म जी भारी क्षति न पहुंचा सकें। तो भी घोड़ों समेत श्रीकृष्ण और अर्जुन भीष्म जी के बाणों से घायल हो चुके थे।

भीष्म जी के निर्देश से अन्य अनेक वीर योद्धाओं ने अर्जुन को सब ओर से घेर लिया।

सात्यकि अर्जुन की सहायता को आगे बढ़ा। श्रीकृष्ण जी को लग रहा था कि बूढ़े भीष्म आज ही युद्ध का फैसला कर देंगे और पाण्डव सेना हार जाएगी। पर पाण्डव न्याय और धर्म के लिए लड़ रहे थे और वासुदेव श्रीकृष्ण इसीलिए उनकी ओर थे और जिस ओर श्रीकृष्ण थे, उस पक्ष की विजय भी निश्चित थी। युद्ध का पासा पलटते देखकर श्री कृष्ण ने अपना सुदर्शन-चक्र संभाला। यह दिव्य अस्त्र था और इसका प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं जाता था। यह अपने लक्ष्य का संहार करने के बाद वापस लौट आता था। वे रथ से नीचे कूद पड़े और चक्र को घुमाते हुए भीष्मजी की ओर झपटे। कौरव सेना में भय और आतंक की लहर दौड़ गई किन्तु भीष्म पितामह निश्चिन्त थे। वे श्रीकृष्ण के लोकनाथ रूप से परिचित थे। वासुदेव श्रीकृष्ण के हाथ से मारा जाना किसके लिए गौरवास्पद नहीं होगा।

श्रीकृष्ण के रथ से कूदते ही अर्जुन भी रथ से कूद पड़ा और उसने श्रीकृष्ण की दोनों भुजाओं को कसकर पकड़ लिया, जिससे वे चक्र का प्रयोग न कर सकें। पर श्रीकृष्ण तो उन्हें घसीटते ही ले चले। तब अर्जुन ने उनके पांव पकड़ लिये। बात यह थी, कि श्रीकृष्ण ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा। वे अपने भक्तों की रक्षा के लिए प्रतिज्ञा तोड़ने को प्रस्तुत हो गए किन्तु भक्त भी ऐसा था जो किसी सांसारिक लाभ के लिए भगवान् को वचनभंग के अपयश का भागी नहीं बनने देना चाहता था। उधर भीष्म पितामह बड़े प्रसन्न थे कि यदि भगवान् श्रीकृष्ण के हाथ से मृत्यु प्राप्त हुई तो मोक्ष-लाभ होगा। उन्होंने शस्त्र चलाने पर न सही, उठाने पर तो भगवान श्रीकृष्ण को विवश कर ही दिया था।

अर्जुन ने कहा, "मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं, मैं समस्त कौरव सेना का अन्त करूंगा।" तब भगवान श्रीकृष्ण वापस रथ पर जा बैठे। फिर युद्ध में गर्मी आई। पाण्डवों का पलड़ा भारी हो गया। सूर्यदेव अस्ताचल की ओर चल पड़े। युद्ध रुक गया।

चौथा दिन

युद्ध आरम्भ हुआ। आज कौरव सेनाध्यक्ष भीष्म ने व्याल नामक व्यूह की रचना की थी। पाण्डव सेना भी रणवाद्य बजाती आ धमकी। कौरवों को अर्जुन ही अपना सबसे बड़ा शत्रु दिखाई देता था और उनके महारथी उसे ही घेरने का प्रयत्न करते थे। आज भी कौरव महारथियों ने अर्जुन को घेर लिया। इतने में अर्जुन कुमार अभिमन्यु ने अपने बाणों से उन वीरों को बींधना प्रारम्भ कर दिया। तब भीष्म पितामह ने उसे लांघकर अपना रथ अर्जुन के सामने जा खड़ा किया। दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा।

अभिमन्यु को रोकने के लिए पांच कौरव वीर आ गए। किन्तु वह अकेला ही उन पांचों को रोकने में मजा चखाने लगा। जैसे एक सिंह पांच हाथियों को पर्याप्त होता है, वैसे ही पराक्रमी अभिमन्यु था। आज के युद्ध में धृष्टद्युम्न ने शल्य के पुत्र को मार गिराया। भीमसेन ने कुपित होकर कौरवों की गजसेना को गदा के प्रहार से छिन्न-भिन्न कर दिया। अपनी गज सेना का विनाश होते देखकर भीमसेन का मुंह मोड़ने के लिए भीष्म पितामह दौड़े आए। दूसरी ओर सात्यकि और भूरिश्रवा में ठनी हुई थी। भूरिश्रवा को घिरा देख दुर्योधन सहायता को दौड़ा आया। आज अकेले भीमसेन को संभालना कौरव पक्ष के लिए

कठिन हो रहा था। राजा भगदत्त ने जब भीमसेन को बाणों से घायल कर डाला तो भीम-पुत्र घटोत्कच उनकी सहायता को दौड़ पड़ा। उसके हाथी ने भगदत्त के हाथी को भगा दिया।

भीष्म पितामह भी घटोत्कच का सामना करने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। इस-लिए सायंकाल समीप आया जानकर उन्होंने आज का युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी। जिससे होती हुई हार को बचाया जा सके।

पांचवां दिन

सूर्योदय होते ही फिर दोनों सेनाएं आमने-सामने डट गईं। आज कौरवों ने मकर-व्यूह की रचना की हुई थी और पाण्डवों ने श्येन-व्यूह की। दोनों एक-दूसरे पर भयंकर प्रहार कर रहे थे। आज फिर भीष्म पितामह पाण्डव पक्ष को परास्त करने के लिए अपनी उग्र शक्ति का प्रदर्शन कर रहे थे। आज भी वे मुख्य रूप से महाबली भीमसेन को नीचा दिखाना चाह रहे थे। भीमसेन की सहायता को अर्जुन भी आ गया था। कौरव महारथी भी भीष्म पिता-मह की सहायता को आ गए और युद्ध एक विशेष स्थान पर केन्द्रित हो गया। आज के युद्ध से लगता था कि हार-जीत का निर्णय आज ही हो जाएगा।

आज विराट् और भीष्म में, अश्वत्थामा और अर्जुन में, दुर्योधन और भीमसेन में तथा अभिमन्यु और कौरव कुमार लक्ष्मण में द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था। अभिमन्यु ने बड़े-बड़े वीरों के दांत खट्टे कर रखे थे। सात्यकि और भूरिश्रवा में भी मरणान्तक द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था। भूरिश्रवा ने सात्यकि के दस पुत्रों को आज के युद्ध में मार डाला था, जिससे वह भी प्राणों का मोह छोड़कर भयंकर युद्ध कर रहा था।

सन्ध्या हो चली थी। भगवान् भास्कर पश्चिम दिशा में अस्त होने वाले थे। आज अर्जुन ने कौरव सेना को मथ डाला था। युद्ध बन्द होने की घोषणा हुई और सेनाएं शिविरों में लौट पड़ीं।

छठा दिन

छठे दिन पाण्डव सेना ने मकर-व्यूह की और कौरव सेना ने क्रौंच-व्यूह की रचना की। युद्ध प्रारम्भ होते ही दोनों पक्षों की सेनाएं आपस में गुत्थमगुत्था हो गईं।

दिव्य दृष्टि प्राप्त संजय जन्मांध धृतराष्ट्र को युद्ध का विवरण प्रतिदिन सुना रहे थे। धृतराष्ट्र यह सुन कर बड़े चिन्तित थे कि पाण्डवों की अपेक्षा ड्योढ़ी सेना होने पर भी उन की न केवल विजय नहीं हो रही है अपितु पाण्डवों का पलड़ा भारी रह रहा है। उनका विचार था कि संभवतः देवता और भाग्य पाण्डवों के पक्ष में हैं और उनकी सहायता कर रहे हैं। फिर उन्हें यह भी बोध हुआ कि महात्मा विदुर तो पहले ही कहते थे कि झगड़ा मत कीजिए पर मेरे ही मूर्ख पुत्रों ने उनकी बात नहीं मानी।

आज का युद्ध प्रारम्भ होने पर महाबली भीमसेन अपने रथ से उतरकर, कन्धे पर गदा रखे अकेले ही कौरव सेना में जा घुसे और गदा-प्रहार से शत्रुओं का कचूमर निकालने लगे। धृष्टद्युम्न को पता लगा तो वह भी उनकी सहायता को चला। कौरव वीरों ने उन्हें घेर रखा था। धृष्टद्युम्न ने उन्हें अपने रथ पर बिठा लिया और फिर दोनों कौरवों से युद्ध करने लगे। दुर्योधन धृष्टद्युम्न से खार खाए बैठा था। आज उसने उसे घेर लिया। पर धृष्टद्युम्न ने प्रमोहनास्त्र का प्रयोग करके सबके होश गुम कर दिए। इसका पता आचार्य द्रोण को लगा तो वे रथ दौड़ाते आए और उससे युद्ध करने लगे। प्रज्ञास्त्र से उन्होंने कौरवों को सचेत भी कर दिया। भीमसेन और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए अनेक पाण्डव पक्षीय योद्धा आ गए और युद्ध की गति तेज हो गई। द्रोणाचार्य पाण्डव सेना पर बुरी तरह पिल पड़े और सेना भागने लगी।

फिर लोमहर्षक युद्ध होने लगा। रक्त की नदी बह चली। मृतकों और घायलों से सारी धरती पट गई।

दुर्योधन का सारा प्रयत्न भीमसेन को मौत के घाट उतारने का था। भीष्म पितामह पाण्डव सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे थे और कौरवों का पलड़ा भारी हो गया था। उधर दुर्योधन को देखते ही भीमसेन का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ जाता था और वह दुर्योधन को कच्चा ही चबा डालना चाहता था। दुर्योधन की सहायता को जयद्रथ आदि वीर आ पहुंचे पर भीमसेन ने उसके घोड़ों और सारथि को ही मार डाला। दुर्योधन को बाणों से बींध डाला और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। जयद्रथ ने दुर्योधन को अपने रथ पर बिठाकर उसकी जान बचायी। भगवान् सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर युद्ध रुक गया।

सातवां दिन

दुर्योधन आश्चर्यचकित था कि हम जीत क्यों नहीं पाते! उसने अपनी चिन्ता दादा भीष्म को बताई जो सेनाध्यक्ष थे। भीष्म पितामह ने दुर्योधन को विजय का आश्वासन दिया और सेनाएं रणभूमि में जा डटीं। आज कौरव सेना ने मण्डल-व्यूह और पाण्डव सेना ने वज्र-व्यूह की रचना की थी। दुर्योधन पिछले दिन बुरी तरह घायल हो गया था और पूरी तरह स्वस्थ नहीं था। पर युद्धवाद्यों को सुनते ही वह पीड़ा को भूलकर युद्धोत्साह से भर गया। अर्जुन ने मण्डल व्यूहबद्ध कौरव सेना श्रीकृष्ण को दिखाते हुए, अग्रभाग पर आक्रमण कर दिया। पाण्डव सेना के आक्रमण से बड़ी चातुरी और प्रयत्न से की हुई कौरवों की व्यूह-रचना छिन्न-भिन्न हो गई। पर ठीक इसी समय भीष्म पितामह पाण्डवों के आक्रमण को विफल बनाने के लिए डट गए और भीषण नर-संहार करने लगे।

अर्जुन का रथ जिस ओर भी बढ़ जाता था, उस ओर कौरव सेना में भगदड़ मच जाती थी।

आज द्रोणाचार्य विराट् से भिड़े हुए थे। शिखण्डी और अश्वत्थामा एक-दूसरे पर तीव्र प्रहार कर रहे थे। आज दुर्योधन और धृष्टद्युम्न में बड़े जोर की ठनी हुई थी। दुर्योधन सेनाध्यक्ष धृष्टद्युम्न के सामने अपने पैर जमाने का प्रयत्न कर रहा था। पर धृष्टद्युम्न ने उसके

घोड़ों और सारथि को मार कर रथ को चूर-चूर कर दिया तो शकुनि ने दुर्योधन को अपने रथ पर बिठा लिया। दुर्योधन धृष्टद्युम्न से पराजित होकर भी जीवित रहा। भीमसेन और कृतवर्मा भी प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। यहां भी भीमसेन विजयी रहे।

कौरव सेना महासागर की तरह उमड़ती-घुमड़ती आगे बढ़ती थी किन्तु पाण्डव सेना रूपी महाशैल से टकराकर पीछे लौट आती थी।

आज अवन्ति के राजकुमार विन्द और अनुविन्द अर्जुन-पुत्र इरावान से भिड़े हुए थे। इरावान नागराज कन्या उलूपी का पुत्र था और प्रचण्ड पराक्रमी था। अवन्ति राजकुमार उसके सामने टिक नहीं सके। राजा भगदत्त से भीमसेनपुत्र घटोत्कच का युद्ध हो रहा था। प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त गजराज पर बैठा युद्ध कर रहा था। इस युद्ध को देखकर हार-जीत का निर्णय करना कठिन था। दोनों ही वीर महापराक्रमी थे। पर अन्त में भगदत्त ने घटोत्कच को हरा ही दिया।

मद्रराज शल्य नकुल-सहदेव की माता माद्री का सगा भाई था। दुर्योधन ने बड़ी चालाकी से उसे अपने पक्ष में कर लिया। आज के युद्ध में शल्य से उसके भानजे नकुल और सहदेव लड़ रहे थे। यद्यपि मामा-भानजे का एक-दूसरे के प्रति प्रेमभाव था किन्तु भावना से कर्त्तव्य को ऊंचा मानकर दोनों पक्ष एक-दूसरे पर निःसंकोच प्रहार कर रहे थे। अन्त में सहदेव के बाण से घायल राजा शल्य कटे वृक्ष की तरह अपने रथ में गिर पड़े। सारथि रथ को घुमाकर रणभूमि से बाहर ले गया। मामा को रणभूमि से खिसकते देखकर दोनों भानजे सिंह-गर्जना करने लगे।

आज का युद्ध पिछले दिनों की अपेक्षा अधिक भीषण था। अभी मध्याह्न हुआ था और रणभूमि मृतकों से पटी पड़ी थी। धर्मात्मा युधिष्ठिर और महावीर श्रुतायु एक-दूसरे पर बाण-वर्षा कर रहे थे। श्रुतायु ने ज्यों ही अपने पैने बाणों से युधिष्ठिर को घायल किया त्यों ही उन की क्रोधाग्नि भड़क उठी और रणभूमि में आतंक छा गया। अन्त में युधिष्ठिर के बाणों की मार से बचने के लिए श्रुतायु भाग खड़ा हुआ। फिर तो कौरव सेना में भगदड़ मच गई और भागते सैनिक एक-दूसरे को कुचलने लगे। वृष्णिवंशी चेकितान ने कृपाचार्य को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया। उनके रथ टूट गए तो गदाओं से लड़ने लगे और बाद में दोनों ने तलवारें निकाल लीं। दोनों एक-दूसरे के प्रहारों से क्षत-विक्षत होकर गिर पड़े। वीर भूरिश्रवा और धृष्टकेतु में भी बड़ी देर तक युद्ध होता रहा पर समान बल-विक्रम होने से कोई भी हारा नहीं।

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु आज चित्रसेन से युद्धरत था। अभिमन्यु अपने पिता की तरह ही शत्रुओं के लिए कालस्वरूप था। अभी वह किशोर ही था किन्तु अकेला ही बड़े-बड़े महारथियों के दांत खट्टे कर देता था। वह जहां भी जाता, कहर मचा देता। कौरव महारथी उसे घेरने का बार-बार प्रयत्न करते फिर भी कुछ कर नहीं पाते। अभिमन्यु की सहायता के लिए अर्जुन आया तो उसे त्रिगर्त के राजा सुशर्मा ने बीच में ही रोक लिया। कई महारथियों ने अर्जुन को घेरने की निष्फल चेष्टा की। अर्जुन कौरव सेनाध्यक्ष भीष्म को अपनी विजय में सबसे बड़ी बाधा मानता था, इसलिए उन्हें ही अपने बाणों का लक्ष्य बना रहा था। दूसरे पाण्डव भी सहायता कर रहे थे किन्तु भीष्म पितामह का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते थे। अब

शिखण्डी भीष्म पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा तो भीष्म पितामह ने पहले ही उसके धनुष को काट डाला। भीष्म पितामह का बाल भी बांका न होते देखकर युधिष्ठिर ने शिखण्डी को उलाहना देते हुए कहा, "वीर ! तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्ध में भीष्म को अवश्य मार डालूंगा, परन्तु अपने वचन को अब तक पूरा नहीं कर सके।"

धर्मात्मा युधिष्ठिर के इन व्यंग्य बाणों से उत्तेजित होकर शिखण्डी ने भीष्म का वध करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया।

भीष्म पितामह ने अपने बाणों की मार से युधिष्ठिर को निढाल कर दिया था। उन की सहायता के लिए महाबली भीमसेन गदा उठाए, दौड़ा-दौड़ा आया। जयद्रथ के घोड़ों को भीमसेन ने गदा से मार डाला तो वह भी दूसरी ओर भागा।

आज भीष्म पितामह ने अपने पोते धर्मात्मा युधिष्ठिर से भी देर तक युद्ध किया। सेनाध्यक्ष धृष्टद्युम्न और सात्यकि ने अवन्ति राजकुमार विन्द और अनुविन्द से भयंकर संग्राम किया और द्रोणाचार्य ने भी कौरव पक्ष की विजय के लिए प्राणपन से चेष्टा की।

यह विचित्र बात थी कि सभा-समितियों में दुर्योधन का खुला विरोध करने पर भी और पाण्डवों के पक्ष को न्यायोचित बताते हुए भी भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य ने कौरव पक्ष को छोड़ा नहीं। वे यही कहते रहे कि हमने कौरवों का अन्न खाया है, इसलिए उन्हीं के पक्ष में लड़ेंगे। पाण्डवों पर प्रीति होने पर भी ये महारथी अपने कर्त्तव्यवश उन पर अपनी पूरी शक्ति से प्रहार करते थे।

सन्ध्या उतर आई। युद्ध रुक गया। दोनों पक्षों की सेनाएं अपने-अपने शिविरों को लौट गईं। दोनों दल शत्रु पक्ष की वीरता की सराहना करते हुए विश्राम करने लगे। घायलों की चिकित्सा की व्यवस्था करके तरह-तरह के मनोविनोद के कार्यक्रम होने लगे।

आठवां दिन

सूर्योदय होते ही दोनों ओर की सेनाएं रणभूमि में आ डटीं। प्रारम्भ होते ही युद्ध में गर्मी आ गई। आज भीष्म ने बाण-वर्षा करके पाण्डव सेना को तितर-बितर करना चाहा पर इतने में ही युधिष्ठिर की आज्ञा से पाण्डव सेनाएं भीष्म पर टूट पड़ीं। पर भीष्म ने सब को मार भगाया। सके रा भीमसेन ही था जो दादा भीष्म के सामने डटा रहा। दुर्योधन अनेक भाइयों के साथ भीष्म जी की सहायता करने लगा तो क्रुद्ध भीमसेन ने भीष्म के सारथि को मार डाला और घोड़े अनियंत्रित होकर इधर-उधर रथ को घुमाने लगे। आग बरसाते भीम ने धृतराष्ट्र पुत्र सुनाभ, आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और विशालाक्ष को धराशायी कर दिया।

आठ भाइयों के भीमसेन द्वारा मारे जाने से दुर्योधन को गहरा आघात लगा। उसने बदले की भावना से प्रेरित होकर सैनिकों को आज्ञा दी कि भीमसेन को घेरकर मार डालो।

फिर दुर्योधन ने भीष्म के पास जाकर कहा, "भीम ने आज मेरे आठ भाइयों को मार डाला और आप निरन्तर हमारी उपेक्षा करते आ रहे हैं और सेनाध्यक्ष के अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं। आप मध्यस्थ का-सा व्यवहार कर रहे हैं।"

भीष्म बोले, "मैंने, द्रोणाचार्य ने, विदुर ने, और तुम्हारी माता गांधारी ने पहले ही तुम्हें युद्ध के इन परिणामों से सचेत किया था पर तुमने हमारी एक नहीं सुनी। जो बात तुम आज मुझसे कह रहे हो, यही बात मैंने तुमसे कही थी। मुझे और द्रोणाचार्य को इस युद्ध में सम्मिलित होना ही नहीं चाहिए था। मैं तुम्हें एक बार फिर स्पष्ट बता देना चाहता हूं कि हम पाण्डवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे।"

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे थे, युद्ध की भयंकरता बढ़ती जा रही थी। सेनाएं क्षीण होती जा रही थीं और वीरों का पराक्रम बढ़ता जा रहा था। आज महावीर इरावान ने शकुनि के भाइयों का संहार कर डाला और स्वयं भी राक्षस अलम्बुष द्वारा युद्ध में मारा गया। इरावान की मृत्यु से क्षुब्ध भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने दुर्योधन पर बड़ा भयंकर आक्रमण किया। घटोत्कच राक्षसी का पुत्र था और माया युद्ध में बड़ा चतुर था। उसने जब अपने राक्षस बन्धुओं के साथ कौरव सेना पर आक्रमण किया तो बड़े-बड़े शूरवीर भय से थरथराने लगे। हाथी चिंघाड़ते हुए भाग खड़े हुए और घोड़े मल-मूत्र-विसर्जन करने लगे। सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। गजसेना को लेकर दुर्योधन और आचार्य द्रोण घटोत्कच के आक्रमण को विफल करने का प्रयत्न करने लगे तो अपने पुत्र को सहायता देने के लिए भीमसेन भी इस मोर्चे पर लड़ने लगा। ये महारथी भी जब सामना नहीं कर सके तो सेना फिर भाग चली। तब भीष्म जी ने भगदत्त को मोर्चा संभालने को कहा। भगदत्त और घटोत्कच का युद्ध अन्य वीरों के रोंगटे खड़े कर देने वाला था।

अर्जुन अपने पुत्र इरावान के वध से बड़ा दुःखी था। उसकी मृत्यु का बदला भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों को मारकर चुका लिया था। आज भीमसेन के सामने आचार्य द्रोण भी टिक नहीं पा रहे थे। किशोर अभिमन्यु राजा अम्बष्ठ को दिन में तारे दिखा रहा था। शत्रु भी उसके शौर्य की प्रशंसा कर रहे थे। दोनों पक्षों की सेनाएं तीव्र गति से नष्ट हो रही थीं। सायंकाल हो गया था। दोनों पक्षों ने युद्ध रोक दिया।

नौवां दिन

दुर्योधन ने शकुनि, कर्ण और दुःशासन से गुप्त मंत्रणा करके निश्चय किया। उसने द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा पर दोषारोपण किया कि ये महारथी पाण्डवों को बचाते हुए युद्ध कर रहे हैं। उसने कहा, "प्रिय कर्ण! तुम युद्ध से मुंह मोड़कर बैठे हो और मैं बन्धुओं सहित नष्ट हो रहा हूं।" यह सुनकर कर्ण ने दुर्योधन को आश्वासन देते हुए कहा, "राजन्! चिन्ता मत करो। भीष्म से कहो कि वे युद्ध से हट जाएं। फिर तुम देखना, मैं पाण्डवों को कैसे मार भगाता हूं।"

दुर्योधन भीष्म पितामह के पास जाकर और आंखों में आंसू भरकर बोला, "महाराज! यह युद्ध आपके ही भरोसे और आपके ही सेनापतित्व में लड़ा जा रहा है। आप तो देवराज इन्द्र को भी जीत सकते हैं किन्तु न जाने क्यों अभी तक पाण्डवों को जीत नहीं पा रहे हैं। मुझ पर कृपा करके इस युद्ध में पाण्डवों का संहार कर डालिए। यदि पाण्डवों को मारना नहीं चाहते तो आप कर्ण को यह काम करने दीजिए और आप हट जाइए।"

घटोत्कच का आक्रमण

भीष्म जी ने भयंकर युद्ध करने की प्रतिज्ञा करके दुर्योधन को आश्वस्त कर दिया और दुर्योधन ने भी रणक्षेत्र में भीष्म की रक्षा के लिए अनेक शूरवीरों को नियुक्त कर दिया। भीष्म जी ने दुर्योधन को कह दिया कि मैं शिखण्डी को, जो पहले स्त्री थी और बाद में पुरुष बना, स्त्री ही मानता हूं और युद्ध में उस पर स्त्री समझकर प्रहार नहीं करूंगा।

नवें दिन भीष्म जी ने सर्वतोभद्र नामक व्यूह के रूप में अपनी सेना की मोर्चेबन्दी की।

पाण्डव सेना ने भी अपने-अपने मोर्चे संभाल लिये। यथासमय युद्ध प्रारम्भ हुआ और तीर सनसनाने लगे। आज रणक्षेत्र में अपशकुन हो रहे थे। द्रौपदी के पांचों पुत्र कौरव पक्षीय राक्षस अलम्बुष के साथ घोर युद्ध कर रहे थे और अभिमन्यु के द्वारा पीड़ित कौरव सेना इस मोर्चे से भाग रही थी। अलम्बुष माया युद्ध कर रहा था पर अभिमन्यु उसकी सारी चालों को व्यर्थ कर देता था। अलम्बुष युद्ध से भाग खड़ा हुआ। अर्जुन आज भीष्म पितामह तथा कृपाचार्य से तथा सात्यकि द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा से भिड़ा हुआ था। भीमसेन शत्रुओं की गजसेना के संहार में व्यस्त था और अर्जुन त्रिगर्तराज सुशर्मा को जो बड़ा वीर था, भगा रहा था। आज का युद्ध बड़ा भयंकर था। दोनों ओर के अगणित वीर कटकर गिर चुके थे। अर्जुन ने त्रिगर्तराज की सेना को हरा दिया था। अभिमन्यु ने चित्रसेन को रथहीन कर दिया। द्रोणाचार्य ने द्रुपद को घायल कर डाला तो वह वीर द्रोण के साथ पुराने वैर को याद करके प्राण बचाकर भाग गया। भीमसेन ने बाह्लीक को पराजित कर डाला और सात्यकि ने भीष्म जी के साथ घोर युद्ध किया।

दुर्योधन ने भीष्म पितामह की सुरक्षा के लिए दुःशासन को नियुक्त किया। दूसरी ओर नकुल और सहदेव शकुनि की घुड़सवार सेना को ध्वस्त कर रहे थे। शकुनि की सेना पराजित होकर पीठ दिखाने लगी। महारथी शल्य के साथ युधिष्ठिर और भीम जूझ रहे थे।

भीष्म पितामह ने आज प्रलय मचा रखी थी। वे अपने सामने किसी को टिकने नहीं दे रहे थे। उनके तीर वीरों की छाती को चीर सीधे निकल जाते थे। पाण्डव सेना भीष्म से पराजित होकर भागने लगी। सेना को भागते देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन! आज वह दिन आ पहुंचा है, जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा थी। अपनी पहले कही बातों का स्मरण करो और द्रोण तथा भीष्म का संहार करो। यद्यपि अर्जुन के मन में अभी तक दादा और गुरु पर श्रद्धा थी और वह उन्हें मारना नहीं चाहता था किन्तु श्रीकृष्ण के कहने से तैयार हो गया। अर्जुन के भीष्म के सामने डटते ही भागती हुई पाण्डव सेना फिर लौट पड़ी। श्रीकृष्ण अनुभव कर रहे थे कि अर्जुन पूरे मनोयोग से युद्ध नहीं कर रहा है। वह भीष्म के प्रति कोमलता दिखा रहा है। तब श्रीकृष्ण रथ से नीचे कूद पड़े और खाली हाथ भीष्म की ओर बढ़े। उन्हें आता देख भीष्म बड़े प्रसन्न थे कि मैंने भगवान श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए विवश कर दिया। उन्हें इस बात की भी प्रसन्नता थी कि यदि श्रीकृष्ण के हाथों मारा जाऊं तो मोक्ष लाभ करूं। उधर अर्जुन श्रीकृष्ण को रोकने के लिए उनके पीछे-पीछे भाग रहा था। अर्जुन कह रहा था, "भगवन्! लौटिए, अपनी प्रतिज्ञा को झूठा मत कीजिए। लोग आपकी निन्दा करेंगे। मैं प्रण करता हूं कि अब युद्ध करते समय किसी के प्रति भी कोमलता नहीं दिखाऊंगा।"

श्रीकृष्ण रुक गए। भीष्म पाण्डव सेना का भयंकर संहार करते रहे। पाण्डव सेना में

बार-बार भगदड़ मच जाती थी। इसी प्रकार सायंकाल हो गया और युद्ध रुक गया।

आज के युद्ध में पाण्डव सेना भीष्म से बुरी तरह पिटी थी। पाण्डव-प्रमुख रात को गुप्त मंत्रणा करने बैठे कि कल किस युद्ध-नीति का सहारा लिया जाए। सबसे बड़ी समस्या थी भीष्म पितामह को मारने की। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से सलाह मांगी। फिर उन्हें स्मरण हो आया कि भीष्म ने मुझे हितकर सलाह देने का वचन दिया हुआ है। इसलिए उनके वध का उपाय उन्हीं से पूछा जाए। यह निश्चय करके श्रीकृष्ण सहित पांचों पाण्डव रात को भीष्म के पास गए और भीष्म पितामह से पूछा, "आप हमें आपको जीतने का उपाय बताइए।"

भीष्म पितामह बोले, "तुम्हारी सेना में यह जो द्रुपद पुत्र महारथी शिखण्डी है न, वह पहले स्त्री थी, बाद में पुरुष बना। अर्जुन उसकी आड़ लेकर मुझ पर आक्रमण करे। मैं शिखण्डी पर प्रहार नहीं करूंगा। इस बात का लाभ उठाकर तुम मेरा वध कर सकते हो। इसके अतिरिक्त मुझे मारने का कोई उपाय नहीं है।"

यह उपाय जानकर और पितामह को प्रणाम करके पाण्डव अपने शिविर में लौट आए। पर अर्जुन को शान्ति नहीं थी। वह नहीं चाहता था कि निःशस्त्र दादा भीष्म पर प्रहार करके विजय प्राप्त करे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को स्मरण कराया कि तुमने उन्हें मारने की प्रतिज्ञा की हुई है। फिर जब वे तुम पर शस्त्र उठा रहे हैं तो तुम्हें शस्त्र उठाने में क्यों संकोच है! अर्जुन ने शिखण्डी की आड़ लेकर भीष्म पितामह को मारना स्वीकार कर लिया।

दसवां दिन

सूर्योदय होते ही रणवाद्यों के साथ दोनों ओर की सेनाएं रणस्थल में आ पहुंचीं। उस दिन शिखण्डी सबसे अगले मोर्चे पर डटा हुआ था और भीमसेन तथा अर्जुन उसकी रक्षा कर रहे थे। पाण्डव पक्ष के अन्य वीर भी आज शिखण्डी को सहयोग देने के लिए तत्पर थे। ऐसा लगता था कि जैसे आज युद्ध का संचालन शिखण्डी ही कर रहा है।

दूसरी ओर भीष्म पितामह के नेतृत्व में कौरव सेना युद्ध के लिए तैयार थी और उस पक्ष के सारे महारथी उनके सहायक थे। पहले ही आक्रमण में कौरव सेना के छक्के छुड़ा दिए और वह भागने लगी। भीष्म पितामह कौरव सेना के बचाव के लिए घोर पराक्रम दिखा रहे थे। इसी समय शिखण्डी ने उनकी छाती में तीन तीखे बाण मारे। भीष्म पितामह व्यंग्य की मुस्कराहट के साथ बोले, "मैं तुम्हारे ऊपर शस्त्र-प्रहार नहीं करूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारे जन्म-वृत्तान्त को जानता हूं। तुम मेरे ऊपर चाहे जितने प्रहार करो।"

शिखण्डी ने कहा, "मैंने सुना है कि आपने परशुरामजी को भी युद्ध में हरा दिया था। तो भी मैंने प्रण किया है कि आज आपको मार कर ही चैन लूंगा। अब आप अपने बचाव के लिए जो कुछ करना चाहें कर लें।" यह कह कर शिखण्डी ने पितामह पर तीखे बाण बरसाना प्रारम्भ कर दिया। उधर पास ही लड़ रहे अर्जुन ने शिखण्डी का उत्साह बढ़ाना प्रारंभ किया। अर्जुन ने शिखण्डी को कहा, "वीरवर! तुम केवल भीष्म पितामह को अपने बाणों का लक्ष्य बनाओ और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर दिखाओ। मैं भीष्म की रक्षा करने में लगे

हुए समस्त वीरों को रोके रखूंगा और वे तुम पर प्रहार नहीं कर सकेंगे।"

जब अर्जुन ने कौरव सेना का संहार करना प्रारम्भ किया तो उसमें फिर भगदड़ मच गई। तब दुर्योधन घबराया हुआ भीष्म पितामह के पास गया और अर्जुन को किसी तरह रोकने के लिए कहा। भीष्म पितामह प्रतिदिन दस हजार सैनिकों का वध तो करते ही थे किन्तु आज तो वे लाखों का काल बन चुके थे। शिखण्डी भीष्म जी की ओर से तो निर्भय था ही, साथ ही अर्जुन अन्य महारथियों से उसकी सुरक्षा करने में तत्पर था, इसलिए वह भीष्म पर तीखे बाण चला रहा था। आज पाण्डव पक्ष भीष्म पितामह को घेरकर मार डालना चाहता था और कौरव वीर उनके उस प्रयत्न को विफल करने का प्रयास कर रहे थे। कौन जीतेगा और कौन हारेगा, इसका निर्णय करना कठिन था।

भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु की शक्ति प्राप्त थी। इसका अभिप्राय यह था कि वे जब चाहेंगे तभी उनकी मृत्यु होगी। दस दिनों तक लाखों वीरों का संहार कर चुकने के कारण उन्हें युद्ध से घृणा होने लगी थी और वे सोचने लगे थे कि इस पाप से बचने के लिए स्वयं मर जाना अधिक अच्छा है। और उन्होंने अपनी यह इच्छा धर्मात्मा युधिष्ठिर से प्रकट कर दी। साथ ही यह भी कह दिया कि तुम मेरे वध का प्रयत्न करो।

उनकी ओर से संकेत मिलते ही युधिष्ठिर ने उन पर आक्रमण कर दिया। कौरव अपने बचाव में ही लगे रहे। पाण्डव वीरों के सम्मिलित आक्रमण से भीष्म पितामह का कवच टूट गया, जगह-जगह गहरे घाव हो गए, फिर भी वे विचलित नहीं हुए। तब अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके पितामह पर धावा बोला और उनके धनुष को काट डाला। तब कौरव वीर अर्जुन पर टूट पड़े और पाण्डव वीर अर्जुन की रक्षा के लिए दौड़ पड़े। भीष्म पितामह ने अर्जुन के रथ पर एक संहारक शक्ति का प्रयोग किया तो अर्जुन ने उसे बीच में ही काट डाला और शिखण्डी ने अपने तीखे बाणों से उन्हें बींध डाला। भीष्म जी को संभलने का अवसर दिए बिना अर्जुन उन पर बाण चलाता रहा। अर्जुन के तीखे बाणों से घायल पितामह ने पास ही युद्ध कर रहे दुःशासन से कहा, "दुःशासन! मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि ये बाण शिखण्डी के छोड़े हुए नहीं हैं।"

फिर पितामह तलवार और ढाल लेकर द्वन्द्व-युद्ध को प्रस्तुत हो रहे थे कि अर्जुन ने उनकी ढाल के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसी समय युधिष्ठिर के आह्वान पर पाण्डव पक्षीय महारथी पितामह पर टूट पड़े। भीष्म पितामह का शरीर बाणों के बिंधने से छलनी बन चुका था। सूर्यास्त में अभी कुछ देर थी कि पितामह रथ से नीचे गिर पड़े। क्योंकि उनके सारे शरीर में असंख्य बाण चुभे हुए थे, इसलिए गिर पड़ने पर भी उनका शरीर धरती से न छूकर बाणों पर ही टिका रहा।

इन दिनों सूर्य दक्षिणायन में था और मृत्यु के लिए उत्तरायण सूर्य श्रेष्ठ माना जाता है, इसलिए भीष्म पितामह ने प्राणों को छोड़ने की इच्छा नहीं की। वे बाणों की उस विचित्र शैया पर लेटे-लेटे ही सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे।

युद्ध रात के लिए रुक गया। कौरव सेना पर गहरी निराशा छा गई। दुर्योधनादि सिसक-सिसक कर रोने लगे। भीष्म पितामह के इस प्रकार पराजित होने से सबने यही अनुमान लगाया कि विजय पाण्डवों की होगी। दूसरी ओर पाण्डव पक्ष में हर्ष की लहर दौड़

गई । पाण्डव और कौरव बाण-शैया पर सोए हुए पितामह के पास आए और प्रणाम करके खड़े हो गए । भीष्म जी ने कहा, "मेरा सिर लटक गया है । इसके लिए मुझे सिरहाना दीजिए।"

वहां उपस्थित लोगों में से अनेक बढ़िया-बढ़िया सिरहाने उठा लाए किन्तु भीष्म ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया । वे उनकी शैया के अनुरूप नहीं थे । उन्होंने अर्जुन से सिर-हाने की व्यवस्था करने को कहा । अर्जुन ने बाणों पर उनके सिर को टिका दिया । फिर उन्होंने पास खड़े लोगों से कहा, "जब तक सूर्य उत्तरायण नहीं होता, मैं शर-शैया पर ही रहूंगा ।" उन्होंने अपने चारों ओर खाई खोदने को कहा । उनके शरीर में चुभे बाणों को निकालने और घावों का उपचार करने वैद्य आए तो उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा, "मेरी मृत्यु होने पर, इन बाणों समेत ही मेरा दाह-संस्कार कर देना।"

फिर भीष्म जी की रक्षा की समुचित व्यवस्था करके सभी वीर अपने-अपने शिविरों में चले गए ।

दूसरे दिन प्रातः फिर कौरव-पाण्डव शर-शैया के पास आए । भीष्म जी लम्बे सांस ले रहे थे और अर्धचेतनावस्था में थे । 'पानी'—उन्होंने बस इतना कहा । तभी राजा लोग जलकुंभ लेकर आए किन्तु यह जल पीना उन्होंने स्वीकार नहीं किया । तब अर्जुन ने भीष्म पितामह के दाहिनी ओर मुंह के पास धरती में बाण मार कर दिव्य जल की धार प्रकट की जो भीष्म जी के मुख में गिरने लगी । तब भीष्म जी अर्जुन की बड़ी प्रशंसा करने लगे । उन्होंने दुर्योधन से कहा, "अर्जुन को युद्ध में जीतना असम्भव है । पाण्डव तुम्हारे भाई हैं । तुम इनसे सन्धि कर लो ।"

पर दुर्योधन को उनका यह उपदेश अच्छा नहीं लगा । भावी बलवान थी । युद्ध को रोकने के प्रयत्न बार-बार हुए थे, और हर बार असफल हुए थे।

द्रोण पर्व

ग्यारहवां दिन : सेनाध्यक्ष द्रोणाचार्य

कौरवों को अपने सेनाध्यक्ष भीष्म जी के धराशायी होने का महान् दुःख तो था ही, साथ ही उनके सामने यह समस्या भी थी कि नया सेनाध्यक्ष किसे बनाया जाए। उन्हें महारथी कर्ण का ध्यान आया। कर्ण अब तक युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि भीष्म पितामह के रहते मैं युद्ध नहीं करूंगा। कर्ण को सम्मानपूर्वक बुलाया गया।

कर्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध-भूमि की ओर चला। यद्यपि भीष्म जी के मारे जाने से वह हताश हो चुका था, फिर भी कर्त्तव्य का पालन करने के लिए तत्पर था। वह युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व शर-शैया पर पड़े भीष्म जी के पास गया और प्रणाम करके पास खड़ा हो गया और प्रार्थना की कि मुझे कोई मंगलकारी उपदेश दीजिए। भीष्म जी ने कर्ण को कर्त्तव्य-कर्म के रूप में युद्ध करने को कहा। वहां से कर्ण रणस्थल में गया। समस्त सेनाएं मोर्चे संभाले युद्ध के लिए तैयार खड़ी थीं। महारथी कर्ण को देखकर सैनिकों में उत्साह का संचार हुआ। कर्ण ने राजा दुर्योधन के पास जाकर कहा, "राजन्! इस समय आचार्य द्रोण ही महासेनापति का पद संभालने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं।"

कर्ण ने बात ठीक कही थी। दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से सेनाध्यक्ष का पद संभालने की प्रार्थना की और उन्होंने स्वीकार कर ली।

आचार्य द्रोण का सेनापति पद पर अभिषेक सम्पन्न करके ग्यारहवें दिन का युद्ध प्रारंभ हुआ। द्रोणाचार्य ने कौरवों और पाण्डवों को युद्ध की शिक्षा दी थी। आज गुरु और चेलों में भयंकर युद्ध छिड़ा। पाण्डवों ने यह अपनी रणनीति बना ली थी कि सेनाध्यक्ष को सबसे पहले घेरो और मार डालो। उधर दूसरे पक्ष के लोग हर तरह से अपने सेनापति की रक्षा करते थे। आचार्य द्रोण यद्यपि बूढ़े हो चुके थे किन्तु उनका रण-कौशल अद्वितीय था।

सेनाध्यक्ष बनने के उपलक्ष्य में आचार्य द्रोण ने दुर्योधन से कहा कि कोई वर मांगो। दुर्योधन ने मामा शकुनि आदि से सलाह करके कहा, "आचार्यवर, यदि आप मेरा कोई प्रिय काम करना चाहते हैं तो युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर मेरे पास लाइए। दुर्योधन फिर कपट का आश्रय ले रहा था। वह जानता था कि यदि युधिष्ठिर का बाल भी बांका हुआ तो शेष पाण्डवों के क्रोध की आग में हम जल कर राख हो जाएंगे। और उन्हें यह भी पता था कि

पाण्डवों को युद्ध में जीतना असम्भव है। इसलिए दुर्योधन युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाकर फिर से जुआ खेलकर और हराकर पाण्डवों को वनवास देना चाहता था। दुर्योधन की इस दुर्नीति से आचार्य का मन खिन्न हुआ। उन्होंने कहा, "यदि अर्जुन को तुम रोके रखोगे तो मैं युधिष्ठिर को पकड़ लाऊंगा।" उधर पाण्डवों को भी अपने गुप्तचरों से इस बात का पता लग गया। अर्जुन ने निश्चय किया कि मैं बड़े भैया के आस-पास रहकर ही युद्ध करूंगा।

आज आचार्य द्रोण ने अपने युद्ध-कौशल से पाण्डवों को बुरी तरह छकाया। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने भी अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। उसने शल्य के सारथि को मार डाला तो शल्य गदायुद्ध के लिए तैयार हो गया। उधर से भीमसेन भी गदायुद्ध में कूद पड़े। दोनों गदाएं जब टकरातीं तब वज्रपात जैसा शब्द होता था। बिजली-सी कौंध जाती। अन्त में शल्य युद्ध से भाग खड़ा हुआ और साथ ही कौरव सेना भी। उधर द्रोणाचार्य ने आज पाण्डव पक्ष के वीरों का संहार कर डाला, पर अर्जुन ने उन्हें युधिष्ठिर तक पहुंचने ही नहीं दिया और सायंकाल होने पर युद्ध रुक गया।

बारहवां दिन

आचार्य द्रोण ने योजना बनाई कि हमारे पक्ष के वीर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारते हुए दूसरी ओर ले जाएं, तब मैं युधिष्ठिर को पकड़ लाऊंगा। त्रिगर्त नरेश सुशर्मा ने अपने भाइयों की सहायता से अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा कर डाली। इस योजना के अनुसार सुशर्मा के नेतृत्व में संशप्तक वीर अर्जुन को ललकारते हुए युद्ध-स्थल के दक्षिण की ओर ले गए। उधर दुर्योधन की सेना युधिष्ठिर को बन्दी बनाने के लिए उनकी ओर बढ़ी। संशप्तकों के साथ अर्जुन का भीषण युद्ध होता रहा। इस युद्ध में संशप्तक वीर सुधन्वा ने वीर गति प्राप्त की।

द्रोणाचार्य ने आज गरुड़-व्यूह की रचना की थी। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा से भयभीत थे, उन्हें धृष्टद्युम्न ने आश्वस्त किया कि मैं आचार्य द्रोण को रोकूंगा। और सचमुच धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण को रोका। दोनों पक्षों की सेनाएं पागलों की तरह मर्यादा-शून्य होकर लड़ रही थीं। आज गजसेना में भयंकर मारकाट हुई। आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर की रक्षा कर रहे सत्यजित्, शतानीक, दृढ़सेन, क्षेम, वसुदान आदि का वध कर डाला। पाण्डव सेना में त्राहि-त्राहि मच गई और अनेक मोर्चों पर सैनिकों के पैर उखड़ गए।

उधर अर्जुन ने संशप्तकों की सेना को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। तब वह भगदत्त के साथ युद्ध करने लगा। भगदत्त से श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सुरक्षा की और अन्त में अर्जुन के हाथों वह मारा गया।

दुर्योधन का मामा शकुनि जुए के खेल में तो छल-कपट करता ही था, माया-युद्ध में भी चतुर था। पर आज के युद्ध में वह पराजित हुआ था। पाण्डव सेना की सारी शक्ति द्रोण द्वारा युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा को झुठलाने में लगी हुई थी। पाण्डवों ने मिलकर आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया और अर्जुन और कर्ण में घोर युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के सहस्रों वीर मारे गए। घायल होने से संभवतः कोई बचा नहीं। सांझ हो चली तो युद्ध रुक गया।

तेरहवां दिन : अभिमन्यु का वध

आचार्य द्रोण दूसरे दिन भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सके तो दुर्योधन ने उन पर अपना अविश्वास प्रकट किया। दुर्योधन द्वारा जली-कटी बातें कहने पर आचार्य द्रोण ने कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज पाण्डवों के किसी महारथी को अवश्य मार गिराऊंगा। किन्तु अर्जुन को आज भी कहीं दूसरी ओर उलझाए रखना होगा। बात यह थी कि जब कोई अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारता था तो अर्जुन उसी से लड़ने लगता था। आज भी संशप्तक उसे ललकारते हुए दक्षिण की ओर ले गए।

आज आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की थी। इस व्यूह को तोड़ना अत्यन्त कठिन था। अर्जुन के अतिरिक्त पाण्डवों में दूसरा कोई इसे तोड़ना नहीं जानता था।

चक्रव्यूह बनाकर जब आचार्य ने पाण्डव सेना पर आक्रमण किया तो वे उसे रोक नहीं सके। तब युधिष्ठिर ने अभिमन्यु से कहा, "बेटा, तुम्हीं इस आक्रमण को विफल कर सकते हो। अर्जुन की अनुपस्थिति में तुम हमें इस हार से बचा सकते हो।"

अभिमन्यु ने कहा, "मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूंगा। पर बात यह है कि मैं इस व्यूह को तोड़ना तो जानता हूं पर फंस जाने पर बाहर नहीं निकलना जानता।"

युधिष्ठिर बोले, "तुम एक बार इस व्यूह को तोड़ तो दो, फिर तो तुम्हारे पीछे-पीछे हम भी घुस पड़ेंगे। हम सब तुम्हारी रक्षा करेंगे। बस, तुम तो भीतर घुसने का रास्ता भर बना दो।" भीमसेन ने भी साथ रहकर रक्षा करने का आश्वासन दिया और धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि आदि वीरों को भी अभिमन्यु के पीछे-पीछे चलने को कहा।

जैसे पतंगा लौ पर झपटता है, वैसे ही अभिमन्यु चक्रव्यूह पर टूट पड़ा। आज किशोर अभिमन्यु का पराक्रम देखने योग्य था। वह बड़े-बड़े वीरों के लिए भी अजेय था। जैसे बाल-रवि की भी किरणें पर्वतों के उच्च शिखरों पर पड़ती हैं, वैसे ही वह भी बड़े-बड़ों को रौंद रहा था। अभिमन्यु वीरोत्साह में भरा हुआ आज अपने पिता तुल्य घोर पराक्रम का प्रदर्शन कर रहा था। अभिमन्यु ने अपने सारथि को आदेश दिया कि मेरे रथ को द्रोणाचार्य के सामने ले चलो। सारथि इस बाल वीर को आचार्य द्रोण के सामने ले जाते सकुचा रहा था। वह धनुर्विद्या में पारंगत आचार्य द्रोण के रणकौशल से परिचित था और वीर अभिमन्यु की कच्ची उमर और अनुभवहीनता भी उससे छिपी नहीं थी। पर अभिमन्यु भी वीर पिता का वीर पुत्र था। युद्ध शिक्षा उसे घुट्टी में मिली थी। वह तो देवराज इन्द्र का सामना करने को भी तैयार था, आचार्य द्रोण की तो बात ही क्या! उसने कहा, "मामा कृष्ण और पिता अर्जुन भी यदि आज विपक्ष में खड़े हो जाएं तो उनके भी दांत खट्टे कर दूंगा, कौरव वीरों की तो बात ही क्या!"

अपने रथी की आज्ञा का पालन करते हुए सारथी ने भारी मन से रथ को द्रोणाचार्य के सामने खड़ा किया।

कौरव वीर अभिमन्यु को आता देखकर दीवार बनकर सामने खड़े हो गए। उधर पाण्डव वीर भी अभिमन्यु की सहायता के लिए उसके पीछे-पीछे चले आ रहे थे। जैसे सिंह का बच्चा निर्भय होकर हाथियों के समूह पर आक्रमण करता है, वैसे ही अभिमन्यु ने कौरव

वीरों पर भयंकर आक्रमण किया अभिमन्यु अभी कुछ ही आगे बढ़ा था कि द्रोणाचार्य आदि उस पर टूट पड़े और शस्त्रास्त्रों की खनकार और चमकार से युद्ध की भीषणता प्रकट होने लगी। जैसे सागर में प्रवेश करते समय गंगा की धारा की स्थिति होती है; कुछ देर तक वही स्थिति पाण्डव सेना की रही। इस संघर्ष के कुछ क्षणों बाद ही आचार्य द्रोण के पूरा प्रतिरोध करने पर भी वीर अभिमन्यु चक्रव्यूह को तोड़ कर भीतर घुस गया। कौरव वीर अभिमन्यु के इस पराक्रम से सन्न रह गए पर अगले ही क्षण व्यूह के भीतर गजारूढ़, अश्वारूढ़, रथारूढ़ और पदाति (पैदल) वीरों के समूहों ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

युद्ध में एकाएक तेजी आ गई। रणवाद्य बजने लगे। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की घर्घर, वीरों की ललकार, तलवारों की झनकार, तीरों की सनसनाहट तथा मारो-मारो, काटो-काटो का कोलाहल होने लगा।

अभिमन्यु का रणकौशल—उसकी फुर्ती, लक्ष्य पर अचूक निशाना, शत्रु को मर्माहत करने की कला अद्भुत थी। उसके प्रहारों से कौरव वीर कट-कटकर गिरने लगे। किसी की भुजा कट गई तो किसी की जांघ। किसी का सिर दूर जा पड़ा था तो कोई हृदय में तीर चुभ जाने से मर्मान्तिक पीड़ा से कराह रहा था। किसी के घोड़े गिर पड़े थे, किसी का सारथी मर गया था, तो किसी के धनुष की डोर कटी पड़ी थी। अभिमन्यु ने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना के चारों अंगों को भारी क्षति पहुंचाई। जैसे देव-सेनानी कार्तिकेय ने असुर सेना का संहार किया था, वैसे ही अभिमन्यु ने आचार्य द्रोण के सेनापतित्व में लड़ रही कौरव सेना को भारी क्षति पहुंचाई। थकी-हारी कौरव सेना पसीने से लथपथ, इधर-उधर भागने लगी। कौरव सेना की जीतने की और जीने की इच्छा समाप्त हो चुकी थी। कौरव वीर जिधर देखते उधर ही उन्हें साक्षात् यमराज-सा अभिमन्यु संहारक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करता दिखाई देता। कौरव वीर सहायता के लिए चिल्लाते और घायल पड़े अपने सगे-सम्बन्धियों की पुकार को अनसुना करके भाग रहे थे पर फिर भी भाग नहीं पा रहे थे। उनकी पीठों के घाव उनके युद्ध से भागने की साक्षी दे रहे थे। इन भगोड़ों को दोहरा कष्ट था—एक तो पीठ के घावों का और दूसरा पीठ दिखाने का।

अपनी सेना को दुमुंहे अभिमन्यु की मार से भागता देखकर दुर्योधन लज्जा से गड़ा जा रहा था। आचार्य द्रोण को लग रहा था कि अर्जुन की अनुपस्थिति से कोई लाभ हम नहीं उठा सके और चक्रव्यूह का निर्माण व्यर्थ गया। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा के पूरा होने में भी संशय होने लगा। दुर्योधन अभिमन्यु का सामना करने के लिए उसकी ओर बढ़ा तो उसके प्राणों की सुरक्षा के लिए आचार्य द्रोण ने अनेक कौरव वीरों को भी उसका अनुसरण करने के लिए कहा। उन्हें भय था कि कहीं अभिमन्यु कौरव नरेश दुर्योधन को मार ही न डाले। सेनापति आचार्य द्रोण का आदेश मिलते ही अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, शल्य आदि वीर अभिमन्यु पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगे। वे दुर्योधन को अभिमन्यु के सामने से हटा ले जाने में सफल हो गए। इस प्रकार दुर्योधन की प्राण-रक्षा हो सकी। जैसे सिंह अपने सामने के भक्ष्य पदार्थ के छिप जाने से अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार दुर्योधन को हटाए जाने से अभिमन्यु भी अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। अभिमन्यु की सिंह गर्जना से द्रोण प्रमुख कौरव महारथी फिर एक साथ उस पर टूट पड़े और उसे घेर कर प्रहार करने लगे। पर अभिमन्यु आश्चर्यजनक

पराक्रम दिखाकर न केवल अपने आप उस घेरे से बाहर हो गया अपितु उन महारथियों को भी घायल कर डाला। चोट खाए सर्प की तरह क्रोध में भरे कौरव वीरों ने दोबारा अभिमन्यु को घेर कर मारने का प्रयत्न किया पर जैसे चट्टान से टकराकर समुद्र की जलराशि पीछे लौट जाती है, वैसे ही अभिमन्यु से टकराकर और हतप्रभ होकर वे पीछे लौट पड़े पर फिर डटकर खड़े हो गए और प्राणों की बाजी लगाकर लड़ने लगे। कौरव महारथियों ने घिरे हुए उस वीर बालक पर बाणवर्षा करके उसे जगह-जगह से बींध डाला। पर अकेले अभिमन्यु ने भी उन सबको अपने बाणों से बुरी तरह घायल कर डाला। अभिमन्यु की अवस्था अभी मात्र सोलह-सत्रह वर्ष की थी, और दूसरी ओर बड़े-बड़े महारथी वीर मिलकर उसे घेरे हुए थे और बड़ी निर्लज्जता तथा अनीति के साथ प्रहार कर रहे थे। पर ज्यों-ज्यों शत्रु पक्ष का आक्रमण प्रबल होता, अभिमन्यु का शौर्य भी अपनी पूरी आभा के साथ चमकने लगता।

इस समय वीर अश्मक पुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण करके उसे घायल कर दिया। अश्मक पुत्र के एकाएक हुए आक्रमण का प्रतिकार करते हुए अभिमन्यु ने ऐसे तीखे बाण मारे कि राजकुमार अश्मक का सिर कटकर दूर जा पड़ा। अब फिर कौरव सेना में भगदड़ मचने लगी तो कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शकुनि, शल्य, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि महारथियों ने अभिमन्यु पर बाण-वर्षा करनी प्रारंभ कर दी। इतने महारथियों से घिरा होने पर भी अभिमन्यु भयभीत नहीं हुआ। उसने कर्ण को लक्ष्य करके एक ऐसा बाण मारा जो उसके कवच और काया को फाड़कर धरती में समा गया। पीड़ा से कर्ण तिलमिला उठा। यही दशा शल्य की भी हुई। अभिमन्यु के बाणों से घायल होकर राजा शल्य रथ में गिर पड़े और मूर्छित हो गए। कर्ण और शल्य को घायल देखकर कौरव सेना में फिर भगदड़ मच गई। अब अभिमन्यु ने व्यूहबद्ध रथियों पर आक्रमण किया। आचार्य द्रोण इस मोर्चे का संचालन कर रहे थे। उधर शल्य का छोटा भाई अभिमन्यु को ललकारता हुआ उससे युद्ध करने लगा। पर अभिमन्यु ने उसे बिजली की-सी फुर्ती के साथ अपने बाणों द्वारा धराशायी कर दिया। अब तो बदले की भावना से प्रेरित होकर कौरव सेना के अनेक शूरवीर एक साथ अभिमन्यु पर टूट पड़े पर वह फिर भी अविचलित रहा। आज के युद्ध में पहला वीर अभिमन्यु के हाथ में थी और कौरव पक्ष बचाव की असफल चेष्टा कर रहा था। जैसे सूर्य के सामने तारागण हतप्रभ हो जाते हैं, वैसे ही कौरव वीर अभिमन्यु के सामने फीके पड़ गए थे।

आचार्य द्रोण ने कृपाचार्य से अभिमन्यु की शूरवीरता की बहुत प्रशंसा की तो दुर्योधन जल-भुन उठा। वह बोला, "आचार्य द्रोण जान-बूझकर अभिमन्यु को मारना नहीं चाहते हैं। भला आचार्य जी के सामने इस बालक की क्या मजाल है जो पल भर भी ठहर जाए। अर्जुन आचार्य जी का प्रिय शिष्य है और अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र। इसके प्रति भी आचार्य का अत्यन्त ममत्व और स्नेह है। तभी तो यह निर्भय घूम रहा है। आचार्य का भरोसा छोड़ो और आओ, हम सब मिलकर इसे ठिकाने लगाएं।"

दुर्योधन के कहने से अनेक कौरव महारथी अभिमन्यु पर टूट पड़े। दुःशासन ने डींग मारी, "मैं अभी अभिमन्यु को यमलोक पहुंचाकर छोड़ूंगा। इसकी मृत्यु के शोक में अर्जुन भी अपने प्राण छोड़ देगा और अर्जुन मरा तो शेष पाण्डव भी प्राण त्याग देंगे। इस प्रकार आपके सारे बलशाली शत्रुओं का बिना युद्ध के ही अन्त हो जाएगा।"

इसके पश्चात् दुःशासन जोर-जोर से गर्जना और अभिमन्यु पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगा। अभिमन्यु ने भी दुःशासन पर अपने पैने बाण चलाए। अभिमन्यु ने अपने बाण से दुःशासन के धनुष को काट डाला और दुःशासन को भी क्षत-विक्षत कर दिया। एक बाण से दुःशासन के गले की हड्डी को तोड़ दिया तो दुःशासन मूर्च्छित हो रथ में गिर पड़ा। चतुर सारथि रथ को दूसरी ओर भगा ले गया, और दुःशासन के प्राण बचे।

पाण्डव सेना में हर्ष की लहर दौड़ गई। सभी अभिमन्यु का जयकार करने लगे और दूने उत्साह के साथ चक्रव्यूह को तोड़ने में जुट गए।

दुर्योधन ने इस आड़े अवसर पर कर्ण को आगे बढ़कर लड़ने के लिए कहा। क्रोध में भरे हुए महारथी कर्ण ने अभिमन्यु को अपने बाणों का लक्ष्य बनाना प्रारम्भ किया। अभिमन्यु ने अपने आगे डटे हुए कर्ण को घायल करके एक ओर खदेड़ दिया और आचार्य द्रोण की ओर बढ़ चला। कर्ण फिर सामने आया तो अभिमन्यु ने उसका धनुष काट डाला और कर्ण को भी घायल कर दिया। कर्ण रणभूमि से भाग खड़ा हुआ तो एक बार फिर कौरव सेना में भगदड़ मच गई। महारथी जयद्रथ के अतिरिक्त सभी कौरव वीर भाग खड़े हुए। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को तोड़ डाला तो उस मार्ग से पाण्डव वीर व्यूह में घुसने का प्रयत्न करने लगे किन्तु अकेले जयद्रथ ने अपने प्रचण्ड पराक्रम का परिचय देते हुए पाण्डवों को भीतर घुसने से रोके रखा। पाण्डव पक्ष के वीर व्यूह के भीतर प्रवेश नहीं कर पाए। अभिमन्यु अकेला ही भीतर घुसकर युद्ध करता रहा। कौरव वीरों के लिए अभिमन्यु यमराज जैसा था। जो भी उसके सामने पड़ता, वही प्राण गंवा बैठता। अपने वीरों को यों गाजर-मूली की तरह कटते देखकर राजा दुर्योधन ने अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया पर ज्यों ही अभिमन्यु ने उसके मर्म स्थान को अपने तीखे बाणों से बींध डाला, वह वहां से भाग खड़ा हुआ और उसके पीछे-पीछे सेना भी भाग चली। कौरव पक्ष की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। एक बीर बालक का सामना अनेक महारथी मिलकर भी नहीं कर पा रहे थे। कौरव बार-बार पिटते थे और सिर पर पांव रख कर भाग खड़े होते थे। वे बार-बार पीठ दिखाते थे। इस बार द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, वृहद्बल कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि ने फिर से अभिमन्यु को घेरकर मारना चाहा पर असफल हुए और मार खाकर इधर-उधर भाग गए। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभिमन्यु से लड़ने आगे बढ़ा तो दुर्योधन भी उसकी सहायता करने आ गया किन्तु अभिमन्यु के हाथों लक्ष्मण ने वीरगति प्राप्त की। दुर्योधन अभिमन्यु के बाणों से पहले ही घायल था, पुत्र-वियोग का कभी न भरने वाला घाव उसे असह्य दुःख देने लगा।

अपने पुत्र के घातक अभिमन्यु को जीवित देखना, अब दुर्योधन के लिए असह्य हो गया। उसने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा इन छः महारथियों को साथ लेकर अभिमन्यु को घेर लिया। पर अभिमन्यु ने अकेले ही इन छः महारथियों को भगा दिया और जयद्रथ की सेना पर आक्रमण किया क्योंकि वह पाण्डव सेना को व्यूह में घुसने से रोक रही थी। गजसेना के घेरे को अभिमन्यु ने उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे वायु मेघ-समूह को तितर-बितर कर देती है। इस युद्ध में श्वेतपुत्र को अभिमन्यु ने मार गिराया। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के साथ जोरों की लड़ाई हुई जिसमें अश्वत्थामा घायल हो गया तो द्रोणाचार्य पुत्र की सहायता को दौड़ आए और अभिमन्यु पर तीखे बाण बरसाने

लगे। अन्य महारथियों ने भी उसे अपने पैने बाणों से बींधना प्रारम्भ किया। अभिमन्यु अकेला उन सबसे जूझता रहा और उन्हें घायल करता रहा। इस संघर्ष में बृहद्बल ने अभिमन्यु की छाती में गहरी चोट पहुंचाई। बदले में अभिमन्यु ने उसके रथ के चारों घोड़ों और सारथि को मार गिराया तब रथहीन बृहद्बल ढाल और तलवार लेकर अभिमन्यु का सिर काटने के लिए आगे बढ़ा। बढ़े चले आते बृहद्बल की छाती में अभिमन्यु ने ऐसा बाण मारा जो छाती फाड़ता हुआ पार निकल गया। कौशल नरेश बृहद्बल सदा के लिए युद्धभूमि में सो गया। इस के अतिरिक्त बड़ी संख्या में कौरव वीर हताहत हुए और कुछ प्राण बचाकर भाग निकले।

अब कर्ण और अभिमन्यु में युद्ध ठना। दोनों ने एक-दूसरे को रक्तरंजित कर दिया। अभिमन्यु ने कर्ण के छः मंत्रियों और मगधराज के तरुण पुत्र अश्वकेतु को मार डाला।

अपने पक्ष के बड़े-बड़े वीरों को अभिमन्यु के हाथों मरते देखकर शकुनि ने दुर्योधन से कहा, "राजन्! यह वीर बालक एक-एक करके हमें मारे, इससे पहले ही हमें मिलकर इसे मार डालना चाहिए।" इसी समय महारथी कर्ण ने आचार्य द्रोण से पूछा, "आचार्यवर! हमें अभिमन्यु को मारने का उपाय बताइए। इसने मुझे बुरी तरह घायल कर दिया है। मैं तो केवल इसीलिए टिका हुआ हूं कि युद्ध से भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं है, अन्यथा कब का भाग गया होता!" कर्ण की बात सुनकर आचार्य द्रोण को हंसी आ गई। वे स्वयं भी बुरी तरह घायल हो चुके थे पर अभिमन्यु के पराक्रम को देखकर प्रसन्न भी थे। उन्होंने कहा, "इसके कवच अभेद्य हैं, इसलिए इसे चोट पहुंचाने का प्रयास निष्फल होगा। हां, इसके धनुष और डोरी को काट डालो। इसके घोड़े और पार्श्व-रक्षकों को नष्ट कर डालो। जब यह निहत्था हो जाए तब इस पर प्रहार करो।" आचार्य की सलाह से कर्ण ने उसके धनुष को, कृतवर्मा ने घोड़ों को और कृपाचार्य ने दोनों पार्श्व-रक्षकों को मार डाला। शेष महारथी निहत्थे वीर बालक पर बाणों की बौछार करने लगे।

अभिमन्यु ढाल और तलवार लेकर युद्ध करने लगा। उसके आक्रमण को ये महारथी मिलकर भी रोक नहीं पा रहे थे। तब द्रोणाचार्य ने एक तेज धार वाले बाण से उसकी तलवार को ही मूठ के पास से काट डाला। कर्ण ने उसकी ढाल के टुकड़े कर डाले तब वह चक्र हाथ में लेकर द्रोणाचार्य की ओर बढ़ा। चक्र हाथ में लिए वह सुदर्शन चक्रधारी भगवान कृष्ण की तरह लग रहा था। कौरव महारथियों ने उसके इस चक्र के भी टुकड़े कर डाले। तब अभिमन्यु गदा उठाकर शत्रुओं पर टूट पड़ा। उसका सामना करने के लिए दुःशासन का पुत्र गदा लेकर आगे बढ़ा और दोनों में गदायुद्ध होने लगा। गदायुद्ध करते हुए वे दोनों वीर एक-दूसरे के प्रहार से रणभूमि में गिर पड़े। दुःशासन पुत्र ने शीघ्रता से उठकर अभिमन्यु के सिर पर पूरे जोर से गदा का वार कर दिया। इस अचूक प्रहार से अभिमन्यु अचेत होकर गिर पड़ा और दोबारा कभी नहीं उठा।

इस प्रकार उस अकेले वीर बालक को अनेक महारथियों ने मिलकर, घेर कर मार डाला। उसके मर जाने पर कौरव वीर बड़ी निर्लज्जता से सिंह-गर्जना करने लगे।

पाण्डव पक्ष में अभिमन्यु की मृत्यु से हाहाकार मच गया। अभिमन्यु को अन्यायपूर्वक मारने के लिए कौरव महारथियों की सर्वत्र निन्दा होने लगी।

उधर पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को धीरज बंधाकर

अभिमन्यु-वध

भागने से रोका।

सांझ घिर आई थी। युद्ध रुक गया। सैनिक अपने-अपने शिविरों में लौट चले। आज पाण्डव पक्ष निस्तेज था। उनका बालारुण अस्त हो गया था।

युधिष्ठिर को अभिमन्यु के मारे जाने का महान शोक हुआ था। वे इस बात के लिए भी लज्जित थे कि अभिमन्यु द्वारा व्यूह को तोड़ देने पर भी वे तथा भीमसेन आदि भीतर घुसने में असमर्थ रहे और सहायता का वचन देकर भी सहायता नहीं कर सके। विजय की अभिलाषा से उस किशोर को युद्ध की ज्वाला में प्रवेश करने के लिए कहने का भी उन्हें महान दुःख था। उस वीर बालक को खोकर और युद्ध में हारकर जीवित लौट आने से भी उन्हें बड़ी ग्लानि का अनुभव हो रहा था। पुत्रशोक से व्याकुल अर्जुन का सामना करने में भी उन्हें बड़ी लज्जा का अनुभव हो रहा था।

महर्षि व्यास ने शोकग्रस्त धर्मात्मा युधिष्ठिर को सान्त्वना दी और धीरज बंधाया।

उधर वीर अर्जुन संसप्तकों का संहार करके वापस शिविर को लौट ही रहा था कि मार्ग में उसे अनेक अपशकुन हुए। अनिष्ट की आशंका से अर्जुन का मन भारी हो रहा था। जब वह अपने शिविर के समीप पहुंचा तो वहां भी उसे सब ओर व्याप्त शोक और दुःख का आभास मिला। रथ से उतरकर उसने शोकाकुल पाण्डवों को बैठे देखा। उसे वहां अभिमन्यु दिखाई नहीं दे रहा था। जब अर्जुन को चक्रव्यूह-भेदन करते समय अभिमन्यु के वीरगति प्राप्त करने का पता लगा तो पुत्र-वियोग के गहरे आघात से विचलित हो उठा। इस समय वासुदेव श्रीकृष्ण ने उसे संभाला और समझाया। विलाप करते हुए अर्जुन ने कहा, "मेरे पुत्र को अन्यायपूर्वक मारने वाले हत्यारे कल मेरे द्वारा मार गिराए जाएंगे। मुझे आश्चर्य है कि भैया धर्मराज और भीमसेन के होते, नकुल और सहदेव के सामने मेरा पुत्र कैसे मारा गया! यदि मुझे जरा भी सन्देह होता कि पाण्डव और पांचाल अभिमन्यु की रक्षा करने में असमर्थ हैं तो मैं स्वयं उसकी रक्षा करता। हाय! यह मेरी ही भूल थी कि मैं सत्वहीन आप लोगों के भरोसे अभिमन्यु को छोड़ गया।"

जयद्रथ-वध

अभिमन्यु-वध का पूरा विवरण सुनकर अर्जुन ने कल ही सिन्धु नरेश जयद्रथ को मारने के लिए शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की। इसके साथ ही दूसरी प्रतिज्ञा यह की कि यदि मैं सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को न मार सका तो अग्नि में प्रवेश करके आत्मदाह कर लूंगा।

जब अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार जयद्रथ ने सुना तो उसे अपने प्राण संकट में दिखाई दिए। वह कौरव पक्ष के सहायक राजाओं की सभा में गया और बोला कि मैं अपने प्राण बचाने के लिए अपनी राजधानी को चला जाता हूं अथवा आप सब मिलकर मेरी सुरक्षा का आश्वासन दें। पर मुझे लगता है कि आप सब मिलकर भी मुझे अर्जुन से नहीं बचा पाएंगे। इसलिए मुझे जाने ही दीजिए। मैं छिप जाऊंगा जिससे अर्जुन मुझे मारना तो दूर, देख भी नहीं सकेगा।

दुर्योधन ने जयद्रथ को सुरक्षा का पूरा-पूरा आश्वासन दिया। फिर दोनों बात को ही

आचार्य द्रोण के पास गए। आचार्य द्रोण ने भी आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारी सुरक्षा का उत्तरदायित्व लेता हूं। तुम अपने जीवन की तनिक भी चिन्ता न करो। मैं ऐसा व्यूह बना-ऊंगा जिसे अर्जुन पार न कर सके। तुम निर्भय और निश्चिन्त होकर क्षत्रिय धर्म का पालन करो। जीवन का अन्त अवश्यम्भावी है तो फिर धर्म का परित्याग क्यों किया जाए।

जयद्रथ भयमुक्त होकर दूसरे दिन युद्ध के लिए मान गया। कौरव सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई।

उधर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बिना सोचे-विचारे प्रतिज्ञा करने के लिए डांटा। उन्होंने बताया कि कौरव सेना के शिविर में तुम्हारी प्रतिज्ञा की क्या प्रतिक्रिया हुई है और द्रोणाचार्य ऐसा व्यूह बना रहे हैं जिसमें जयद्रथ सुरक्षित रहेगा। छः महारथियों का संहार किए बिना तुम जयद्रथ तक नहीं पहुंच सकोगे।

अर्जुन ने कहा, "मैं अकेला ही सबसे निबट लूंगा। देखता हूं कौन मेरे सामने टिकता है। आप जयद्रथ को मेरे द्वारा मारा गया ही समझिए। हां, आप कल जरा सवेरे ही मेरे रथ को तैयार कर दीजिएगा।

कौरव सेना में बचाव की सारी योजनाओं के बावजूद भय छाया हुआ था। भय पाण्डव पक्ष में भी था कि कहीं ऐसा न हो कि जयद्रथ सामने न आए और प्रतिज्ञा पूरी न होने पर अर्जुन आत्मदाह कर ले।

उधर सुभद्रा का मातृहृदय अभिमन्यु के वियोग से कराह रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा को धीरज बंधाने का बहुत प्रयत्न किया।

रात को अर्जुन की जयद्रथ पर विजय के लिए भगवान् शंकर का पूजन करवाया। फिर श्रीकृष्ण ने आधी रात को ही दारुक को रथ तैयार करने के लिए कहा। दारुक ने भी कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष और बाण आदि सभी आवश्यक सामग्री रथ में यथा-स्थान रख दी। फिर गरुड के चिह्न वाली ऊंची ध्वजा भी लगा दी। बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य तथा सुग्रीव नामक चारों घोड़ों को जोतकर और स्वयं भी कवच पहनकर दारुक तैयार हो गया। ज्यों ही श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख बजाया, दारुक रथ को लेकर यथास्थान पहुंच गया।

दूसरी ओर सेनापति द्रोणाचार्य ने चक्रशकट नामक व्यूह रचा। द्रोणाचार्य के रण-कौशल से कौरव सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। चक्रशकट व्यूह की रचना को देखकर राजा दुर्योधन पूरी तरह आश्वस्त हो गया कि अब अर्जुन जयद्रथ का बाल भी बांका नहीं कर सकता।

रणवाद्य बजने लगे। अपनी-अपनी विजय की कामना से सेनाएं आक्रमण-प्रत्याक्रमण के लिए आमने-सामने डट गईं।

श्रीकृष्ण ने पांचजन्य और अर्जुन ने अपने देवदत्त शंख को पूरे जोर से बजाया। उनके शंखनाद से कौरव सेना भयभीत और सावधान हो गई। अर्जुन के रथ पर लगे ध्वज में पवन-पुत्र हनुमान का चिह्न अंकित था। ध्वज में अंकित हनुमान का चित्र भी शत्रु सैनिकों के लिए त्रासदायक था।

आज कौरव सेना के अग्रभाग में दुर्योधन का भाई दुर्मर्षण गजसेना का नेतृत्व कर रहा

था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को उसी के सामने लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन की मार से गजसेना कटने-मरने लगी और तितर-बितर हो गई। कौरव-सेना का अगला मोर्चा उखड़ गया। इस आड़े समय में दुःशासन ने अर्जुन से मोर्चा लिया। दुःशासन ने अर्जुन को अपनी गजसेना से घेर लिया। पहले तो लगा कि दुःशासन सफलतापूर्वक अर्जुन का सामना कर लेगा परन्तु शत्रुञ्जय अर्जुन के बाणों से हाथी चिंघाड़ मारकर भागने लगे। गजारोही सैनिक कट-कर गिरने लगे और दुःशासन अपनी सेना सहित भाग खड़ा हुआ।

अब अर्जुन ने द्रोणाचार्य वाले मोर्चे पर धावा बोला। द्रोण तो अर्जुन के गुरु ही थे। अर्जुन ने उन्हें प्रणाम करके विजय का आशीर्वाद मांगा पर आचार्य द्रोण ने कहा, "मुझे जीते बिना तुम जयद्रथ को नहीं जीत सकते।"

अर्जुन तथा द्रोणाचार्य में देर तक युद्ध होता रहा। दोनों ने एक-दूसरे को घायल भी किया पर हारा कोई नहीं। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "महाबाहो! आचार्य द्रोण तुम्हें यहीं पर रोके रखना चाहते हैं जिससे समय बीत जाए। इसलिए इनकी चाल में मत आओ। इन्हें छोड़कर आगे बढ़ो। तुम्हें जयद्रथ के पास पहुंच कर उसे मारना है।" अर्जुन ने रथ आगे बढ़ाने की अनुमति दे दी तो द्रोणाचार्य ने व्यंग्य कसा, "मुझे बिना हराए आगे कैसे बढ़ रहे हो! यह तो वीर अर्जुन के स्वभाव के विरुद्ध है!"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "आप मेरे शत्रु नहीं गुरु हैं। भला आपको युद्ध में कौन जीत सकता है।"

द्रोणाचार्य ने आगे बढ़ते अर्जुन का पीछा किया। दोनों में फिर भयंकर युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को घायल कर दिया। वे फिर आचार्य द्रोण को छोड़ कर आगे बढ़ गए। आगे उनका सामना कृतवर्मा से हुआ। यहां भी बहुत समय नष्ट हुआ। हारा कोई भी नहीं। कौरव पक्ष आज अर्जुन को उलझाकर समय काटने की रणनीति का आश्रय ले रहा था। इसलिए कृतवर्मा से उलझना छोड़कर श्रीकृष्ण ने रथ आगे बढ़ाया तो श्रुतायुद्ध उन्हें रोकने लगा। उसने अर्जुन का रथ हांकते भगवान् श्रीकृष्ण पर गदा से प्रहार कर दिया। यह गदा श्रुतायुद्ध को वरदान में मिली थी। इसकी शक्ति अमोघ थी पर जो युद्ध नहीं कर रहा हो, उस पर प्रहार करने से यह प्रहार करने वाले को ही मार डालती थी। यही हुआ भी। श्रुतायुद्ध अपनी गदा की चोट से मारा गया।

अब कम्बोजराज का पुत्र सुदक्षिण अर्जुन से आ भिड़ा। यह बड़ा पराक्रमी वीर था। इसने अर्जुन से अच्छी तरह दो-दो हाथ किए पर अन्त में मारा गया।

अब तो दुर्योधन को बड़ी घबराहट हुई। वह दौड़ा-दौड़ा द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला, "गुरुदेव! अर्जुन हमारे व्यूह को तोड़कर भीतर घुस चुका है। अब जयद्रथ की प्राण रक्षा का तुरन्त कोई उपाय कीजिए। हम आपके ही भरोसे से युद्ध कर रहे हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अर्जुन आपको लांघकर आगे कैसे निकल गया। पाण्डवों पर आपका स्नेह है, यह मैं जानता हूं। मैं भी धन-मान द्वारा सदा आपको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता रहा हूं पर न जाने समय आने पर मेरे उपकारों को आप क्यों भूल जाते हैं। आप तो मीठी छुरी जैसे हैं। यदि आप आश्वासन न देते तो मैं जयद्रथ को अपने राज्य लौट जाने देता। अब यदि जयद्रथ को कुछ हो गया तो इसका सारा उत्तरदायित्व आप पर होगा।"

आचार्य द्रोण बोले, "मैं तुम्हारी बातों का बुरा नहीं मानता। मैं बूढ़ा हो गया हूं। अर्जुन जैसी शक्ति अब मुझमें नहीं रही। मैं अपने मोर्चे को छोड़कर अर्जुन का पीछा नहीं करूंगा। हां, पर यह बताओ कि तुम क्या कर रहे हो? क्यों नहीं अर्जुन को रोकते! तुम उससे किस बात में कम हो। हम सब के बहुतेरा मना करने पर भी तुम्हीं ने वैर मोल लिया है। डरते किस बात से हो। तुम्हारे हाथों में कोई चूड़ियां तो नहीं हैं?"

दुर्योधन ने कहा, "जिसे आप ही नहीं रोक सके, उसे मैं कैसे रोक लूंगा। अर्जुन का सामना करना मेरे बस से बाहर है।"

दुर्योधन के दैन्ययुक्त वचनों को सुनकर आचार्य द्रोण ने उसे ऐसा कवच बांध दिया, जिसके कारण उसका अंग-प्रत्यंग सुरक्षित हो गया। तब वह भारी सेना लेकर अर्जुन को रोकने चला। उसने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन के अभेद्य कवच के कारण अर्जुन के तीखे बाण उसका बाल भी बांका न कर सके और वह निर्भय होकर अर्जुन और श्रीकृष्ण पर प्रहार करता रहा। अर्जुन को पता चल गया कि यह इस कवच की ही करामात है। तब अर्जुन ने दुर्योधन के चारों घोड़ों और दोनों अंगरक्षकों को मार डाला। फिर उसका धनुष भी काट डाला और रथ भी बेकार कर दिया। दस्ताने को काटने के बाद अर्जुन ने दुर्योधन की हथेलियों और नखों को अपने बाणों से बींध डाला क्योंकि यही स्थान था जो कवच के बाहर था। इन बाणों से घिघकर दुर्योधन व्याकुल होकर रणभूमि से भाग चला। पर अन्य योद्धा अर्जुन को रोकने के लिए आ गए और उसे जयद्रथ की ओर बढ़ने से रोके रखा। जयद्रथ अभी तक अर्जुन से कोस भर दूर था। उनके घेरे को तोड़कर अर्जुन का रथ फिर आगे बढ़ा तो अनेक कौरव महारथी जयद्रथ की सुरक्षा के लिए मार्ग रोके युद्ध के लिए प्रस्तुत खड़े मिले। दोनों पक्षों में बड़ा भयानक युद्ध हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर का रथ इस घोर युद्ध में टूट गया और वह सहदेव के रथ पर चढ़कर वहां से दूर हट गए। आज के युद्ध में वीर घटोत्कच ने भी खूब पराक्रम दिखाया और अलम्बुष को मार गिराया।

कौरव पक्ष के कृतवर्मा ने अपने युद्ध कौशल से पाण्डव सेना को बुरी तरह मार भगाया। पर बाद में अपराजित वीर सात्यकि ने कृतवर्मा को पराजित कर दिया। फिर त्रिगर्तों की गजसेना का संहार करके जलसंध का वध कर डाला। सात्यकि को यों बढ़ता देखकर दुर्योधन और कृतवर्मा इकट्ठे उस पर टूट पड़े पर दोनों को पराजय का मुंह देखना पड़ा। महान् पराक्रमी वीर सात्यकि के बढ़ते रथ को रोकने के लिए आचार्य द्रोण लड़ने आए पर उन्हें भी हार माननी पड़ी। फिर तो कौरव सेना में ऐसी भगदड़ मची कि क्या बताएं! फिर तो सात्यकि के सामने जो भी आया, उसे ही यमलोक का मार्ग देखना पड़ा। उसके हाथों वीरगति पाने वालों में राजा सुदर्शन, कम्बोज और यवन सेना और दुर्योधन की सेना के अनेक वीर थे। दुर्योधन अपने अनेक भाइयों सहित सात्यकि से हार खाकर फिर भाग खड़ा हुआ। पत्थरों से प्रहार करने वाली म्लेच्छ सेना तो भागी ही, दुःशासन भी अपनी सेना सहित भाग खड़ा हुआ। दुःशासन को सिर पर पैर रखकर भागता देखकर द्रोणाचार्य ने खूब फटकार सुनाई।

भागती सेना और टूटते मोर्चे को द्रोणाचार्य ने फिर संभाला। पांचाल सेना को उन्होंने मार भगाया और धृष्टद्युम्न को भागने पर विवश कर दिया।

युधिष्ठिर को बड़ी देर से अर्जुन और सात्यकि का कुछ पता नहीं चल रहा था। इस-

लिए उन्होंने भीमसेन को पता लगाने भेजा। वह कौरव सेना में घुस तो गया पर द्रोणाचार्य से मुठभेड़ हो गई। उसने गदा से उनके सारथि और रथ को चूर-चूर कर डाला। द्रोणाचार्य ने रथ से कूदकर अपनी जान बचाई। फिर तो भीमसेन ने धृतराष्ट्र के ग्यारह वीर पुत्रों का वध कर डाला। जो शेष बचे, वे भाग गए। द्रोणाचार्य दूसरे रथ पर चढ़कर फिर भीमसेन का मार्ग रोकने आ गए। तब भीमसेन ने रथ से उतरकर और आचार्य द्रोण के रथ को दूर तक पीछे पटक दिया। फिर आगे बढ़कर भीमसेन ने जोर से सिंह-गर्जना की। उसके गर्जन को सुनकर और पहचान कर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी सिंहनाद किया। युधिष्ठिर ने भी दूर से यह सिंह गर्जना सुनी तो मन में धीरज आया।

भीमसेन को अर्जुन के पास पहुंचने से रोकने के लिए कर्ण आगे बढ़ा पर बुरी तरह पराजित हुआ। वह बार-बार पराजित होता और फिर आ भिड़ता। यही क्रम कई बार चला। एक बार कर्ण ने भी भीम को पराजित किया किन्तु तभी अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से उसे और अश्वत्थामा को मार भगाया।

सात्यकि अर्जुन के पास पहुंचने का प्रयत्न कर रहा था। यह बात श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताई तो अर्जुन को इस बात की चिन्ता हुई कि धर्मराज युधिष्ठिर कहीं अकेले न रह गये हों और आचार्य द्रोण ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उन्हें पकड़ न लिया हो। इतने में ही कौरव पक्ष के भूरिश्रवा ने सहसा सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने आक्रमण का उत्तर प्रत्याक्रमण द्वारा दिया। दोनों ने एक दूसरे के घोड़े मार गिराए और धनुष भी काट डाले। तब वे तलवारों से लड़ने लगे। श्रीकृष्ण के कहने से वीर अर्जुन सात्यकि की सहायता के लिए आगे बढ़ा। उधर भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर धरती पर दे मारा और सिर के बाल पकड़कर घुमाने लगा। वह तलवार से सात्यकि के सिर को काटना ही चाहता था कि अर्जुन ने अपने छुरे जैसे बाण से भूरिश्रवा की दाहिनी भुजा ही काट डाली। और अवसर पाकर सात्यकि ने भूरिश्रवा का सिर काट डाला।

अब अर्जुन ने फिर अपने वध्य जयद्रथ पर आक्रमण किया। दुर्योधन ने महारथी कर्ण को कहा कि वह अर्जुन को किसी तरह रोके जिससे सूर्यास्त तक वह जयद्रथ तक न पहुंच सके और अपनी ही मौत जलकर मर जाए। हम सब भी तुम्हारी सहायता के लिए दाहिने-बाएं रहेंगे।

कर्ण अब तक के युद्ध में बुरी तरह क्षत-विक्षत हो चुका था, फिर भी उसने दुर्योधन के कहने पर जैसे-तैसे युद्ध में डटे रहने का निश्चय किया। उधर सात्यकि और भीमसेन के सहयोग से अर्जुन कौरव सेना को चीरता हुआ, वीरों का संहार करता हुआ जयद्रथ की ओर बढ़ा जा रहा था। कर्ण ने अपने तीखे बाणों से अर्जुन को आगे बढ़ने से रोक दिया। पर अर्जुन के सामने कर्ण ठहर नहीं सका।

सूर्यदेव पश्चिम में अस्ताचल की ओर बढ़ रहे थे और महावीर अर्जुन बिजली जैसी फुर्ती के साथ शत्रुओं पर अपने वज्र-तुल्य बाणों की वर्षा कर रहा था। जब अर्जुन कौरव सेना की संरचना को तोड़कर जयद्रथ के समीप जा पहुंचा तो कौरव पक्ष में घोर निराशा छा गई। अर्जुन और जयद्रथ में सीधा युद्ध छिड़ गया।

अर्जुन ने जयद्रथ को सामने पाकर एक दिव्य बाण निकाला और उसे वज्रास्त्र से

संयोजित करके धनुष पर रखा। तब श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! अब प्रतीक्षा करने का समय नहीं है। सूर्यास्त होने वाला है। सिन्धुराज जयद्रथ का मस्तक काट डालो पर एक बात का ध्यान रखना होगा। जयद्रथ पिता का इकलौता पुत्र है और बड़ी मनौतियों के बाद जन्मा है। इस के जन्म के समय आकाशवाणी हुई थी, "कि तुम्हारा यह पुत्र उच्च गुणों से सम्पन्न होगा। यह शूरवीर होगा किन्तु किसी वीर शिरोमणि के हाथ से इसका सिर काट लिया जायगा।" इस आकाशवाणी को सुनकर सिन्धुराज वृद्धक्षत्र ने शाप दिया, "जिसके द्वारा मेरे पुत्र का सिर धरती पर गिरेगा, उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे।"

श्रीकृष्ण फिर बोले, राजा वृद्धक्षत्र इस समय तपस्या कर रहा है। इसलिए ऐसी युक्ति करो कि जयद्रथ का कटा सिर इसके पिता की गोद में जा पड़े। अर्जुन ने वह दिव्य बाण छोड़ दिया। उससे जयद्रथ का सिर कटकर आकाश में उड़ चला। फिर तो एक के बाद दूसरा बाण मारते हुए अर्जुन ने उसे जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र की गोद में ले जाकर गिरा दिया। वे सायं संन्ध्या की उपासना कर रहे थे। जब जाप पूरा करके वृद्धक्षत्र उठने लगा तो जयद्रथ का सिर उनकी गोद से धरती पर जा गिरा। फिर तो जयद्रथ के सिर को धरती पर गिराने का निमित्त बनने के कारण अपने ही शाप से वृद्धक्षत्र के सिर के सैंकड़ों टुकड़े हो गए।

अब वासुदेव श्रीकृष्ण ने अपनी माया से सांझ होने का-सा जो आभास पैदा कर दिया था, उसे दूर कर दिया।

विजय की सूचना देने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने शंख बजाए। इस शंख को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर समझ गए कि जयद्रथ मारा गया।

जयद्रथ के मारे जाने पर दुर्योधन बड़ा दुखी और निराश हुआ। उसका युद्ध का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। वह इस पराजय के लिए फिर आचार्य द्रोण को ही उपालंभ देने लगा। द्रोणाचार्य ने भी उसे स्पष्ट बता दिया कि युद्ध में अर्जुन सदा अजेय रहेगा। और अब तो मुझे अपने प्राणों पर भी संकट आया जान पड़ता है। धृष्टद्युम्न मुझे मारकर अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेगा। अरे! भीष्म पितामह जिस युद्ध में धराशायी हो गए, उसमें तुम अपनी विजय का स्वप्न कैसे देख रहे हो? अच्छा खैर, मैं तो अब पांचालों से युद्ध करने जाता हूं। हां, तुम जाकर मेरे पुत्र अश्वत्थामा से कह देना कि वह धर्मपथ के अनुसरण में तत्पर रहकर मेरे उपदेशों का सदा पालन करता रहे। राजन्! मुझे लगता है, आज रात को भी युद्ध नहीं रुकेगा।

क्रोध में भरी हुई कौरव और पाण्डव सेना में फिर घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। दुर्योधन और युधिष्ठिर में जमकर लड़ाई हुई और दुर्योधन हार गया। रात हो चली थी पर आज युद्ध बन्द नहीं हुआ था। युधिष्ठिर, अर्जुन और अजेय सात्यकि ने मिलकर आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया। दूसरे पाण्डव वीर भी आचार्य द्रोण पर ही टूट पड़े। पर आचार्य द्रोण के सामने कोई भी ठहर नहीं सका। पश्चात् प्रतापी राजा शिबि आचार्य द्रोण का सामना करने के लिए उनसे युद्ध करने लगे। वह भी आचार्य द्रोण के हाथों वीरगति को प्राप्त हुए। इसी समय कलिंग राजकुमार ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीम ने उसे मुक्कों से ही चूर-चूर कर डाला। भीम ने जयराज तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मद का भी वध कर डाला।

भूरिश्रवा के पिता सोमदत्त ने पुत्र की मृत्यु का बदला लेने के लिए सात्यकि पर आक्रमण कर दिया पर उसे पराजित होना पड़ा। दूसरी ओर अश्वत्थामा और घटोत्कच में युद्ध छिड़ा हुआ था। अश्वत्थामा ने घटोत्कच के पुत्र को मार कर उसकी सेना का भी खूब संहार किया। फिर अश्वत्थामा ने द्रुपद के पुत्रों से युद्ध प्रारंभ किया और अनेकों को मार डाला। उधर पुत्र की मृत्यु से क्रुद्ध घटोत्कच ने राक्षसी माया से अश्वत्थामा से भयंकर युद्ध किया। इस रात्रि युद्ध में अश्वत्थामा ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय दिया। पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। आज युद्ध रुकने के लक्षण दिखाई नहीं देते थे। भीम ने आज कई धृतराष्ट्र पुत्रों को मार डाला। भीम और अर्जुन के सहयोग से धर्मराज युधिष्ठिर ने आज द्रोणाचार्य पर आक्रमण करके कौरव सेना को तितर-बितर कर दिया।

कौरव हारते तो एक-दूसरे पर दोषारोपण करने लगते। और युद्ध में पराजित होने पर भी डींगें मारने में जरा भी लज्जा का अनुभव नहीं करते। आज दुर्योधन के उकसाने पर जब कर्ण लम्बी-चौड़ी हांकने लगा तो कृपाचार्य ने उसे बुरी तरह फटकार दिया। इस पर कर्ण ने कृपाचार्य को खरी-खोटी सुनाई। कर्ण द्वारा अपने मामा कृपाचार्य का अपमान होता देखकर अश्वत्थामा कर्ण को मारने के लिए तैयार हो गया। दुर्योधन ने बड़ी कठिनाई से उसे शान्त किया।

इसी समय पाण्डवों और पांचालों की सेना ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया। अत्यन्त पराक्रम दिखाने पर भी कर्ण अर्जुन के सामने टिक न सका। तब दुर्योधन ने अश्वत्थामा से पांचाल सेना को मार भगाने का अनुरोध किया। अश्वत्थामा ने दुर्योधन के शंकालु स्वभाव की निन्दा करते हुए युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसने धृष्टद्युम्न के सारथि और रथ को नष्ट कर दिया और उसकी सेना को मार भगाया। युद्ध की स्थिति बदलते देखकर युधिष्ठिर तथा भीमसेन ने अश्वत्थामा को चारों ओर से घेर लिया। उधर दुर्योधन अश्वत्थामा की सहायता के लिए दौड़ा चला आया और भयंकर युद्ध होने लगा। अर्जुन के रण-कौशल से कौरव सेना भाग खड़ी हुई। भूरिश्रवा की मृत्यु से उसके पिता सोमदत्त तथा सात्यकि में वैर ठन गया था। आज के रात्रि-युद्ध में सात्यकि ने सोमदत्त का वध कर डाला। दूसरी ओर आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को पकड़कर कैद करने की प्रतिज्ञा को पूरा करने का प्रयत्न कर रहे थे। वे बार-बार युधिष्ठिर पर आक्रमण करते पर सफलता नहीं मिलती थी। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सलाह दी कि आप युद्ध में द्रोणाचार्य से दूर ही रहें।

रात के अन्धेरे में अपने-पराए की पहचान करना कठिन था, इसलिए दोनों पक्षों ने मशालें जला लीं। कभी एक पक्ष की हार होती और कभी दूसरे की। युद्ध-भूमि वीरों की लाशों से पटी पड़ी थी। कर्ण ने धृष्टद्युम्न के नेतृत्व में लड़ रही पांचाल सेना को पराजित कर दिया तो युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। आज कर्ण का पराक्रम असहनीय था। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने के लिए उत्साहित किया। घटोत्कच सीधा कर्ण पर झपटा तो दुर्योधन को चिन्ता हुई। उसने दुःशासन को कर्ण की सहायता के लिए भेजा। इसी समय जटासुर का पुत्र अलम्बुष नामक राक्षस कौरवों की ओर से घटोत्कच से लड़ने आया। पर घटोत्कच ने उसे शीघ्र ही यमलोक पहुंचा दिया। फिर तो कर्ण और घटोत्कच में रोंगटे खड़े कर देने वाला युद्ध होने लगा। बकासुर का सम्बन्धी अलायुद्ध पुराने वैर का स्मरण करके

भीमसेन से लड़ने आ गया। बकासुर को भीमसेन ने मार डाला था। दोनों में घोर युद्ध हुआ पर कोई भी पराजित नहीं हुआ। तब घटोत्कच ने अलायुद्ध को मार डाला। अब फिर कर्ण और घटोत्कच में प्रलयंकर युद्ध होने लगा। घटोत्कच निर्भय होकर युद्ध कर रहा था पर उस के सैनिक कर्ण के सामने ठहर नहीं पा रहे थे। घटोत्कच राक्षसी माया के साथ युद्ध में कौरव सेना को छिन्न-भिन्न कर रहा था। दुर्योधन को लग रहा था कि यह घटोत्कच अकेला ही सारे कौरव वीरों को मार डालेगा। दुर्योधन के कहने से कर्ण ने इन्द्र द्वारा दी हुई, वैजयन्ती नामक शक्ति का प्रयोग करने का निश्चय किया। यह शक्ति कर्ण ने अर्जुन पर प्रयोग करने के लिए संभालकर रख छोड़ी थी। पर आज घटोत्कच ने अपने पराक्रम से इस शक्ति का प्रयोग करने के लिए कर्ण को विवश कर दिया। इस अमोघ शक्ति को देखकर घटोत्कच ने अपने शरीर को पर्वताकार फैला लिया। इस शक्ति के लगने से आकाशचारी घटोत्कच प्राण शून्य होकर धरती पर गिरा। उसके गिरने से एक अक्षौहिणी कौरव सेना तो उसके नीचे दब कर मर गई। घटोत्कच के मरने से कौरवों में हर्ष और पाण्डवों में विषाद की लहर दौड़ गई। परन्तु श्रीकृष्ण प्रसन्न थे। इसका कारण यह था कि इन्द्र द्वारा दी गई अमोघ शक्ति अब कर्ण के पास नहीं रह गई थी। यदि कर्ण इस शक्ति का प्रयोग अर्जुन पर कर देता तो अर्जुन को कोई नहीं बचा सकता था।

अब युद्ध नहीं रुका। पांचाल सेना ने मोर्चाबन्दी करके फिर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। उधर युधिष्ठिर घटोत्कच की मृत्यु से बड़े दुखी थे और इसका बदला कर्ण से लेना चाहते थे। पर व्यास जी के समझाने से उनका शोक दूर हुआ।

प्रातःकाल से अब तक के युद्ध में सैनिक बुरी तरह थक चुके थे। उनसे लड़ते नहीं बनता था। कुछ तो रणभूमि में ही सो गए थे। कुछ रथों, हाथियों और घोड़ों पर सो गए थे।

अर्जुन ने अपनी सेना को युद्ध बन्द करके दो घड़ी सो लेने का आदेश दिया। पाण्डव सेना की देखादेखी कौरव सेना ने भी युद्धबन्दी की घोषणा कर दी। सभी सैनिक सो गए।

पन्द्रहवां दिन

सूर्योदय से पूर्व ही दोनों ओर की सेनाएं जाग पड़ीं और फिर रणक्षेत्र में आ गईं। दुर्योधन की बुद्धि तो पहले से ही भ्रष्ट थी। उसके बुरे दिन आए हुए थे। वह बार-बार आचार्य द्रोण को ताने देता। वह आचार्य के पास जाकर बोला, "हमने सोते हुए शत्रुओं पर केवल इसलिए प्रहार नहीं किया कि आप बुरा मान जाएंगे। पाण्डव जो हमारी सेना को रौंद रहे हैं, इसका कारण तो यही है कि आप उन्हें बचाकर लड़ रहे हैं।"

आचार्य द्रोण ने शपथ खाकर कहा, "मैं जब तक पांचालों का संहार नहीं कर लूंगा, कवच नहीं उतारूंगा। तुम्हारे लिए मुझे युद्ध में निन्दित उपाय भी करने पड़ेंगे। हां, पर एक बात याद रखो, अर्जुन अजेय है। उसे कोई नहीं जीत सकता, कोई भी नहीं, देवता भी नहीं।"

अर्जुन की प्रशंसा सुनकर दुर्योधन जल उठा। बोला, "हां, मैं सब जानता हूं। अर्जुन का तो आप बाल भी बांका नहीं करना चाहते। आज आप चुपचाप एक ओर खड़े रह कर तमाशा देखिए। मैं दुःशासन, कर्ण और मामा शकुनि की सहायता से आज अर्जुन को मारकर

ही दम लूंगा।"

द्रोण बोले, "दुर्योधन ! तुम तो मूर्खों की तरह गाल बजाना जानते हो। कितनी बार तुमने अर्जुन से मुंह की खाई है, फिर भी डींगें मारते हो। तुम ऐसे ही शूरवीर हो तो अब तक क्या सोच रहे थे। व्यर्थ में इतनी सेना को लड़ाने से क्या लाभ ! जाओ और अर्जुन को मार डालो। उस मामा को भी साथ ले लो और दुःशासन तथा कर्ण को भी। अर्जुन के मरते ही तुम विजयी हो जाओगे। समझे, तुम लोगों ने जूए में छल करके एक बार पहले भी इन्हें जीता था, अब भी जीत लोगे। वह देखो, अर्जुन सामने खड़ा है। डरो मत। अरे ! इसके हाथ से तो मरना भी यश की बात है। गाल बजाना छोड़ो और कुछ करके दिखाओ तो जानूं की क्षत्रिय के पुत्र हो।"

पाण्डव वीरों ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण करके युद्ध का आरंभ किया। द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद और विराट् को अपने तीखे बाणों से मार डाला। तब भीमसेन और धृष्टद्युम्न आगे बढ़े और द्रोण के आक्रमण को विफल कर दिया। दूसरी ओर नकुल और दुर्योधन में युद्ध हो रहा था। दुर्योधन नकुल के सामने ठहर नहीं सका और पीठ दिखाते हुए भाग खड़ा हुआ। दुःशासन और सहदेव में, कर्ण और भीमसेन में, द्रोणाचार्य और अर्जुन में भी भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ था।

युद्ध की स्थिति प्रति क्षण बदलती रहती थी। धृष्टद्युम्न ने दुःशासन को हरा कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया था और नकुल तथा सहदेव उसकी सहायता कर रहे थे। पांचालों ने भी उन्हीं पर आक्रमण किया था। आचार्य द्रोण बुरी तरह घिर गए थे। पाण्डव पक्ष अपनी सारी शक्ति आचार्य द्रोण को घेरकर मार डालने में लगा रहा था। पर इतने सारे पाण्डव वीर मिलकर भी आचार्य द्रोण को युद्ध-विमुख नहीं कर पा रहे थे। इसके विपरीत द्रोण की बाण-वर्षा से पाण्डव-पांचाल सेना में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। द्रोण के रहते पाण्डवों को अपनी विजय की आशा क्षीण होती लग रही थी।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ! जब तक द्रोणाचार्य के हाथ में शस्त्र है, इन्हें कोई हरा नहीं सकता। कोई ऐसा उपाय करो कि ये शस्त्र त्याग दें नहीं तो ये तुम लोगों को मार कर ही दम लेंगे। ये तुम्हारे गुरु हैं, इन्हें नहीं मारना चाहिए, इस तरह की बातों को अब छोड़ो। मुझे पूरा विश्वास है कि अपने एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा के मारे जाने पर ये शस्त्रों को त्याग देंगे। अब कोई उनसे जाकर कहे कि 'अश्वत्थामा मर गया', तब बात बने। अर्जुन पहले तो इस छल के लिए सहमत नहीं हुआ। युधिष्ठिर को भी कठिनाई से मनाया गया।

भीमसेन ने अपने ही पक्ष के मालवा के राजा इन्द्रवर्मा के हाथी को अपनी गदा से मार डाला। इस हाथी का नाम था, अश्वत्थामा। फिर भीमसेन आचार्य द्रोण के पास गए और जोर से चिल्लाकर कहा, "अश्वत्थामा मारा गया।"

यह सुनते ही आचार्य द्रोण अत्यन्त व्याकुल हो उठे। फिर उन्होंने सोचा कि कहीं यह बात झूठ ही न हो। वे जानते थे कि अश्वत्थामा को मारना सरल काम नहीं था। उन्होंने मन में धैर्य रखकर धृष्टद्युम्न पर आक्रमण कर दिया। वे आग की तरह पाण्डव सेना को शस्त्रास्त्र और दूसरे दिव्यास्त्रों से नष्ट करने लगे। तब अनेक ऋषि-मुनि वहां आ उपस्थित हुए और द्रोणाचार्य को सम्बोधित करके बोले, "द्रोण ! तुम अधर्म युद्ध कर रहे हो। अब

तुम्हारी मृत्यु दूर नहीं है। तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारे लिए यह क्रूर कर्म उचित नहीं है। तुमने उन लोगों पर ब्रह्मास्त्र को प्रयोग किया है, जो उसे नहीं जानते। तुम अपने शस्त्रास्त्रों को त्याग कर शान्त हो जाओ।"

द्रोण ने पूज्य ऋषियों का आदेश सुना, भीमसेन से अश्वत्थामा के मरने की बात वे पहले सुन ही चुके थे, उनका कालस्वरूप धृष्टद्युम्न भी उनके सामने ही था। आचार्य द्रोण निरुत्साहित और उदास हो गए। पुत्र की मृत्यु के बारे में उन्होंने अपने सन्देह को दूर करने के लिए सत्यवादी युधिष्ठिर से पूछा। उन्हें विश्वास था कि युधिष्ठिर कदापि झूठ नहीं बोलेगा।

श्रीकृष्ण ने अवसर देखकर युधिष्ठिर से कहा, "इस समय झूठ बोलने का फल सच बोलने से भी बढ़कर है, इसलिए निःसंकोच कह डालिए।" उधर भीमसेन ने बताया कि मैंने इस नाम के हाथी को मार डाला है और मैंने अश्वत्थामा के मरने की बात आचार्य से कही भी थी। पर उन्हें मेरी बात का विश्वास नहीं है। इसलिए ये भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ कह रहे हैं, वैसा करने में सोच-विचार मत कीजिए।

युधिष्ठिर ने जोर से कहा, "अश्वत्थामा मारा गया।" फिर धीरे से बोले, "वह हाथी था।"

यह झूठ बोलने से पहले युधिष्ठिर का रथ धरती से चार अंगुल ऊपर रहता था किन्तु ज्योंही उन्होंने झूठ बोला, रथ धरती पर जा टिका।

युधिष्ठिर की बात पर विश्वास करके द्रोणाचार्य अपने जीवन से निराश हो गए। पुत्र शोक से विह्वल वे अचेत से होने लगे। इसी अवसर पर द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। धृष्टद्युम्न ने एक विशेष बाण को धनुष पर रखा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से तपस्या करके धृष्टद्युम्न पुत्र को प्राप्त किया था। आचार्य द्रोण भी जानते थे कि धृष्टद्युम्न के हाथों मेरी मृत्यु होगी। उस तेजस्वी बाण को देखकर आचार्य ने समझ लिया कि मेरा अन्त समय आ गया है। आचार्य द्रोण ने प्रतिकार के लिए दिव्य अस्त्रों का आवाहन किया पर कोई अस्त्र प्रकट नहीं हुआ। वे समझ गए कि अब शस्त्रास्त्र उठाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। वे शस्त्रास्त्रों को छोड़ देने के लिए तैयार होने लगे। पर दूसरे ही क्षण वे धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। दोनों महारथी एक-दूसरे पर बढ़-चढ़कर प्रहार करने लगे।

धृष्टद्युम्न आचार्य द्रोण पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना चाहता था। उसने अपने रथ के घोड़ों को आचार्य द्रोण के घोड़ों के सामने सटाकर खड़ा कर दिया। द्रोण ने उसके रथ को ही बेकार कर दिया। तब धृष्टद्युम्न ने गदा लेकर युद्ध करना चाहा पर द्रोण ने उसकी गदा ही नष्ट कर डाली। तब वह ढाल और तलवार लेकर युद्ध करने लगा। इसी समय वीर सात्यकि वहाँ आ पहुँचा। उसने धृष्टद्युम्न की सहायता की। युद्ध में एकदम तेजी आ गई। मारधाड़ के शोर से रणक्षेत्र गूंज उठा। पाण्डव पक्ष ने फिर से आचार्य द्रोण पर सब ओर से आक्रमण कर दिया। पर आचार्य द्रोण सबका प्रतिकार करने लगे। द्रोणाचार्य रणक्षेत्र में आगे बढ़ते गए। इसी समय सूर्यमण्डल से एक पतंगा-सा निकलकर धरती पर आ गिरा और द्रोणाचार्य के शस्त्रास्त्र जलने लगे। उनके रथ से बड़े जोर की आवाज उठने लगी और घोड़े

आँसू बहाने लगे। पर आचार्य द्रोण ने युद्ध जारी रखा। इतने में भीमसेन वहां आ गए और उन्होंने धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर बिठा लिया। भीमसेन ने द्रोणाचार्य को ब्राह्मण धर्म का परित्याग करके, जीविका के लिए क्षत्रियों का संहार करने के लिए कोसा। उसने कहा, "आप का एकमात्र पुत्र मरा पड़ा है और जिनके लिए आप लड़ रहे हैं, उन्होंने आपको इसकी सूचना तक नहीं दी। विप्रवर! आपको महात्मा युधिष्ठिर के कहने पर विश्वास नहीं हुआ!"

भीमसेन की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने अपना धनुष फेंक दिया। उन्होंने दुर्योधन को पुकार कर कहा, "मैं शस्त्रास्त्रों को त्याग रहा हूं। अब तुम स्वयं ही पाण्डवों पर विजय के लिए यत्न करो।" फिर अश्वत्थामा को पुकारते हुए वे रथ के पिछले भाग में जा बैठे और समाधि लगा ली। ओ३म् का उच्चारण करते हुए उन्होंने परमेश्वर का ध्यान किया।

इसी समय धृष्टद्युम्न ने तलवार हाथ में लेकर उन पर प्रहार करने की तैयारी की। वह उनके रथ पर जा चढ़ा और सिर के बाल पकड़ कर तलवार से उनके सिर को धड़ से अलग कर दिया। आचार्य द्रोण तो पहले ही योग-समाधि द्वारा प्राण त्याग कर परब्रह्म में लीन हो चुके थे।

धृष्टद्युम्न ने जिस अवस्था में आचार्य द्रोण का सिर काटा था, वीरों ने उसकी प्रशंसा नहीं की। अर्जुन कहता ही रहा कि इन्हें जीवित ही पकड़ लाओ, मारो मत।

द्रोण के कटे सिर को देखकर कौरव सेना भाग खड़ी हुई। आचार्य द्रोण का मृत शरीर बहुत खोजने पर भी कौरवों को नहीं मिला। पाण्डव सेना शंख बजाकर और सिंहनाद कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगी। भीमसेन और धृष्टद्युम्न तो एक-दूसरे की बाहों में बाहें डालकर नाचने लगे। भीमसेन ने कहा, "जब कर्ण और दुर्योधन मारे जायेंगे तो हम दोबारा इसी तरह नाचेंगे।"

कौरव सेना में बुरी तरह भगदड़ मच गई। दुर्योधन भी भाग खड़ा हुआ। जिस किसी को भी कौरव पक्ष के वीर आचार्य द्रोण की मृत्यु का समाचार मिला, वही युद्ध से भागने लगा।

"हाय! बड़े खेद की बात है, आचार्य द्रोण मारे गए।" यह कहते हुए कृपाचार्य भी युद्धभूमि से खिसक गए। कृतवर्मा भी भाग निकले। दुःशासन और दुर्योधन भी भाग खड़े हुए। सैनिक एक-दूसरे को जल्दी से जल्दी भाग चलने के लिए कहने लगे। कुछ दूसरों को तो 'ठहरो-ठहरो' कहते और स्वयं भागते रहते। कुछ सारथि रहित रथों से घोड़ों को खोल कर और उनकी नंगी पीठों पर बैठकर उन्हें एड़ियों के आघात से भगाने लगे। बस, केवल मात्र अश्वत्थामा था, जो भागती सेना के विशाल प्रवाह से उल्टी दिशा की ओर जा रहा था। उसे अभी तक अपने पिता की मृत्यु का पता नहीं था। समस्त कौरव सैन्य को भागते देखकर चकित हो दुर्योधन से पूछने लगा कि बात क्या है? दुर्योधन की आंखें भर आईं। वह कुछ भी नहीं कह सका। उसने कृपाचार्य को कहा कि वे अश्वत्थामा को सेना के भागने का कारण बताएं।

कृपाचार्य ने अपने भानजे अश्वत्थामा को उसके पिता और अपने बहनोई की मृत्यु का समाचार सुनाया। उन्होंने बताया कि पाण्डवों ने झूठ-मूठ तुम्हारे मरने का समाचार फैला दिया जिससे आचार्य का युद्धोत्साह मन्द पड़ गया और इस अवसर का लाभ उठाकर धृष्ट-द्युम्न ने उनका सिर काट डाला।

अपने पिता को छला गया जानकर अश्वत्थामा का पितृशोक कई गुना भड़क उठा। क्रोध से उसकी आंखें लाल हो गईं और वह विषधर की तरह लम्बी-लम्बी सांसें खींचने लगा। उसने दुर्योधन से कहा, "मैं समस्त पांचाल सैन्य को नष्ट करके ही चैन लूंगा। मेरे पिता का अधर्मपूर्वक वध करने वाले धृष्टद्युम्न को पाप का परिणाम भोगना पड़ेगा। मैं नारायण अस्त्र को प्रकट करके इन्हें नष्ट कर डालूंगा।"

अश्वत्थामा के इस प्रकार कहने पर भागती हुई कौरवसेना रुक गई। वह सिंहनाद कर के लड़ने को तैयार हो गई। कौरव सेना के सिंहनाद को सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से इसका कारण पूछा तो अर्जुन ने बताया कि पिता के वध से कुपित अश्वत्थामा ने बदला लेने का निश्चय किया है। हमने जो अपनी आंखों के सामने गुरु का वध होने दिया, इस पाप का फल भोगना पड़ेगा। पर भीमसेन ने अर्जुन की बात का विरोध किया। धृष्टद्युम्न ने भी द्रोणाचार्य का वध करने को उचित बताया। इस बात पर वीर सात्यकि और धृष्टद्युम्न में कहा-सुनी हो गई। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने समझा-बुझाकर दोनों को शान्त किया।

उधर कौरव पक्ष के अश्वत्थामा ने नारायण अस्त्र का प्रयोग किया। नारायण अस्त्र द्वारा चमकते तीखे मुंह वाले हजारों बाण, लोहे के जलते गोले, चक्र और अन्य अनेक प्रकार के आयुध प्रकट हुए और पाण्डव सेना पर बरसने लगे। जंगल की आग की तरह वह अस्त्र पाण्डव सेना का नाश करने लगे।

अपनी सेना को इस प्रकार शीघ्रता से नष्ट होता देखकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न हुए। उन्होंने देखा कि पाण्डव सेना भाग रही है और अर्जुन तटस्थ भाव से खड़ा है तो धृष्टद्युम्न को अपनी सेना सहित रणस्थल से भाग जाने की सलाह दी। अपनी सेना की इस दशा को देखकर भगवान कृष्ण ने सेनाओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "योद्धाओ! अपने अस्त्र-शस्त्र एकदम नीचे रख दो और सवारियों से उतर जाओ। ऐसा करने पर नारायण अस्त्र का तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

श्रीकृष्ण की हथियार डालने की बात भीमसेन को बुरी लगी। उसने इसे वीरों के लिए अपमान-जनक समझा। उसने अर्जुन को भी हथियार डालने से रोका पर अर्जुन ने नारायण अस्त्र के आगे हथियार रख देना ही उचित समझा। तब अकेला भीमसेन हथियार बिना डाले अश्वत्थामा का सामना करने चला। भीम के सामना करने से नारायण अस्त्र का प्रभाव और भी बढ़ने लगा और उसने भीमसेन के माथे पर प्रहार किया। जब श्रीकृष्ण को भीमसेन पर आई विपत्ति का पता लगा तो उन्होंने उसे बलपूर्वक रथ से उतारा और शस्त्रास्त्र रखवा दिए। तब नारायण अस्त्र अपने आप शान्त हो गया।

अब अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्न में भयंकर युद्ध छिड़ गया। नारायण अस्त्र शान्त हो चुका था और दोबारा उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता था। अश्वत्थामा युद्धविद्या में अपने पिता द्रोणाचार्य के समान ही कुशल था। धृष्टद्युम्न उसके सामने नहीं ठहर सका। उधर अजेय वीर सात्यकि ने अकेले ही दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण आदि को युद्धस्थल से भागने पर विवश कर दिया। पर अश्वत्थामा आज अद्भुत पराक्रम दिखा रहा था। उसने मालव, पौरव और चेदि देश के युवराजों का वध कर डाला। अश्वत्थामा का सामना करने के लिए फिर भीमसेन आगे बढ़ा। अश्वत्थामा ने भीमसेन के घोड़ों और सारथि को घायल कर दिया।

सारथि के हाथ से घोड़ों की बागडोर छूट गई और घोड़े भाग खड़े हुए। पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। तब अर्जुन ने भागती सेना को रोकने का प्रयत्न किया। जितने सैनिक रुके, उनकी सहायता से अर्जुन ने अश्वत्थामा को रोककर ललकारा। अर्जुन की ललकार से क्रुद्ध अश्वत्थामा ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग कर डाला। फिर तो पाण्डव सैन्य में सब ओर आग फैल गई। सब त्राहि-त्राहि करने लगे। आग्नेय अस्त्र की काट के लिए अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। यह अस्त्र दूसरे सारे अस्त्रों की काट करने वाला था। उसने आग्नेय अस्त्र के प्रभाव को नष्ट कर डाला। सब ओर शान्ति हो गई। कृष्णार्जुन पर आग्नेय अस्त्र का रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ा था। कौरवों ने तो समझ लिया था कि आग्नेय अस्त्र से कृष्णार्जुन भी जल गए होंगे। पर अब उन्हें जीवित और स्वस्थ देखकर वे चकित रह गए। आग्नेय अस्त्र से पाण्डवों की पूरी एक अक्षौहिणी सेना जलकर नष्ट हो गई। आग्नेय अस्त्र छोड़ने पर भी अर्जुन के जीवित बच जाने से अश्वत्थामा इतना हताश हुआ कि धनुष-बाण फेंककर रणभूमि से चला गया।

सांझ हो चली थी। दोनों ओर की सेनाएं अपने-अपने शिविरों में लौट गईं।

कर्ण पर्व

सोलहवां दिन

द्रोणाचार्य की मृत्यु से दुर्योधनादि का मन व्याकुल था। सभी प्रमुख वीर अश्वत्थामा के पास जाकर उसे सान्त्वना देने लगे। रणनीति पर विचार होने लगा। अश्वत्थामा ने सेनापति के लिए कर्ण का नाम प्रस्तुत किया जिसे सभी ने स्वीकार कर लिया। दुर्योधन ने कर्ण से कहा, "भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण का पाण्डवों के प्रति स्नेह भाव था। इसलिए वे उन्हें बचाते रहे। हे कर्ण ! मैंने तुम्हारे ही सुझाव पर उन्हें सेनापति बनाया था। तुम न तो पाण्डवों के प्रति स्नेहशील हो और न ही बल-पौरुष में कम। वे दोनों बूढ़े भी थे। तुम तो अभी युवा हो। अब मेरी सारी आशा तुम पर ही केन्द्रित है। पाण्डवों को जिस अर्जुन पर बड़ा भरोसा है, वह कभी भी तुम्हारे सामने नहीं टिक सका।"

कर्ण ने सेनापति बनना स्वीकार कर लिया और विश्वास दिलाया कि वह श्रीकृष्ण सहित सारे पाण्डवों को पराजित कर देगा।

प्रातःकाल होने पर कर्ण के सेनापतित्व में कौरव सेना ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। पाण्डव सेना भी सामने आ खड़ी हुई। कौरव सेना ने मकर व्यूह की रचना की और पाण्डव सेना ने अर्ध चन्द्राकार व्यूह की। दोनों ओर की सेनाएं बड़े उत्साह से लड़ रही थीं। कौरवों के व्यूह के द्वार पर कर्ण खड़ा था। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। भीमसेन ने क्षेमधूर्ति को, सात्यकि ने विन्द और अनुविन्द को, द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्य ने चित्रसेन और चित्र को मार डाला। कौरव सेना में भगदड़ मच गई और अश्वत्थामा ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। अश्वत्थामा और भीमसेन दोनों ही लड़ते-लड़ते मूछित हो गए। अर्जुन संसप्तक वीरों की सेना से युद्ध कर रहा था। बाद में अश्वत्थामा स्वस्थ होकर लौट आया और अर्जुन से युद्ध करने लगा। यद्यपि दोनों ही वीर रण-कौशल में विख्यात थे, फिर भी अर्जुन के सामने अश्वत्थामा नहीं ठहर सका। अर्जुन ने संसप्तक सेना को भारी क्षति पहुंचाई। पाण्डव पक्ष के वीर पाण्ड्य नरेश ने भी कौरव सेना को रौंदना प्रारम्भ किया। पर अश्वत्थामा ने पाण्ड्य नरेश का वध कर डाला। फिर तो कौरवों की गज-सेना ने पाण्डव सेना पर बड़ा भयंकर आक्रमण कर दिया और उन्हें रौंदने लगी। पाण्डवों ने भी पुण्ड्र, बंगराज तथा अंगराज का वध कर डाला और गज-सेना को मार भगाया। सहदेव ने दुःशासन को और कर्ण ने नकुल

को पराजित कर दिया। आज के युद्ध में शकुनि ने भी पाण्डव सेना को भारी क्षति पहुंचाई। कृपाचार्य ने धृष्टद्युम्न को घायल कर डाला और कृतवर्मा के साथ लड़ता हुआ शिखण्डी भी हार गया। हां, अर्जुन ने श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियों का वध करके संसप्तक सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। युधिष्ठिर और दुर्योधन में भी बड़े जोर की ठनी हुई थी, जिसमें दुर्योधन को हार खानी पड़ी। अपराजित वीर सात्यकि और कर्ण एक-दूसरे पर आक्रमण-प्रत्याक्रमण कर रहे थे। सैनिक प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। अर्जुन के तीखे बाणों की मार से कौरव सेना में हा-हाकार मचा हुआ था।

सूर्य पश्चिम में अस्त हो गया। दोनों पक्षों की सेनाएं अपने-अपने शिविरों को लौट चलीं।

रात को कौरवों ने युद्ध-मंत्रणा की। कर्ण ने दुर्योधन से कहा, "मैं रण-विद्या में यद्यपि अर्जुन से बढ़ा-चढ़ा हूं, पर श्रीकृष्ण जैसा सारथि मेरे पास नहीं है। यदि राजा शल्य मेरा सारथि बनना स्वीकार कर लें तो राजन्! तुम्हारी विजय निश्चित है।"

दुर्योधन ने शल्य के पास जाकर कर्ण का सारथि बनने के लिए प्रार्थना की। शल्य ने इसे अपने लिए अपमानजनक बात माना। शल्य ने कहा, "मैं कर्ण को अपने से श्रेष्ठ योद्धा नहीं मानता। सूतपुत्र का सारथि बनने के लिए तुमने मेरा अपमान किया है। मैं अब युद्ध ही नहीं करूंगा। मैं अपने राज्य को लौट जाऊंगा।"

दुर्योधन ने उत्तर दिया, "मैंने आपका अपमान नहीं, सम्मान किया है। मैं आपको कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ मानता हूं।"

अपने को श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ होने का गौरव मिलने से शल्य प्रसन्न हो गया। उसने कहा, "मुझे कर्ण का सारथि बनना एक शर्त के साथ स्वीकार है। मैं उसके साथ जैसी चाहूं, वैसी बातें कर सकता हूं।" कर्ण ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

सत्रहवां दिन

सूर्योदय होते ही दोनों पक्षों की सेनाएं रण-वाद्य बजाती हुई युद्ध-स्थल को चल पड़ीं और मोर्चे संभाल लिए। आज कर्ण के रथ की बागडोर शल्य के हाथ में थी। दुर्योधन ने कर्ण की प्रशंसा करते हुए, युद्ध प्रारंभ करने की घोषणा की। कर्ण ने शल्य से कहा, "मेरे रथ को अर्जुन और भीमसेन के पास ले चलो। आज मैं पांचों पाण्डवों को यमलोक पहुंचाकर ही दम लूंगा।"

शल्य ने कहा, "सूतपुत्र! तुम पाण्डवों को क्या समझते हो जो इस तरह मार डालोगे। तुम कैसी बात करते हो! जब उनका युद्ध पराक्रम देखोगे तब तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें नहीं निकलेंगी, समझे।"

कर्ण ने इस अप्रिय बात को सुनकर कहा, "चलिए, चलिए देरी हो रही है।"

कौरव पक्ष के वीरों ने अपने नये सेनापति का जयकार किया। अहंकार में भरे हुए कर्ण ने शल्य से कहा, "मेरे हाथ में शस्त्रास्त्र रहने पर मैं इन्द्र की भी परवाह नहीं करता हूं, पाण्डव तो चीज ही क्या हैं? उसने आत्म-प्रशंसा की और भी बहुत-सी बातें शल्य से कहीं।

शल्य ने कर्ण को टोकते हुए कहा, "बस-बस, ज्यादा बातें मत बनाओ। अर्जुन की वीरता के कारनामों से हम खूब परिचित हैं। घोष यात्रा में गन्धर्वों से दुर्योधन को तुम क्यों न छुड़ा लाए थे ? विराट् नगर में गोहरण के समय जब सारे कौरव महारथियों को खदेड़ दिया था, तब तुम्हारा बल-पराक्रम कहाँ चला गया था ? मुझे तो लगता है कि यदि आज तुम युद्ध से भाग न खड़े हुए तो अर्जुन तुम्हें जीता नहीं छोड़ेगा।"

शल्य से अपने घोर शत्रु की प्रशंसा सुनकर कर्ण जल-भुन गया। वह बोला, "आज तुम्हारी आंखों के सामने ही इस बात का निर्णय हो जाएगा कि किस में कितना दम है। तुम्हारा अर्जुन की प्रशंसा करना व्यर्थ है।" फिर कर्ण ने शल्य को रथ आगे बढ़ाने को कहा और पाण्डव सेना के पास पहुंचकर पूछा कि अर्जुन किस मोर्चे पर है ? कर्ण ने अर्जुन का पता बताने वाले पाण्डव सैनिक को बहुत-सा पुरस्कार देने की भी घोषणा की। तब शल्य ने कहा, "कर्ण ! तुम व्यर्थ ही धन लुटा रहे हो। अर्जुन को तुम्हें ढूंढ़ना नहीं पड़ेगा, वह स्वयं तुम्हें ढूंढ रहा होगा। तुम जो श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने की बात सोच रहे हो, यह तो वैसे ही असंभव है, जैसे गीदड़ द्वारा सिंहों का मारा जाना। लगता है, मौत तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है और तुम आग में कूदने के लिए तैयार हो रहे हो। काश ! तुम्हारा कोई सच्चा मित्र होता और तुम्हें इस आत्मघाती काम से रोकता ! अभी तुम जिस अर्जुन को खोजते फिर रहे हो, उससे सामना होने पर अपनी इस मूर्खता के लिए पछताओगे।"

शल्य के बार-बार कर्ण को फटकारने और अनुत्साहित करने से कर्ण का क्रोध भड़क उठा। कर्ण ने उसको खूब कड़वी-तीखी बातें सुनाईं और मार डालने की धमकी भी दी। उसने शल्य को चुप रहने का आदेश देते हुए कहा, "सुनने वाले सुनेंगे और देखने वाले देखेंगे कि आज अर्जुन कर्ण को मारता है या कर्ण अर्जुन और श्रीकृष्ण को।"

तब शल्य ने फिर कहा, "ओ कौरवों की जूठन खाकर पले हुए कर्ण ! तुम वासुदेव श्रीकृष्ण और अर्जुन को अपने से हीन समझकर अपनी नीचता का ही परिचय दे रहे हो।"

दुर्योधन ने दोनों के विवाद को समझा-बुझाकर समाप्त किया। अब रथ फिर आगे बढ़ा। कौरव सेना की व्यूह रचना पर युधिष्ठिर के कहने से अर्जुन ने आक्रमण कर दिया। कौरव सेना तो पहले से ही तैयार खड़ी थी। दोनों पक्षों में अत्यन्त घोर संग्राम छिड़ गया। कर्ण ने कितने ही पाण्डव पक्ष के वीरों को मार गिराया। अनगिनत सैनिक, अश्वारोही, गजारोही और रथारोही मार डाले। भीमसेन ने कर्ण के पुत्र भानुसेन को मार डाला। कर्ण ने धर्मात्मा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया और भयंकर मार-काट मच गई। एक बार तो कर्ण को मूर्छा आ गई किन्तु वह फिर स्वस्थ होकर लड़ने लगा और उसने युधिष्ठिर को पराजित कर दिया। पाण्डव सेना की अपार क्षति हुई। फिर तो क्रोध में भरे हुए पाण्डवों ने कौरव सेना में भारी हा-हाकार मचा दी। कौरव सेना में भगदड़ मच गई। दूसरी ओर कर्ण और भीमसेन में मरणान्तक युद्ध छिड़ा हुआ था। कर्ण का प्रयत्न था कि यदि भीमसेन को परास्त कर दिया तो अर्जुन झट मुझसे युद्ध करने चला आएगा। इसलिए उसने भीमसेन पर तीखे बाण बरसाने प्रारंभ कर दिए। पर भीमसेन के बाण से कर्ण घायल होकर अचेत हो गया। भीम तो कर्ण को मार ही डालना चाहता था परन्तु यह सोचकर कि कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा अर्जुन ने की हुई है, उसने कर्ण को छोड़ दिया। शल्य ने रथ को युद्धभूमि से बाहर निकाल दिया।

आज के युद्ध में कुपित भीमसेन ने छः कौरवों को यमलोक पहुंचाया। होश आने पर कर्ण दोबारा लौट आया और भीमसेन से युद्ध करने लगा। भीमसेन ने अपनी गदा से कौरवों की गज सेना, अश्व सेना, और रथ सेना का संहार करना प्रारंभ किया। युद्ध की भीषणता प्रति क्षण बढ़ने लगी। कौरव सेना छिन्न-भिन्न हो गई।

अर्जुन संसप्तकों की सेना का संहार करने में लगा हुआ था। उसने दस हजार संसप्तकों को मौत के घाट उतार दिया।

कौरव पक्षी कृपाचार्य ने शिखण्डी को और पाण्डव पक्षी धृष्टद्युम्न ने कृतवर्मा को परास्त कर दिया। अश्वत्थामा और युधिष्ठिर में आमने-सामने का युद्ध हो रहा था। सात्यकि भी धर्मराज की सहायता कर रहा था। फिर भी धर्मराज को इस मोर्चे से भागना पड़ा। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न से पराजित होकर दुर्योधन भाग खड़ा हुआ। अर्जुन और अश्वत्थामा में घोर संग्राम छिड़ा हुआ था जिसमें अश्वत्थामा को हार खानी पड़ी। फिर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, "रथ को धर्मराज युधिष्ठिर के पास ले चलिए।"

धृष्टद्युम्न और कर्ण में युद्ध हो ही रहा था कि अश्वत्थामा ने भी धृष्टद्युम्न पर आक्रमण कर दिया। वीरवर अर्जुन ने इस स्थिति को भांपकर धृष्टद्युम्न की सहायता की और अश्वत्थामा को पराजित कर दिया। अब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को महारथी कर्ण से युद्ध करने की प्रेरणा और सलाह दी। कर्ण ही आज कौरव सेना का सेनापति था और अर्जुन ने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की हुई थी।

युद्ध की स्थिति एक-एक क्षण में बदल जाती थी। कभी तो किसी एक मोर्चे पर पाण्डव सेना हार जाती और कभी किसी दूसरे मोर्चे पर कौरव सेना को पराजय का मुंह देखना पड़ता।

कौरव सेना ने संगठित होकर धर्मात्मा युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया। नकुल-सहदेव यद्यपि युधिष्ठिर की सहायता कर रहे थे पर कर्ण ने उन्हें पीठ दिखाने पर विवश कर दिया और वे घायल होकर छावनी में लौट गए और विश्राम करने लगे।

दुर्योधन की प्रेरणा से कर्ण ने पांचालों की सेना पर भार्गव नामक अस्त्र का प्रयोग कर दिया जिससे पांचाल सेना की भारी क्षति हुई। जब अर्जुन को पता लगा कि युधिष्ठिर घायल होकर शिविर में पड़े हुए हैं तो युद्ध का भार भीमसेन पर छोड़कर वे श्रीकृष्ण सहित युधिष्ठिर को देखने चले गए।

श्रीकृष्ण और अर्जुन जब विश्राम कर रहे युधिष्ठिर के पास पहुंचे तो भ्रमवश उन्हें लगा कि ये युद्ध में कर्ण को मार कर आए हैं। पर अर्जुन ने उन्हें बताया कि कर्ण अभी तक मारा नहीं जा सका है। परन्तु अर्जुन ने युधिष्ठिर को विश्वास दिलाया कि वह कर्ण को अवश्य मार डालेगा। फिर अर्जुन ने सात्यकि, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु और उत्तमौजा को सहायक बना कर कर्ण को मार डालने की प्रतिज्ञा की। युधिष्ठिर ने अर्जुन को इस बात के लिए बुरी तरह फटकारा कि वह भीमसेन को अकेला छोड़कर मुझे देखने यहां क्यों चला आया। तू कर्ण से युद्ध करने में कतराता है, इसीलिए बहाना बनाकर यहां चला आया है। मुझे क्या पता था कि तू ऐसी कायरता दिखाएगा! आज मुझे जब कर्ण ने घेर लिया तो भीमसेन ने अपने प्राणों पर खेलकर मुझे बचाया। वह सच्चा वीर है। क्योंकि तुमने अभी तक कर्ण को मारने की

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं की है, इसीलिए आज उसके द्वारा मुझे अपमानित होना पड़ा। तुम्हें धिक्कार है और मुझे भी। यदि तुम कर्ण को नहीं मार सकते तो इस गाण्डीव धनुष को धारण नहीं करना चाहिए। धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव धनुष को, धिक्कार है तुम्हारी इन लम्बी भुजाओं को, धिक्कार है तुम्हारी इस हनुमान वाली ध्वजा को और विश्वकर्मा द्वारा बनाए तुम्हारे इस रथ को।"

युधिष्ठिर के अर्जुन को इस प्रकार धिक्कारने से अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। युधिष्ठिर को मार डालने की इच्छा से अर्जुन ने तलवार खींच ली। श्रीकृष्ण ने मामले को बिगड़ता देख कर अर्जुन को रोका कि तुम यह क्या कर रहे हो!

अर्जुन ने क्रोध में नाग की तरह फुंफकारते हुए कहा, "मेरी प्रतिज्ञा है कि जो कोई मुझे यह कहेगा कि तेरे गाण्डीव धनुष को धिक्कार है तो मैं उसका सिर काट लूंगा।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के इस तरह कहने पर उसे समझाते हुए कहा, "तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए जिस कार्य को धर्म समझ रहे हो, वास्तव में वह धर्म है ही नहीं।" तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तुम्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है। इस पर भी तुम अपने को ज्ञानी समझते हो। सच तो यह है कि तुम्हारी प्रतिज्ञा ही मूर्खतापूर्ण है।"

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने कहा, "फिर आप ही कोई ऐसा उपाय बताइए कि मैं प्रतिज्ञा भंग के दोष से बच जाऊं।"

श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन, तुम सदा युधिष्ठिर को सम्मान पूर्वक 'आप' कहते रहे हो। आज उन्हें 'तू' कहकर पुकारो। धर्मज्ञ पुरुषों की दृष्टि में बड़ों को तू कहना और मार डालना एक बराबर है।"

अर्जुन ने ऐसा ही किया और इसके तुरन्त बाद फिर तलवार खींच ली। श्रीकृष्ण ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "अब तलवार किसलिए निकाली?"

अर्जुन बोला, "मैंने जो अभी बड़े भैया का अपमान किया, उसकी ग्लानि से मैं गड़ा जा रहा हूं। इसलिए अब आत्मघात करके छुटकारा पाऊंगा।"

श्रीकृष्ण बोले, "पगला गए लगते हो। खैर, मैं इसका भी उपाय बताता हूं। तुम अपने मुंह अपनी बड़ाई करो और यह कार्य भी आत्मघात के समान ही समझा जाएगा।"

फिर तो अर्जुन ने खूब अपनी बड़ाई की और आत्मग्लानि से मुक्त हो गया। अर्जुन ने युधिष्ठिर के चरण छूकर फिर युद्धभूमि में लौटने की आज्ञा चाही। युधिष्ठिर और अर्जुन गले मिले और अर्जुन ने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की।

लौटते हुए, मार्ग में श्रीकृष्ण अर्जुन के वीरोत्साह को बढ़ाते आए। अर्जुन का वीर दर्प जागा और वह सिंह गर्जना करता हुआ युद्ध में कूद पड़ा। दोनों पक्षों में मरणान्तक युद्ध प्रारंभ हुआ। उत्तमौजा ने कर्ण के पुत्र सुषेण का सिर धड़ से अलग कर दिया। अर्जुन के पीछे कौरवों ने अकेले रह गए भीमसेन को घेरने का प्रयत्न किया था किन्तु सफल नहीं हुए थे। अब फिर अर्जुन के आ जाने से युद्ध का पासा पलट गया और कौरव सेना में भगदड़ मच गई। शकुनि-दुर्योधनादि भागकर कर्ण के पीछे जा पहुंचे। कर्ण का पराक्रम अद्भुत था। वह पाण्डव सेना का संहार करता बढ़ता जा रहा था। उसके सामने टिक पाना आसान नहीं था।

अर्जुन दूसरे मोर्चे पर था। उसने वहां ऐसी मार-काट मचाई कि रक्त की नदी बह

चली। फिर श्रीकृष्ण से कहा, "मेरा रथ कर्ण के सामने ले चलिए। श्रीकृष्ण और अर्जुन को आता देखकर शल्य और कर्ण भी सावधान हो गए। कर्ण ने कहा, "मैं आज या तो इन दोनों को मार डालूंगा या फिर स्वयं मारा जाऊंगा।" यह कहकर कर्ण ने अपने पक्ष के महारथियों को अर्जुन को सब ओर से घेर लेने के लिए कहा और घमासान युद्ध प्रारंभ हुआ। दूसरी ओर भीमसेन को भी कौरव वीरों ने घेरा हुआ था पर वह महावीर बिना घबराये डटा रहा। जब अर्जुन को पता लगा तो वह कर्ण की सेना को छोड़कर भीमसेन के पास चला आया। अर्जुन ने अपने युद्ध कौशल से कौरव सेना में 'त्राहि-त्राहि' मचा दी। अर्जुन और भीमसेन के सम्मिलित प्रयत्न से कौरव वीर कट-कटकर गिरने लगे। इस कठिन घड़ी में कर्ण ने अपना युद्ध कौशल दिखाया और कौरव सेना की रक्षा की। पर अजेय वीर सात्यकि ने कर्ण के पुत्र प्रसेन को मार डाला। कर्ण ने पुत्र की मृत्यु से भी विचलित न होकर धैर्य पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

भीमसेन ने अपने सारथि को आज्ञा दी कि मेरा रथ दुःशासन के सामने ले चलो। उधर दुःशासन का सारथि भी भीमसेन के पास ही रथ को ला रहा था। दोनों वीर एक-दूसरे के सामने पड़ गए। भीमसेन ने दुःशासन से कहा, "मेरा सौभाग्य और तेरा दुर्भाग्य जो तू आज मेरे सामने पड़ गया। कौरव सभा में तूने द्रौपदी का अपमान किया था। उसका बदला आज मैं ब्याज सहित चुकाऊंगा।"

दुःशासन ने उत्तर दिया, "द्रौपदी का अपमान तो तुम लोगों ने किया है। उसने केवल अर्जुन का वरण किया था किन्तु तुम लोगों ने निर्लज्जता पूर्वक उसे पांचों पाण्डवों की पत्नी बनाया।"

दुःशासन की इस बात से भीमसेन का क्रोध भड़क उठा और उसने दो बाण मार कर दुःशासन के धनुष और रथ पर लगी ध्वजा को काट डाला। तीसरा बाण मारकर दुःशासन के माथे में घाव कर दिया और चौथे बाण से सारथि का सिर काट डाला।

दुःशासन ने दूसरा धनुष लेकर स्वयं घोड़ों की लगाम थामी और भीमसेन के ऊपर बाणों की झड़ी लगा दी। उसने एक तीखा बाण मारकर भीमसेन को इतना घायल कर दिया कि वह मुर्दे की तरह रथ में गिर पड़ा। थोड़ी देर में भीमसेन फिर उठ खड़ा हुआ और सिंह-गर्जना करने लगा। पर दुःशासन ने उसका धनुष ही काट डाला और सारथि को भी घायल कर दिया। कुछ देर इसी तरह आक्रमण और प्रत्याक्रमण का क्रम चलता रहा। अन्त में भीमसेन ने गदा उठाकर कहा, "आज मैं तेरा रक्त पीकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।" यह कहते हुए दुःशासन पर गदा का जोरदार प्रहार किया। इस गदा-प्रहार को दुःशासन सह नहीं सका। वह धरती पर गिर पड़ा और पीड़ा से व्याकुल होकर छटपटाने लगा। उसका कवच फट गया, कपड़े फट गए और अलंकरण बिखर गए। उसका रथ भी चूर-चूर हो गया।

दुःशासन को अचेत पड़ा देखकर भीमसेन और पाण्डव सेना ने भयंकर सिंह-गर्जना की। इसके साथ ही भीमसेन रथ से उतर कर दुःशासन की ओर लपका। उसे दुःशासन की सारी दुष्टताएं स्मरण हो आईं जिसके कारण उसने वहां खड़े कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा को सुनाते हुए कहा, "मैं अभी तुम सबके सामने इस दुष्ट को यमलोक में भेज रहा हूं। तुम में दम है तो इसे बचा लो।" और जैसे सिंह हाथी को दबोच लेता है वैसे

ही भीम ने दुःशासन को जा दबोचा। एक लात उसके सिर में मारकर भीमसेन ने तलवार निकाल ली और कहा, "पापी, अपना वह हाथ मुझे दिखा जिससे तुमने द्रौपदी के केश खींचे थे।"

मरणासन्न दुःशासन का अभिमान एक बार फिर जाग उठा। उसने अपना वह हाथ ऊंचा उठाते हुए कहा, "यह मेरा वह हाथ है, जिससे तुम सबके सामने मैंने द्रौपदी के केश खींचे थे और तुम बैठे देखते रहे थे।"

यह सुनते ही भीम ने दुःशासन के दोनों हाथों को अपने हाथों से पकड़ लिया, फिर छाती पर चढ़ बैठा और बोला, "मैं दुःशासन की बांह को उखाड़ रहा हूं। जिसमें दम हो, इसे मेरे हाथों मरने से बचा ले।" यह कहकर भीमसेन ने जोर का झटका दिया तो दुःशासन की बांह कंधे पर से अलग हो गई। फिर भीमसेन ने उसी बांह से दुःशासन की खूब पिटाई की। तत्पश्चात् दुःशासन की छाती को फाड़कर उसका गर्म-गर्म रक्त भीमसेन ने अपने होंठों से लगाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

दुःशासन दम तोड़ चुका था। उस समय भीमसेन के विकराल रूप को देखकर लोगों को सहसा नृसिंह भगवान का स्मरण हो आया जिन्होंने तीखे नखों से हिरण्यकशिपु की छाती को फाड़ डाला था।

दुःशासन के मरते ही चित्रसेन भाग खड़ा हुआ पर युधामन्यू ने उसका पीछा किया और मार डाला।

भीमसेन ने गर्जते हुए कहा, "वीरो! मैंने अपनी एक प्रतिज्ञा पूरी करके दिखा दी। और इसी तरह आपकी आंखों के सामने दुर्योधन की टांगें तोड़कर दूसरी प्रतिज्ञा भी पूरी कर दिखाऊंगा।"

दुःशासन की मृत्यु से क्रुद्ध और क्षुब्ध दस धृतराष्ट्र पुत्रों ने भीमसेन को घेरकर बाण बरसाने प्रारंभ कर दिए। भीमसेन ने उन दसों को मारकर गहरी नींद में सुला दिया। सेनापति कर्ण के मनमें भीमसेन के दुर्धर्ष रूप को देखकर भय समा गया। कर्ण को यों भयाक्रांत देखकर सारथि शल्य ने धीरज बंधाया और कहा कि इस समय अपनी भागती हुई सेना को संभालो। दुःशासन की मृत्यु से दुर्योधन स्तब्ध रह गया है। उसे भी समझाओ। अर्जुन तुम पर आक्रमण करने को तैयार खड़ा है, उसका आगे बढ़कर सामना करो। अब इस युद्ध की हार-जीत तुम्हारे ही ऊपर निर्भर करती है।"

इसी समय कर्ण के पुत्र वृषसेन ने भीमसेन पर बाण बोल दिया तो नकुल ने वृषसेन पर आक्रमण कर दिया। इस मुठभेड़ में नकुल का सारथि और रथ नष्ट हो गया तो वह भीमसेन के रथ पर जा चढ़ा। पर वृषसेन ने वहां भी उन दोनों—भीमसेन और नकुल को अपने बाणों से बींध डाला। तब अर्जुन वहां आया और उसने वृषसेन का वध कर डाला।

अपने वीर पुत्र को अर्जुन द्वारा मारा गया देखकर कर्ण का क्रोध दूना-चौगुना भड़क उठा और वह अर्जुन पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा।

उधर श्रीकृष्ण ने उसे देख लिया और अर्जुन को सावधान करते हुए कहा, "अर्जुन! वह देखो, कर्ण तुम्हारी ही ओर आ रहा है। तुम्हें मालूम है कि कर्ण को केवल तुम्हीं जीत सकते हो।"

अर्जुन ने कहा, "जब आप मेरे पक्ष में हैं और मेरे मार्ग-दर्शक भी, तो मेरी विजय निश्चित होगी ही। मैं आज कर्ण को मारे बिना पीछे नहीं लौटूंगा। आज या तो मैं कर्ण को मार डालूंगा या स्वयं मारा जाऊंगा। आप रथ को ठीक कर्ण के सामने ले चलिए।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को कर्ण के ठीक सामने उसके रथ से सटाकर खड़ा कर दिया। फिर तो उन दोनों महारथियों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्षों के वीर योद्धा अपने-अपने महारथी की रक्षा और सहायता करने के विचार से उनके आस-पास एकत्र हो गए। इस युद्ध रूपी जुए में अर्जुन और कर्ण दांव पर लगे हुए थे। रणवाद्य बज रहे थे। मारे कोलाहल से कान फटे जाते थे। दोनों ओर युद्ध की उत्तेजना फैली हुई थी। दोनों पक्ष विजय के अभिलाषी थे और निर्णायक युद्ध के लिए प्रस्तुत थे।

अर्जुन के प्रचण्ड पराक्रम से कौरव सेना में आतंक फैल चला था। उनके बहुत से वीर मारे जा चुके थे और शेष सेना में भगदड़ मचने लगी थी। पर कर्ण-दुर्योधन जैसे आज युद्ध का अन्त कर देने के लिए कृतसंकल्प थे और प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। उनके पक्ष की अपार क्षति हुई थी। दुर्योधन के अतिरिक्त प्रायः सारे धृतराष्ट्र पुत्र मारे जा चुके थे। इस अन्तिम घड़ी में भी युद्ध को बन्द करने के विचार से अश्वत्थामा ने दुर्योधन का हाथ दबाते हुए कहा, "दुर्योधन! हठ छोड़ो, और अब भी पाण्डवों से सन्धि कर लो। भीष्म, और द्रोण जैसे धनुविद्या के आचार्य मारे जा चुके हैं। मैं समझता हूं कि यदि तुम मान जाओ तो अर्जुन को मैं मना लूंगा। बूढ़े पिता धृतराष्ट्र और माता गांधारी की ओर देखकर इस युद्ध को बन्द करो। कल्पना करो कि यदि तुम्हें भी वीरगति प्राप्त हुई तो उनकी क्या दशा होगी। मैं समझता हूं युधिष्ठिर तुम्हें तुम्हारा उचित भाग अवश्य देंगे।"

दुर्योधन ने लम्बी सांस खींच कर कहा, "यद्यपि तुम्हारी बात ठीक है तो भी अब संधि की चर्चा करना व्यर्थ है। भीमसेन ने अभी कुछ देर पहले मुझे मारने की प्रतिज्ञा दोहराई है। इसके साथ ही क्या इस समय के सन्धि-प्रस्ताव को पाण्डव स्वीकार कर लेंगे। उन्हें हमारी किसी बात पर भरोसा नहीं रहा है। अर्जुन इस समय बहुत थक चुका है। अब कर्ण उस पर हावी होता जा रहा है। कर्ण का पराक्रम अर्जुन के लिए असह्य है।"

अश्वत्थामा के सन्धि प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए दुर्योधन ने अपने सैनिकों को शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

कर्ण और अर्जुन में फिर भयंकर युद्ध छिड़ गया। पाण्डव पक्ष के वीरों ने अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "वीरवर! कर्ण को मारने में अब देर मत करो। कर्ण के मस्तक और दुर्योधन की राज्य प्राप्त करने की आशा को एक साथ काट डालो।"

दूसरी ओर कौरव पक्षी कर्ण को कह रहे थे, "कर्ण! अर्जुन को मार पाण्डवों को एक बार फिर वन-वन भटकने के लिए विवश कर दो। ये बातें हो रही थीं और युद्ध भी चल रहा था। कर्ण ने अर्जुन को अपने बाणों से घायल कर दिया था और लगता था कि कर्ण का पलड़ा भारी है। भीमसेन ने इस स्थिति को भांपकर अर्जुन के वीर-दर्प को जगाने के लिए बहुत-सी बातें कहीं। श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन के चलाए बाणों को कर्ण द्वारा नष्ट होता देखकर अर्जुन को सावधान किया और उसके बल-पौरुष की बड़ी प्रशंसा की।

भीमसेन और श्रीकृष्ण के प्रेरणा भरे वचनों को सुनकर अर्जुन ने कर्ण पर ब्रह्मास्त्र का

कर्ण और अर्जुन-युद्ध

प्रयोग कर डाला पर कर्ण ने उसे भी व्यर्थ कर दिया। तब अर्जुन ने दूसरे दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया। इस दिव्यास्त्र ने शत्रु पक्ष के सभी प्रमुख योद्धाओं का विनाश कर डाला। कर्ण ने भी श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन को घायल कर दिया। बदले में अर्जुन ने शल्य और कर्ण दोनों को घायल कर दिया।

खाण्डवदाह के समय अश्वसेन नामक एक नाग जीवित बचकर पाताल में चला गया था। वह अर्जुन का परमशत्रु था और आज वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर जानकर वहाँ आ गया था। वह नाग कर्ण के तुणीर में जा घुसा ताकि जब कर्ण बाण रूप में उसका प्रयोग करे तो वह अर्जुन को जा डसे।

जब अर्जुन के सामने कर्ण का कोई वश नहीं चला तो उसने अपने तुणीर से सर्पमुख नामक एक घातक बाण निकाला। अश्वसेन नामक नाग योग शक्ति से इसी बाण में बैठा था। कर्ण ने ज्यों ही उस बाण को धनुष पर रखा, शल्य ने उसे टोकते हुए कहा, "कर्ण, तुम्हारा यह बाण अर्जुन के गले में नहीं लगेगा। इसलिए दोबारा निशाना साधो।"

कर्ण ने कहा, "मैं एक बाण से दोबारा निशाना नहीं साधता।" अग्नि के समान तेजस्वी वह बाण आकाश में जाते-जाते प्रज्वलित हो उठा। उस प्रज्वलित बाण को बड़े वेग से आता देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने रथ को पैर से दबा दिया और घोड़ों को घुटनों के बल झुका दिया। और इसके कारण वह बाण अर्जुन के गले में न लगकर मुकुट में जा लगा और मुकुट गिर पड़ा। तब वह अश्वसेन नाग फिर से कर्ण के तुणीर में घुसने लगा ताकि दोबारा अर्जुन को डस सके। कर्ण ने उसे देख लिया तो नाग बोला, "कर्ण, तुमने अच्छी तरह मुझे नहीं छोड़ा था। अब दोबारा छोड़ो, मैं अर्जुन के प्राण अवश्य हर लूंगा।"

कर्ण ने उससे पूछा, "तुम हो कौन ? पहले यह तो बताओ।"

तब नाग ने अपना परिचय दिया और बताया कि अर्जुन ने खाण्डव वन में मेरी माता को जला डाला था, इसलिए वह मेरा शत्रु है। तुम मुझे बाण के रूप में अर्जुन तक पहुंचा दो तो फिर ब्रह्मा भी उसके प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते।"

कर्ण ने कहा, "कर्ण दूसरे की सहायता लेकर विजय पाना नहीं चाहता। एक क्या, यदि सौ अर्जुन भी मर सकते हों तो भी मैं किसी बाण को दोबारा नहीं छोड़ूंगा।"

अर्जुन और कर्ण एक-दूसरे पर घातक प्रहार करते रहे और कर्ण के कवच और मुकुट बाणों से क्षत-विक्षत हो गए। कर्ण मूर्छित होकर रथ में गिर पड़ा। अर्जुन ने इस समय कर्ण पर प्रहार करना उचित नहीं समझा किन्तु श्रीकृष्ण ने संकट में पड़े हुए शत्रु पर प्रहार करने को कहा। अर्जुन ने आज्ञा का पालन किया। कर्ण को बाणों से बींध डाला। सचेत होने पर कर्ण ने फिर युद्ध प्रारंभ किया। अर्जुन ने सर्प विष और अग्नि की तरह एक बाण को अभिमन्त्रित करके कर्ण पर छोड़ा। कर्ण के पास भगवान् परशुराम का दिया हुआ भार्गव नामक अमोघ अस्त्र था किन्तु उसे इस समय उस अस्त्र का ध्यान ही नहीं रहा। कर्ण अर्जुन के बाणों को काटता रहा। फिर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को धनुष पर रखा। पर कर्ण ने तो अर्जुन के धनुष की डोरी ही काट दी। अर्जुन डोरी बदलता और कर्ण काट देता। ग्यारह बार इसी तरह हुआ। कर्ण पर किए हुए सारे प्रहार व्यर्थ जा रहे थे।

इसी समय कर्ण के रथ का बायां पहिया धरती में धंस गया और घोड़े लड़खड़ा कर

गिरने लगे। यह देख कर्ण रथ से उतर पड़ा और पूरा जोर लगाकर पहिये को बाहर निकालने लगा। उधर अर्जुन बाण-वर्षा कर ही रहा था। कर्ण ने अर्जुन से कहा, "पहिया निकलने तक ठहर जाओ। इस समय तुम्हारा मेरे ऊपर प्रहार करना धर्म विरुद्ध है।"

कर्ण को धर्म की दुहाई देते सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "अब जब तुम्हारे प्राणों पर संकट आया तो तुम्हें धर्म की बातें याद आने लगीं। द्रौपदी को अपमानित करते समय, जुए में छल करने वालों का साथ देते समय, अकेले बालक अभिमन्यु को घेर कर मारते समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया था?"

भगवान श्रीकृष्ण के व्यंग्य वचनों को सुनकर लज्जा के कारण कर्ण ने अपना सिर झुका लिया। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा, "इस समय किसी दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके इस दुष्ट को परलोक पहुंचाओ।"

इसी समय अर्जुन ने एक तेजोदीप्त बाण कर्ण पर छोड़ा। इस बाण से पहिया निकालते कर्ण का मस्तक कट कर धड़ से अलग हो गया।

कर्ण के मरते ही पाण्डव पक्ष में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और सिंहनाद होने लगा। विजय-सूचक शंख ध्वनि से दिशाएं गूंज उठीं। कर्ण का सारथी शल्य खाली रथ को लेकर युद्धस्थल से बाहर आ गया। सेनापति कर्ण के मरने से शेष बचे कौरव सैनिकों में भय छा गया। इधर कर्ण का जीवन अस्त हो गया था और उधर कर्ण के धर्म पिता भगवान् सूर्य निस्तेज होकर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। आज धरती से एक दानवीर और युद्धवीर उठ गया था। दुर्योधन का आशाकेन्द्र यह कर्ण ही था। वही कर्ण आज मारा गया था। कौरव पक्ष शोक में डूबा हुआ था और पाण्डवों ने महाभारत युद्ध की सबसे बड़ी विजय प्राप्त कर ली थी। शोक और निराशा से कौरव सेना भाग रही थी किन्तु पाण्डवों में से किसी को उन का पीछा करने का अवकाश नहीं था। वे हर्ष में मस्त उछल-कूद रहे थे। शल्य एकमात्र बचे धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन को सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहा था।

थोड़ी देर तक मौज मनाकर पाण्डव सेना फिर उत्साहित होकर शेष बची कौरव सेना का संहार करने में जुट गई। भीमसेन ने अपनी गदा से पैदल सेना का चूरन बना डाला और अर्जुन ने रथ-सेना का विध्वंस कर दिया। थकी-हारी निराश, बिना सेनापति की कौरव सेना सिर पर पैर रखकर भागी। दुर्योधन ने उसे रोकने का बहुतेरा प्रयत्न किया पर व्यर्थ। शल्य ने दुर्योधन से कहा कि अब इन सैनिकों को रोकना व्यर्थ है क्योंकि युद्ध-समाप्ति का समय हो गया है और पाण्डव भी शिविर को लौट रहे हैं।

कर्ण को मरा जानकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न थे। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन की बार-बार प्रशंसा कर रहे थे। उधर धृतराष्ट्र कर्ण के मारे जाने से बड़े उदास थे।

शल्य पर्व

कौरव पक्ष में अब कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधन इतने ही महारथी बचे थे। भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और कर्ण जैसे वीर मृत्यु के मुख में जा चुके थे। इस विषम परिस्थिति को देखकर कृपाचार्य ने दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि कर लेने का सुझाव दिया पर दुर्योधन ने उसे अस्वीकार कर दिया।

अब अठारहवें दिन युद्ध का संचालन किसके सेनापतित्व में हो, इस पर विचार होने लगा। अश्वत्थामा ने शल्य को सेनापति बनाने का प्रस्ताव रखा जिसे दुर्योधन ने स्वीकार कर लिया। दुर्योधन ने शल्य से सेनापति का पद स्वीकार करने का अनुरोध किया और शल्य ने स्वीकार कर लिया।

अठारहवें दिन प्रातः राजा दुर्योधन ने शल्य का सेनापति पद पर अभिषेक दिया। सैनिक गण उनका अभिनन्दन करने के लिए सिंह गर्जना करने लगे। अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए शल्य ने कहा, "कुरुराज दुर्योधन ! तुम मुझसे जो कुछ अपेक्षा करते हो, मैं उसे पूरा करूंगा। श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरे सामने टिक नहीं सकेंगे। आज तुम मेरा युद्ध-कौशल और शौर्य देखना।

पाण्डव पक्ष को शल्य के सेनापति बनने का समाचार मिल चुका था। श्रीकृष्ण ने शल्य की प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिर को शल्य का वध करने के लिए प्रेरित किया।

अठारहवां दिन

अठारहवें दिन सूर्योदय होते ही दोनों पक्षों की बची हुई सेनाएं युद्ध क्षेत्र में मोर्चे संभालने लगीं। युद्ध प्रारंभ हुआ। युद्ध ने थोड़ी ही देर में भयंकर रूप धारण कर लिया। आज पाण्डवों ने सनापति शल्य को अपना लक्ष्य बनाया। भीमसेन और अर्जुन ने शत्रु सेना को रौंद डाला। उधर धर्मराज युधिष्ठिर को आगे करके धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने शल्य पर आक्रमण कर दिया। नकुल और सहदेव भी शल्य पर टूट पड़े। मद्रराज शल्य नकुल-सहदेव के सगे मामा था पर आज वे एक-दूसरे के घोर शत्रु थे। कौरव सेना मार खाकर भाग खड़ी हुई। पाण्डव वीर भागती सेना को ललकारते तो वह और भी तेजी से भागने लगती। नकुल

ने कर्ण के तीन पुत्रों—चित्रसेन, सत्यसेन और सुषेण को मार डाला। आज शल्य ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। वह जिस मोर्चे पर अड़ जाता, पाण्डव सेना जरा भी आगे नहीं बढ़ पाती। शल्य ने अपने युद्ध-कौशल से पाण्डवों को चमत्कृत कर दिया। शल्य ने शिखण्डी, सात्यकि तथा धृष्टद्युम्न सभी को अपने बाणों से बींध डाला। जो भी उसके सामने पड़ा, वही घायल हो गया। युधिष्ठिर जिनके ऊपर शल्य को मारने का भार था, जब वह भी शल्य के बाण से बुरी तरह घायल हो गए तो भीमसेन का क्रोध भड़क उठा। उसने बाण वर्षा करके शल्य को क्षत-विक्षत कर डाला। शल्य को घिरा देखकर कृतवर्मा और कृपाचार्य उसकी ओर सहायता के लिए दौड़े। उधर भीमसेन ने अपने गदा-प्रहार से शल्य के सारथि को नीचे गिरा दिया। अब सेनापति शल्य वहां से पीछे हट गया। फिर भीमसेन और शल्य में गदा युद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों को चोटें लगीं। कृपाचार्य आए और शल्य को अपने रथ पर बिठाकर युद्ध-भूमि से दूर ले गए। फिर थोड़ी देर बाद युधिष्ठिर और शल्य में गदा युद्ध होने लगा। उधर दुर्योधन ने चेकितान को मार डाला। युधिष्ठिर ने चन्द्रसेन और द्रुमसेन को मार डाला और फिर शल्य के साथ युद्ध प्रारंभ कर दिया। नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की सहायता करने लगे।

मद्रराज शल्य जो आज कौरवों के सेनापति भी था, अद्भुत पराक्रम दिखा रहा था। अर्जुन और अश्वत्थामा भी एक-दूसरे पर घातक प्रहार कर रहे थे। एक ओर राजा दुर्योधन और पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न भिड़े हुए थे। अजेय वीर सात्यकि और नकुल शल्य के साथ घोर संग्राम कर रहे थे। भीमसेन ने दुर्योधन पर आक्रमण करके उसे भागने पर विवश कर दिया और धर्मराज युधिष्ठिर ने शल्य को। फिर युद्ध प्रारंभ होने पर भीमसेन ने शल्य के घोड़ों और सारथि का वध कर डाला। युधिष्ठिर और शल्य भी एक-दूसरे का वध करने का प्रयत्न कर रहे थे। शल्य ने युधिष्ठिर की छाती में बाण मारकर उन्हें घायल कर दिया था। तो बदले में युधिष्ठिर के बाण से शल्य मूर्छित हो गया। वे वीर थोड़ी देर में चेतना लौट आने पर फिर उसी तरह लड़ने लगते। जब शल्य ने युधिष्ठिर के घोड़ों को मार डाला और युधिष्ठिर को भी क्षत-विक्षत कर दिया तो युधिष्ठिर को लगा कि शल्य को जीतना आसान काम नहीं है। युधिष्ठिर को संकट में पड़ा देखकर भीमसेन ने शल्य का धनुष काट डाला और उसे घायल भी कर दिया। फिर भीमसेन ने शल्य के सारथि का सिर काट डाला और चारों घोड़ों को भी मार गिराया। रथ-विहीन शल्य को भीमसेन और सहदेव ने बाणों से बींध डाला और उसका कवच भी फोड़ डाला। तब सेनापति शल्य ढाल-तलवार लेकर दौड़ा और युधिष्ठिर पर झपटा। पर तभी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि ने उसे घेर लिया। भीमसेन ने उसकी ढाल के टुकड़े कर दिए और तलवार की मूठ काट डाली। इसी समय श्रीकृष्ण के वचन का स्मरण करते हुए युधिष्ठिर ने शल्य के वध के लिए एक दिव्य शक्ति का प्रयोग किया जिससे शल्य की छाती फट गई। शल्य ने भी युद्ध में वीर गति पाई।

सेनापति शल्य के मरते ही कौरव सेना भाग खड़ी हुई और सात्यकि ने भागती हुई सेना को खूब नष्ट किया। भागती हुई सेना को रोकने का दुर्योधन ने बहुत प्रयत्न किया। वह मारे क्रोध के अंगार की तरह जलने लगा और ऐसा घोर संग्राम करने लगा जैसा पहले किसी ने नहीं किया था। सब ओर से हताश, मित्रों और भाइयों से विहीन दुर्योधन शत्रुओं के लिए

यमराज जैसा बन गया। आज दोनों ओर की सेनाएं सारे युद्ध के नियमों को तोड़कर लड़ रही थीं। जहां पाण्डव अपनी विजय से उत्साहित थे, वहां दुर्योधन को जीवन के प्रति कोई मोह नहीं रह गया था और वह अपना आपा खोकर लड़ रहा था। शकुनि उस अन्तिम अवसर पर भी कूट युद्ध का आश्रय ले रहा था। उसे अब भी अपनी विजय की आशा थी। भीमसेन और अर्जुन समाप्ति की ओर बढ़ रहे युद्ध को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करना चाहते थे। अर्जुन को इस बात का बड़ा खेद था कि दुर्योधन की मूर्खता के कारण इतने सारे वीरों का संहार हुआ। भीम और अर्जुन ने शेष बची कौरव सेना को तहस-नहस कर डाला। रण-भूमि में रक्त की धारा बह निकली और मरे हुए सैनिकों, घोड़ों और हाथियों की लाशों के कारण वहां भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया। लाशों से पटी पड़ी उस भूमि में रथ के लिए मार्ग मिलना कठिन था। जब कौरव सेना प्रायः समाप्त हो गई और धृष्टद्युम्न ने राजा दुर्योधन को परास्त कर दिया तो वह घोड़े की नंगी पीठ पर सवार होकर वहां से भाग खड़ा हुआ। राजा दुर्योधन को वहां न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा बड़े चिन्तित हुए और उसे खोजने लगे। उन्होंने अपने सैनिकों से पूछा तो पता लगा कि वह घोड़े की पीठ पर बैठ कर शकुनि के पास भाग गया है। तब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी वहीं जा पहुंचे। श्रीकृष्ण भी अर्जुन को दुर्योधन के सामने ले गए। भीमसेन और सहदेव भी इस आक्रमण में अर्जुन की सहायता को आ गए। कौरवों की शेष बची हुई थोड़ी-सी गजसेना, कुछ रथसेना और तीन हजार के लगभग पैदल-सेना व्यूह-बद्ध होकर लड़ रही थी पर भीम और अर्जुन ने उसे मार-मारकर धरती पर बिछा दिया। सहदेव के हाथों छली शकुनि ने वीरगति प्राप्त की। यह शकुनि ही था जिसने गृह-कलह की चिंगारी सुलगाई थी। यही वह दुष्ट था जिसने सन्धि के सारे प्रयत्नों को व्यर्थ बनाया था। शकुनि के मरते ही दुर्योधन सहित शेष कौरव सेना भाग खड़ी हुई। पर पाण्डवों ने पीछा करके कौरव सेना का संहार कर डाला। दुर्योधन भागकर एक सरोवर में जा छिपा। उसके पास केवल उसकी गदा शेष रह गई थी। आज, इस घड़ी उसे महात्मा विदुर की कही हुई एक-एक बात स्मरण हो रही थी। उसकी सारी सेना नष्ट हो चुकी थी। केवल तीन महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा जीवित बचे थे। वे भी दुर्योधन को खोजते-खोजते सरोवर तट पर आ गए। बात यह थी कि दुर्योधन जलबन्ध विद्या जानता था। जिसके कारण वह पानी के भीतर छिपकर बैठा रह सकता था। अश्वत्थामा आदि को दुर्योधन के सरोवर में छिपने की बात मालूम हो गई थी। पाण्डव इनको खोज रहे थे और वहीं आ निकले थे, इसलिए अश्वत्थामा आदि भाग खड़े हुए। वे अपने शिविर में जा पहुंचे और वहां जो राजकुल की महिलाएं थीं, रक्षक उन्हें नगर की ओर ले चले। वे अपने पतियों के शोक में रोती-बिलखती नगर की ओर चल पड़ीं। सूर्यास्त तक वे महिलाएं हस्तिनापुर आ पहुंचीं।

दुर्योधन का अंत

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा सरोवर में छिपे राजा दुर्योधन के पास पहुंचे। उधर पाण्डव निरन्तर दुर्योधन को खोज रहे थे पर वह कहीं नहीं मिल रहा था।

सरोवर पर पहुंचकर अश्वत्थामा ने दुर्योधन को जोर से पुकारा और कहने लगा, "राजन् ! बाहर निकलो और हमारे साथ चलकर पाण्डवों से युद्ध करो। या तो विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगो या मर कर स्वर्ग सुख।"

दुर्योधन पानी के भीतर से बोला, "आप इस युद्ध में जीवित बच रहे हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। हम सब कुछ देर विश्राम कर लें, फिर युद्ध करेंगे। वैसे मेरी इस समय युद्ध करने में तनिक भी रुचि नहीं है। अब रात हो चली है, इसलिए आज की रात विश्राम करें।"

उनमें जब इस तरह की बातें हो रही थीं तो व्याधों की एक टोली वहां पानी पीने और विश्राम करने आ पहुंची। उन व्याधों ने इस बात-चीत को सुन लिया। वे समझ गए कि दुर्योधन यहीं-कहीं छिपा हुआ है। पुरस्कार पाने की इच्छा से व्याध-मण्डली पाण्डवों के शिविर में गई और भीमसेन को दुर्योधन के छिपने का स्थान बता दिया। भीमसेन ने उन्हें पुरस्कार देकर विदा किया। फिर तो भगवान् श्रीकृष्ण को आगे करके पाण्डव उस सरोवर पर आ पहुंचे। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उन्हें आता देखकर भाग गए। युधिष्ठिर ने जल में छिपे दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा, "राजा दुर्योधन ! अपने भाइयों और मित्रों को मरवा कर आज अपनी जान बचाने के लिए तुम जल में छिपकर बैठ गए हो। बाहर निकलो और हमारे साथ युद्ध करो। तुम तो बड़ी डींगें हांका करते थे, फिर आज कायरों की तरह क्यों छिपे बैठे हो। युद्ध करो, मारो या मरो।"

दुर्योधन ने जल के भीतर से ही उत्तर दिया, "मैं प्राणों के भय से भागकर यहां नहीं छिपा हूं। मैं घायल और थका हुआ हूं। इस समय मेरे पास न रथ है और न सेना। मेरे पास शस्त्रास्त्र भी नहीं हैं। इसलिए मैं विश्राम करने यहां चला आया हूं।"

युधिष्ठिर ने कहा, "हम बड़ी देर से तुम्हें खोज रहे हैं। इसलिए बाहर निकलकर हमारे साथ युद्ध करो। यदि तुम्हें प्राणों का मोह है तो मैं तुम्हें जीवन-दान भी दे सकता हूं। पर एक बार हार-जीत का निर्णय तो हो जाए।"

दुर्योधन ने कहा, "मैं अकेला और थका हुआ हूं। आप लोग बहुसंख्यक हैं। रथों और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हैं। इस स्थिति में, मैं शस्त्रहीन तुम्हारे साथ युद्ध कैसे कर सकता हूं। मैं तुम में से किसीसे डरता नहीं हूं। मैंने जो बात कही है, वह धर्म संगत है। आपको धर्म का पालन करना चाहिए। हां, मैं तुम सबसे बारी-बारी, एक-एक करके युद्ध करने को तैयार हूं।"

युधिष्ठिर ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अभी तुम्हारा लड़ने-मरने का विचार है। और आज तो तुम धर्म की बातें भी कर रहे हो। तुम हममें से, एक-एक से, क्रमशः युद्ध करना चाहते हो तो वैसा ही होगा। तुम्हें रथ और शस्त्रास्त्र जो कुछ चाहिए, वह तुम्हें दिया जाएगा।"

यह आश्वासन मिलने पर दुर्योधन गदा उठाए पानी से बाहर निकला। अब भी उसके घावों से रक्त बह रहा था। वह बोला, "तुम लोग एक-एक करके मेरे साथ युद्ध के लिए आते जाओ। तुम बहुत-सों का मुझ अकेले के साथ युद्ध करना धर्म-विरुद्ध होगा।"

युधिष्ठिर बोले, "मौत को सामने खड़ा देखकर तुम धर्म की दुहाई दे रहे हो। जब तुम

कई महारथियों ने घेरकर अकेले बालक अभिमन्यु को मारा था तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था ! खैर, हम पांचों में से जिसके साथ तुम युद्ध करना चाहो, कर सकते हो। हममें से किसी एक का भी वध कर दोगे तो हम तुम्हारी विजय स्वीकार कर लेंगे।"

दुर्योधन ने कहा, "तुममें से कोई एक मेरे साथ गदा युद्ध करने के लिए आगे आए।"

युधिष्ठिर के दुर्योधन को यह कहने पर कि तुम हममें से किसी भी एक के साथ गदा-युद्ध कर लो और उसे हरा देने पर हम अपनी हार स्वीकार कर लेंगे, भगवान श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया। श्रीकृष्ण जानते थे कि गदा-युद्ध में दुर्योधन का मुकाबिला भीमसेन के सिवा दूसरा कोई पाण्डव नहीं कर सकता। यदि दुर्योधन भीमसेन के अलावा किसी अन्य पाण्डव को गदा युद्ध के लिए कह दे तो क्या हो ! फिर किसी एक को जीत लेने पर सारे पाण्डव पक्ष को जीत लेने की बात भी बड़ी बेतुकी थी। इन्हीं बातों पर श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया था और उन्होंने युधिष्ठिर को फटकारते हुए कहा, "युधिष्ठिर ! आपने फिर यह जुए का खेल प्रारंभ कर दिया। आपने सारे पाण्डवों को फिर से संकट में डाल दिया। दुर्योधन को आप समझते क्या हैं ! गदा युद्ध में उसका सामना कर सकने योग्य कोई पाण्डव नहीं है। गदा-युद्ध में दुर्योधन ने देर तक अभ्यास किया है और बड़ी कुशलता प्राप्त की है। मैं समझता हूं कि तुम लोग राज्य भोगने के योग्य नहीं हो। तुम्हारे भाग्य में भीख मांगना और वन-वन भटकना ही लिखा है।"

भीमसेन ने कहा, "यदुनन्दन ! मैं आज दुर्योधन को यमलोक पहुंचाकर इस युद्ध का अन्त कर दूंगा। अकेले दुर्योधन की तो बिसात ही क्या, मैं तीनों लोकों के साथ भी गदा युद्ध कर सकता हूं।"

भीमसेन के उत्साह को देख श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए। उन्होंने भीमसेन की खूब प्रशंसा की और कहा, "भीमसेन ! तुम दुर्योधन की दोनों टांगें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा को आज पूरी करो और दुर्योधन को यमलोक पहुंचाकर यह राज्य धर्मराज युधिष्ठिर को अर्पित करो।"

उत्साह में भरे भीमसेन ने अपनी भारी गदा उठाई और दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन ने तभी ललकार का उत्तर ललकार से दिया और गदा युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। भीमसेन ने दुर्योधन को सम्बोधित करके कहा, "ओ कौरव-कुल-कलंक ! तुम्हारे पाप और दुराग्रह के कारण यह इतना बड़ा विनाशकारी युद्ध हुआ है। तुम्हारे पाप का घड़ा भर चुका है और वह आज फूटने वाला है। आज मैं तुम्हें मौत के मुंह में भेजकर ही दम लूंगा।"

दुर्योधन ने कहा, "गाल क्यों बजा रहे हो ! मैं तुम्हारी एक-एक हड्डी-पसली चूर कर दूंगा।"

इसी समय श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम जी भी वहां आ उपस्थित हुए। भीमसेन और दुर्योधन दोनों ने उनसे गदा-युद्ध की शिक्षा पाई थी। उन्हें जब पता लगा कि उनके दोनों शिष्य निर्णायक गदा-युद्ध करने को तैयार हैं, तो वे भी इस युद्ध को देखने आ पहुंचे। पाण्डव उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सबने चरण छूकर उनका आदर-सम्मान किया।

भीमसेन और दुर्योधन गदा-युद्ध के लिए तैयार थे। उन्होंने अपनी-अपनी गदाओं को ऊंचा उठाकर, अपने गुरु को सैनिक प्रणाम किया। गदा-युद्ध प्रारंभ हुआ। जैसे दो मतवाले

सांड भिड़ते हैं, वैसे ही वे दोनों वीर भिड़ गए। जब दोनों की गदाएं आपस में टकरातीं तो वज्रपात की तरह घोर शब्द होता और चिंगारियां निकलतीं। ऐसा जान पड़ता जैसे जुगनुओं के झुंड आकाश में फैल गए हों। बड़ी देर तक पैंतरे बदल-बदलकर, एक-दूसरे पर प्रहार करते और एक-दूसरे के प्रहार को बचाते वे थककर चूर हो गए और थोड़ी देर के लिए विश्राम करने बैठ गए।

दोनों में फिर युद्ध प्रारंभ हुआ। उनके गदा-युद्ध को देखकर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था कि विजय किसकी होगी। दोनों ही तरह-तरह के पैंतरे बदलते, मार्ग और मण्डलगति से चलते एक-दूसरे को छकाने लगे। दुर्योधन ने अपनी भयंकर गदा से भीमसेन के मस्तक पर प्रहार किया पर भीमसेन उस प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। यह एक अद्भुत बात थी। फिर भीमसेन ने भी दुर्योधन पर प्रहार किया पर उसने पैंतरा बदल लिया और प्रहार व्यर्थ गया। फिर दुर्योधन ने भीमसेन की छाती पर प्रहार किया जिससे भीमसेन को मूर्छा आ गई पर वह फिर उठ खड़ा हुआ। पाण्डवों को अपनी विजय की आशा क्षीण होने लगी। चोट खाए भीमसेन ने क्रुद्ध होकर दुर्योधन की पसलियों पर जोर का गदा-प्रहार किया। चोट से तिलमिलाकर दुर्योधन घुटने टेककर धरती पर बैठ गया। दुर्योधन के घुटने टेक देने पर पाण्डव वीर हर्ष-ध्वनि करने लगे। दुर्योधन तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और भीमसेन के माथे पर प्रहार किया। यद्यपि भीमसेन के माथे से खून की धारा बह चली पर वह जराभर भी विचलित नहीं हुआ। भीमसेन ने फिर प्रहार किया जिससे दुर्योधन की नस-नस ढीली हो गई। वह धरती पर गिर पड़ा पर शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ। इस बार जब दुर्योधन ने भीमसेन पर गदा-प्रहार किया तो भीमसेन का सारा शरीर शिथिल पड़ गया और उसने धरती थाम ली। उसका कवच टूट गया और मूर्छा आ गई।

युद्ध का अन्त होते न देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा कि दोनों में कौन श्रेष्ठ वीर है, श्रीकृष्ण ने बताया, "जहां भीमसेन बल में दुर्योधन से अधिक है, वहां अभ्यास में दुर्योधन की बराबरी भीमसेन नहीं कर सकता। धर्मपूर्वक युद्ध करके भीमसेन दुर्योधन पर विजय नहीं पा सकता। हां, अधर्म युद्ध का आश्रय लेकर दुर्योधन को तुरन्त जीता जा सकता है। माया का आश्रय लेकर शत्रु पर विजय पाना बिल्कुल उचित है। भीमसेन ने द्यूत सभा में जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन की टांगें तोड़ दूंगा, उसे इस समय उस प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहिए। नहीं तो धर्मराज युधिष्ठिर ने जो वचन देकर महा अपराध किया है, उससे सब किए-धरे पर पानी फिर जाएगा। हमारी विजय को युधिष्ठिर ने संशय में डाल दिया है। एक की हार-जीत से सबकी हार-जीत की शर्त लगाकर युधिष्ठिर ने बड़ी मूर्खता की है। दुर्योधन जीवन की आशा छोड़कर युद्ध में कूदा है। उसका सामना करना कठिन है।"

श्रीकृष्ण की बात को सुन-समझकर अर्जुन ने भीमसेन को दिखाकर अपनी बाईं आंख को ठोका। भीमसेन ने इस संकेत को समझ लिया। वह यमक तथा अन्य प्रकार के मण्डलों में विचरण करता हुआ उचित अवसर ढूंढ़ने लगा। पर दोनों थक गए थे, इसलिए दो घड़ी तक युद्ध बन्द करके विश्राम करने बैठ गए।

सुस्ताने के बाद फिर युद्ध प्रारंभ हुआ। भीमसेन ने निकट आए दुर्योधन पर बड़े वेग से आक्रमण किया। दुर्योधन ने भीम के प्रहार को व्यर्थ कर देने का विचार किया। उसने

भीमसेन को छलने के लिए ऐसा दिखावा किया कि जैसे वह स्थिरतापूर्वक खड़ा रहेगा। किन्तु उसने मन में निश्चय किया था कि ज्यों ही भीमसेन मुझ पर प्रहार करेगा, मैं ऊपर को उछल जाऊंगा और इस प्रकार भीमसेन का प्रहार व्यर्थ जाएगा। पर उसकी इस चाल को भीमसेन ने भांप लिया। भीमसेन ने पैंतरे से छलने और उछलकर बचने की इच्छा वाले दुर्योधन की दोनों टांगों पर जोर का गदा-प्रहार किया। इस गदा प्रहार से दुर्योधन की दोनों टांगें टूट गईं। दुर्योधन धरती पर गिर पड़ा। पाण्डव दुर्योधन के गिर पड़ने से बड़े प्रसन्न हुए और उसे पास जाकर देखने लगे। भीमसेन ने पास जाकर अपने बाएं पैर से दुर्योधन के मुकुट में ठोकर मारी। फिर सबको सुनाते हुए कहा, "छली-कपटी, अत्याचारी और द्रौपदी का निर्लज्जता-पूर्वक अपमान करने वाले पापी धृतराष्ट्र-पुत्रों का आज अन्त हो गया। भीमसेन ने एक बार फिर बाएं पैर से दुर्योधन के सिर में ठोकर मारी पर यह काम वहां खड़े लोगों को अच्छा नहीं लगा। युधिष्ठिर ने भीमसेन को इस तरह का निन्दनीय कार्य करने से रोका। फिर वे राजा दुर्योधन के पास गए और बोले, "राजन्! तुम्हारी प्रशंसनीय मृत्यु हो रही है। शोचनीय स्थिति तो हमारी है, जिनके मित्र और सम्बन्धी मारे गए हैं। मैं शोक-विह्वला और दुःख में डूबी विधवा बहुओं को कैसे देखूंगा!"

भीमसेन द्वारा दुर्योधन के सिर पर ठोकर मारने से बलरामजी को बड़ा क्रोध आया। वे बोले, "भीमसेन, तुम्हें धिक्कार है। तुमने गदा-युद्ध के नियमों का उल्लंघन करते हुए नाभि के नीचे प्रहार करके धर्म-विरुद्ध कार्य किया है। तुम स्वेच्छाचारी और मूर्ख हो।" फिर वे श्रीकृष्ण से बोले, "श्रीकृष्ण! गदा-युद्ध में दुर्योधन का सामना कोई नहीं कर सकता था। भीमसेन ने अन्यायपूर्वक उसे तो मारा ही है, मेरा भी अपमान किया है। मेरे सामने यह अन्याय हुआ है। मैं इसे चुपचाप सहन नहीं कर सकता।" यह कहकर बलराम अपना हल उठाकर भीमसेन को मारने दौड़े। परन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और बोले, "भैया! कौरवों ने सदा पाण्डवों के साथ छल-कपट किया है। भीमसेन की प्रतिज्ञा थी कि मैं दुर्योधन की टांगें तोड़ डालूंगा। उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और उसे करनी ही चाहिए थी। इसमें भीमसेन का कोई दोष नहीं है। इसलिए आप भीमसेन पर क्रोध न करें।"

बलराम बोले, "तुम जो भीमसेन के कार्य को धर्मसंगत बता रहे हो, यह तुम्हारी मन-मानी है।" यह कहकर वे अपने रथ पर चढ़कर द्वारका को चले गए।

भीमसेन ने हाथ जोड़कर युधिष्ठिर से कहा, "आज यह सारी पृथ्वी आपकी हो गई, इसके कांटे नष्ट कर दिए गए हैं अतः अब यह मंगलमयी हो गई है। आप इसका शासन करके अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन कीजिए। आपके सारे शत्रु नष्ट हो गए हैं और आप इस रत्नगर्भा-भूमि के एक-छत्र स्वामी हैं।

युधिष्ठिर बोले, "श्रीकृष्ण के निर्देशन में हमने यह विजय प्राप्त की है। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई और तुम विजयी हुए, यह बड़े सौभाग्य की बात है।"

पाण्डव पक्ष में दुर्योधन के पराजित हो जाने से हर्ष की लहर दौड़ गई थी और सभी इस विजय के लिए भीमसेन का अभिनन्दन कर रहे थे।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने शंख बजाते हुए शिविरों को लौट चले। पाण्डवों ने पहले कौरवों के शिविर में प्रवेश किया। वह सूना-सा पड़ा था। उसमें स्त्रियां, उनकी परि-

चारिकाएं और कुछ वृद्ध संरक्षक मात्र शेष थे। वहां पहुंचकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ! तुम अपने गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय तुणीरों को रथ से उतार लो और स्वयं भी उतर जाओ।"

अर्जुन के वैसा ही करने पर भगवान कृष्ण भी उस रथ से नीचे उतर पड़े। श्रीकृष्ण के उतरते ही वह दिव्य रथ जल उठा। घोड़ों सहित वह रथ आग में स्वाहा हो गया।

उस रथ को जलता देखकर समस्त पाण्डव आश्चर्य-चकित रह गए। श्रीकृष्ण ने इस आश्चर्य-जनक घटना का कारण पूछा तो श्रीकृष्ण बोले, "यह रथ नाना प्रकार के अस्त्रों से पहले ही दग्ध हो चुका था। किन्तु मेरी माया से अब तक बचा हुआ था। आज तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है, इसलिए अब इस रथ की भी आवश्यकता नहीं है। इसीलिए यह भस्म हो गया।

फिर श्रीकृष्ण ने पाण्डव वीरों के युद्ध में सकुशल बच जाने के लिए युधिष्ठिर को बधाई दी तो युधिष्ठिर ने भी इस विजय का सारा श्रेय श्रीकृष्ण को दिया और उनकी कृपा के लिए आभार प्रकट किया। फिर बोले, "उपप्लव्य नगर में मुझसे भगवान व्यास ने कहा था, 'जहां धर्म है, वहां श्रीकृष्ण हैं और जहां श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है'।"

तत्पश्चात् पाण्डव वीरों ने कौरव शिविर के खजाने, शस्त्रागार और भण्डार-घर पर अधिकार कर लिया। फिर श्रीकृष्ण के कहने से वे शिविर से निकलकर ओघवतिला नदी के तट पर, रात बिताने के लिए गए।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि पुत्र-नाश से उत्पन्न क्रोध के कारण जलती हुई गांधारी देवी को शान्त करने के लिए आपका हस्तिनापुर में जाना आवश्यक है। आपकी युक्तिपूर्ण बातों से उनका क्रोध शान्त हो सकेगा। हमारे पितामह भगवान व्यास भी वहां होंगे, और वे भी समयोचित उपदेश देंगे।"

युधिष्ठिर के आग्रह पर भगवान श्रीकृष्ण रथारूढ़ होकर धृतराष्ट्र और गान्धारी के पास पहुंचे। वहां व्यास देव पहले ही विद्यमान थे। श्रीकृष्ण ने व्यास देव तथा धृतराष्ट्र के पांव छूने के बाद गांधारी देवी को प्रणाम किया। फिर वे धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में लेकर फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने धीरज बंधाते हुए कहा कि पाण्डव सदा से आपके आज्ञाकारी और वशवर्ती रहे हैं। वे ही अब आपकी कुल-परम्परा को बढ़ाने वाले हैं। ईश्वरेच्छा बलवती है। जो अवश्यंभावी था, उसे हम चाहकर भी टाल नहीं सके। विधाता बलवान् है। अब आप शान्त होइए। पाण्डव आपके सामने आने में अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। युधिष्ठिर तो आप दोनों के लिए बहुत ही दुखी और चिन्तित हैं।" फिर वे गांन्धारी से बोले, "देवि ! तुम्हारे जैसी तपस्विनी दूसरी स्त्री इस धरती पर नहीं है। आपको स्मरण होगा कि आपके पुत्रों ने आपकी बात भी नहीं मानी थी। इसलिए आपको पाण्डवों पर क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि वे निर्दोष हैं। आपके पास जो तपोबल है, उससे सारे पाण्डव पलभर में जलकर राख की ढेरी बन सकते हैं। किन्तु उनके विनाश की बात सोचना आपके लिए उचित नहीं है।"

गान्धारी ने कहा, "केशव, तुम्हारी बात सुनकर मेरा क्रोध शान्त हो गया। पर तुम्हें और पाण्डवों को अन्धे और बूढ़े राजा धृतराष्ट्र का ध्यान रखना होगा।" यह कहकर गांधारी

देवी अपने आंचल से मुंह ढककर बिलख-बिलखकर रोने लगी। इस समय श्रीकृष्ण को अश्वत्थामा के मन में उपजे भीषण संकल्प की याद आई। वे सहसा उठ खड़े हुए और व्यास, धृतराष्ट्र तथा गांधारी के चरण छूकर जाने की आज्ञा मांगी। चलते-चलते उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा, "अब आप अपने मन को स्थिर कीजिए। मैं यहां ठहरता पर अश्वत्थामा ने रात में सोए हुए पाण्डवों के वध का संकल्प किया है, इसलिए मुझे जाना पड़ेगा।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र और गांधारी ने कहा, "जनार्दन! आप शीघ्र जाइए और पाण्डवों की रक्षा कीजिए।"

श्रीकृष्ण वहां से चले गए। यहां व्यास जी भी धृतराष्ट्र और गांधारी को धीरज बंधाने का प्रयत्न करते रहे।

गदा-युद्ध में भीमसेन द्वारा अधर्मपूर्वक दुर्योधन की टांगें तोड़ देने का समाचार जब शेष बचे कौरव पक्ष के अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को मिला तो वे तुरन्त ही रथ पर चढ़कर, वहां पहुंचे जहां दुर्योधन धरती पर पड़ा था। वे तीनों उसके पास ही धरती पर बैठ गए। दुर्योधन की दुर्दशा देखकर अश्वत्थामा का दिल भर आया। वह दुर्योधन के राज्य, धन-वैभव, शौर्य और गौरव को स्मरण करके विलाप करने लगा।

अश्वत्थामा का विलाप सुनकर मरणासन्न दुर्योधन की आंखें भर आईं और वह बोला, "मित्रो, मुझे छलपूर्वक मारा गया है, यह बात मैं आपको बता देना चाहता हूं।" यह कहते-कहते दुर्योधन का गला रुंध गया। छल की बात सुनकर अश्वत्थामा का क्रोध एकदम भड़क उठा। वह रोष में भरकर बोला, "राजन्! पाण्डवों ने मेरे पिता और अपने गुरु का भी छल-पूर्वक वध किया है पर उससे मुझे ऐसा क्रोध नहीं आया था किन्तु आपकी यह दशा देखकर मैं क्रोध में जला जा रहा हूं। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं, श्रीकृष्ण के देखते-देखते मैं सब पांचालों को यमलोक पहुंचा दूंगा, आप मुझे इसकी आज्ञा दे दें।"

अश्वत्थामा की ऐसी भीषण प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा, "आचार्य! आप शीघ्र ही जल से भरा हुआ कलश ले आइए।"

आचार्य कृप तुरन्त ही जलपूर्ण घट ले आए तो दुर्योधन ने उन्हें अश्वत्थामा का सेना-पति पद पर अभिषेक करने को कहा। कृपाचार्य ने अश्वत्थामा का सेनापति पद पर तत्काल अभिषेक कर दिया। अश्वत्थामा ने दुर्योधन को छाती से लगाया और फिर वे तीनों वहां से चल दिए। दुर्योधन ने वह काल-रात्रि वहीं बिताई।

सौप्तिक पर्व

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा तीनों दक्षिण दिशा की ओर चले और सूर्यास्त के समय सैन्य शिविर के पास जा पहुंचे। वे शत्रुओं से भयभीत थे, अतः वन में चले गए और वहां रथ के घोड़ों को खोलकर, एक जगह छिपकर बैठ गए। वे युद्ध में घायल और हारे हुए थे, इसलिए बहुत दुखी थे। उन्हें पाण्डवों की सिंह-गर्जना का शब्द सुनाई दिया तो वे वहां से भी भागकर पूर्व दिशा की ओर चल दिए ताकि रात चैन से काट सकें। वे भूखे-प्यासे थे और उनके घोड़े भी थके हुए थे। वे और भी घने वन में चले गए और घोड़ों को पानी पिलाया तथा स्वयं भी पिया। वहां एक विशाल बरगद के वृक्ष के नीचे रात काटने का उन्होंने निश्चय किया। रात के प्रथम पहर में वे पिछले अठारह दिनों के युद्ध की बातें करते रहे। बातें करते-करते कृपाचार्य और कृतवर्मा को तो गहरी नींद आ गई किन्तु अश्वत्थामा जागता रहा। उस बरगद के महावृक्ष पर सैंकड़ों कौए बसेरा ले रहे थे। अश्वत्थामा ने देखा कि एक डरावना उल्लू वहां आया और उसने नींद में सोए हुए कौओं पर आक्रमण करके कइयों को मार डाला। उस अंधेरी रात में अपने शत्रु कौओं से बदला लेकर वह भयानक उल्लू बड़ा प्रसन्न हुआ। रात में उल्लू द्वारा किए गए उस क्रूर कर्म को देखकर अश्वत्थामा ने स्वयं भी वैसा ही करने का विचार किया। उसने सोचा, विजयी पाण्डव आज निश्चिन्त होकर घोर निद्रा में सोए पड़े होंगे। मैं छल से उनका वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकता हूं। पाण्डवों ने स्वयं छल-युद्ध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है, तो मैं क्यों न करूं! सोए पाण्डवों के वध का पूरा निश्चय करके अश्वत्थामा ने अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगा दिया। फिर उन्हें अपने मन की बात कह सुनाई। अश्वत्थामा की बात सुनकर वे दोनों लज्जा से गड़ गए और कोई उत्तर नहीं दिया। अश्वत्थामा के पूछने पर कृपाचार्य ने कहा, "मैं इस समय कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूं। हमें राजा धृतराष्ट्र, देवी गांधारी और महात्मा विदुर से इस बारे में सम्मति लेनी चाहिए और जैसा वे बताएं, वैसा ही करना चाहिए।"

अश्वत्थामा तो पहले ही निश्चय कर चुका था। उसे मामा कृपाचार्य का सुझाव पसन्द नहीं आया। वह बोला, "आज मैं अपनी रुचि के अनुसार अपने पिता तथा राजा दुर्योधन की मृत्यु का बदला लूंगा। आज अपनी जीत के मद में पांचाल कवच उतार कर बेखटके सो रहे

होंगे, मैं उनका संहार करके प्रतिशोध लूंगा और पिता के ऋण से मुक्त हो जाऊंगा। आज मैं अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न को यमलोक पठाकर ही चैन की सांस लूंगा। आज पाण्डव पुत्रों को भी मौत के घाट उतार दूंगा।"

कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को उसके क्रूर संकल्प से हटाने का बहुत प्रयत्न किया पर अश्वत्थामा ने एक नहीं सुनी। वह अपनी बात पर ही अड़ा रहा। कृपाचार्य ने उसे समझाने का दोबारा प्रयत्न किया पर अश्वत्थामा ने अपनी जिद नहीं छोड़ी। उसने रथ को जोता और शत्रुओं की ओर चल पड़ा तो उन्होंने फिर पूछा कि कहां जा रहे हो। हम भी तुम्हारे दुःख-सुख के साथी हैं। तुम्हें हम पर सन्देह नहीं करना चाहिए। उसने फिर अपना संकल्प उन्हें सुना दिया तो वे दोनों भी उसी का अनुसरण करने चल पड़े।

पाण्डवों के शिविर द्वार पर पहुंचकर अश्वत्थामा खड़ा हो गया। शिविर द्वार पर एक अद्भुत विकराल पुरुष खड़ा पहरा दे रहा था। उस पुरुष ने बाघ का ताजा चमड़ा ओढ़ रखा था और सर्पों का यज्ञोपवीत पहना हुआ। उसे देखकर भय लगता था। अश्वत्थामा ने उस पहरेदार से भयभीत हुए बिना उस पर शस्त्रास्त्रों से प्रहार करना आरंभ कर दिया। पर उस पर तो इन प्रहारों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। अश्वत्थामा ने अपने सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र उस पहरेदार पर प्रहार करके व्यर्थ कर दिए। जब वह निहत्था हो गया तो उसने भगवान भूतनाथ शंकर की स्तुति की। भगवान शंकर ने उसे एक खड्ग दिया। अश्वत्थामा द्वार में से प्रवेश न करके दीवार फांदकर भीतर घुस गया। कृपाचार्य और कृतवर्मा द्वार पर ही रहे ताकि कोई भागने न पाए। अश्वत्थामा शिविर के भीतरी स्थानों से अच्छी तरह परिचित था। वह सबसे पहले अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न के शिविर में गया। उसने लात मारकर धृष्टद्युम्न को जगाया और जब वह उठने लगा तो अश्वत्थामा ने उसे केशों से पकड़कर धरती पर पटक दिया और रगड़ने लगा। इस स्थिति में धृष्टद्युम्न से कुछ भी करते नहीं बना। अश्वत्थामा ने उसका गला घोंटा और छाती पर चढ़ बैठा। फिर लातों-घूंसों से उसे मारने लगा। धृष्टद्युम्न की चीख-पुकार से शिविर के रक्षक और स्त्रियां जाग उठीं। उन्होंने समझा कि यह कोई भूत-प्रेत है। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को मार डाला और वहां से निकल कर दूसरे वीरों को मारने चला। उसने उत्तमौजा को भी इसी तरह मार डाला। हल्ला-गुल्ला सुनकर जब युधामन्यु वहां आया तो अश्वत्थामा ने उसे भी मौत के घाट उतार दिया। सारे शिविर में आतंक छा गया। द्रौपदी के पांचों पुत्र धनुष-बाण लिए आगे आए और बाण-वर्षा करने लगे। पर अश्वत्थामा ने तलवार के प्रहारों से प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, शतानीक, श्रुतकर्मा, और श्रुतकीर्ति इन पांचों द्रौपदी-पुत्रों को मार डाला। फिर सामना करते शिखण्डी तथा अन्य सैकड़ों वीरों को तलवार से काट डाला। जो वीर भागते हुए शिविर से बाहर निकलने लगे, उन्हें कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मार डाला। फिर कृपाचार्य और कृतवर्मा ने शिविर में तीन ओर आग लगा दी। सारी रात मौत का खेल होता रहा।

प्रातः पौ फटते ही अश्वत्थामा शिविर से बाहर निकला। कृपाचार्य और कृतवर्मा भी

उसे मिल गए और तीनों अपनी विजय से प्रसन्न हुए। तीनों ने अपने-अपने काम एक-दूसरे को बताए। अब वे तीनों मरणासन्न अवस्था में, युद्धस्थल में पड़े राजा दुर्योधन के पास पहुंचे ताकि उसे यह हर्ष-सूचक समाचार सुना सकें। दुर्योधन अभी तक जीवित था और मर्मान्तक वेदना से पीड़ित था। उसकी वैसी दशा देखकर उन तीनों का जी भर आया। फिर उन्होंने जो कुछ रात को किया था, उसका सारा वृत्तान्त दुर्योधन को सुनाया। दुर्योधन यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि पांच पाण्डवों, श्रीकृष्ण और सात्यकि के अतिरिक्त पाण्डव पक्ष के सारे योद्धा मारे गए है। इसके बाद तुरन्त ही दुर्योधन ने प्राण त्याग कर दिया।

पाण्डव पक्ष में धृष्टद्युम्न के सारथि ने महाराज युधिष्ठिर को रात के भयंकर युद्ध में पांचों द्रौपदी-पुत्रों तथा अन्य पाण्डवपक्षी वीरों के अश्वत्थामा द्वारा मारे जाने का समाचार सुनाया। फिर द्रौपदी को भी यह हृदय-विदारक समाचार सुनाया और तब सभी एक साथ शिविर में गए। वहां अपने पुत्रों, मित्रों, सम्बन्धियों और सहायकों को मरा पड़ा देखकर उन सबके दुःख का पारावार नहीं रहा। सभी फूट-फूटकर रोने लगे और मूर्छित होकर गिर पड़े।

धर्मराज युधिष्ठिर अपना धैर्य खोकर व्याकुल हो गए। देवी द्रौपदी के दुःख का तो कहना ही क्या, जिसके पांचों पुत्र और भाई मारा गया था! वह शोक की आग से जली जा रही थी। उसने महाराज युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवों को सुनाते हुए कहा, "आप जब तक पापाचारी अश्वत्थामा का प्राणान्त नहीं कर देते, मैं भोजन ग्रहण नहीं करूंगी और निराहार रहकर प्राणान्त कर दूंगी। आप सब लोग मेरी बात को कान खोलकर सुन लें। या तो अश्वत्थामा के प्राण जाएंगे या मेरे।" और यह कहकर द्रौपदी युधिष्ठिर के सामने ही अनशन के लिए बैठ गई।

युधिष्ठिर बोले, "अश्वत्थामा मारे डर के भागकर दुर्गम जंगल में चला गया है। वहां उसे खोजकर मार भी दिया जाए तो क्या तुम विश्वास कर लोगी?"

द्रौपदी ने उत्तर दिया, "अश्वत्थामा के मस्तक में जो मणि है, उसे लाकर मुझे दे देंगे तो अवश्य विश्वास कर लूंगी।" फिर द्रौपदी भीमसेन से बोली, "प्रिय भीम, अब आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। आप ही ने सदा मेरी गुहार सुनी है और मेरा मनोरथ पूरा किया है। अब भी मुझे पूर्ण आशा है कि आप अश्वत्थामा को मारकर मेरा सन्ताप दूर करेंगे।"

महाबली भीमसेन द्रौपदी देवी का दुःख दूर करने के लिए तुरन्त तैयार हो गए। नकुल को सारथि बनाकर वे धनुष-बाण लेकर चल पड़े। उन्हें अकेला जाते देखकर श्रीकृष्ण को चिंता हुई और उन्होंने युधिष्ठिर को भीम की सहायता करने के लिए जाने को कहा। उन्हें भय था कि यदि अश्वत्थामा ने अपने पिता आचार्य द्रोण से प्राप्त ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भीम पर कर दिया तो कोई भी उसकी प्राण-रक्षा नहीं कर पाएगा।

श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन तीनों भीम की सहायता के लिए उसके पीछे-पीछे चले। गंगा तट पर पहुंच कर महर्षि व्यास तथा अन्य ऋषि-मुनियों के बीच बैठे अश्वत्थामा को देख कर भीमसेन ने उसे युद्ध के लिए ललकारा।

अश्वत्थामा ने यमराज जैसे भयंकर भीमसेन को और उसके पीछे श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन को आते देखा। अब यहां से बच निकलने का कोई उपाय न देखकर और युद्ध में भी इन वीरों से पार पाना असंभव जानकर अश्वत्थामा ने मन में सोचा कि अब ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। यह ब्रह्मास्त्र उसे अपने पिता आचार्य द्रोण से मिला था। किन्तु उन्होंने इस दिव्य अस्त्र का मनुष्यों पर प्रयोग करने से अश्वत्थामा को मना किया हुआ था। पर मरता क्या न करता! अश्वत्थामा ने स्वर्गीय पिता द्रोण के वचनों की अवहेलना करके वह अस्त्र पाण्डवों पर छोड़ ही दिया।

ठीक ऐसा ही एक दिव्य अस्त्र अर्जुन के पास भी था। यह उन्हें आचार्य द्रोण ने ही प्रसन्न होकर दिया था। श्रीकृष्ण के कहने से अर्जुन ने अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गए अस्त्र का प्रतिकार करने के लिए अपने ब्रह्मास्त्र को छोड़ दिया।

दोनों अस्त्र प्रज्वलित होकर चारों ओर आग की लपटें बिखेरने लगे। वज्रपात जैसा शब्द होने लगा और हजारों उल्काएं टूट-टूटकर गिरने लगीं।

इस विनाशकाल में वहां सहसा देवर्षि नारद और महर्षि वेदव्यास आ उपस्थित हुए। वे इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि किसी तरह ये दोनों अस्त्र, इनका प्रयोग करने वालों द्वारा वापस ले लिए जाएं। महारथी अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र को तुरन्त वापस ले लिया। उसने महर्षियों से निवेदन किया कि मैंने अश्वत्थामा के अस्त्र का प्रतिकार करने के लिए ही इस अस्त्र का प्रयोग किया था। अब मैंने तो अपना अस्त्र वापस ले लिया किंतु अश्वत्थामा का अस्त्र हम लोगों का विनाश करके ही शान्त होगा क्योंकि अश्वत्थामा इसे लौटाना जानता ही नहीं है। अश्वत्थामा ने कहा, "मैंने प्राणों पर संकट आने पर ही इस अस्त्र को छोड़ा है। नहीं छोड़ता तो यह भीमसेन मुझे नहीं छोड़ता।"

वेदव्यास ने समझाते हुए कहा, "अच्छा, तो तुम अपने मस्तक की मणि पाण्डवों को दे दो। वे तुम्हें जीवनदान दे देंगे।"

अश्वत्थामा ने कहा, "महर्षे! मेरी यह मणि कौरवों-पाण्डवों की सम्मिलित सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान है। इसे बांध लेने पर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देव-दानव किसी का भी भय नहीं सताता। किन्तु आप कहते हैं तो मैं इस मणि को दिए देता हूं। पर जहां तक इस ब्रह्मास्त्र का प्रश्न है, मैं उसे लौटाने में असमर्थ हूं और यह अमोघ भी है। यह अस्त्र पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं पर तो गिरेगा ही।"

व्यासजी बोले, "ठीक है। ऐसा ही करो। मणि दे दो और अस्त्र को गर्भस्थ शिशुओं पर गिरने दो।"

अश्वत्थामा ने महर्षि व्यास की बात मानकर वैसा ही किया। वह अस्त्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ पर गिरा। किन्तु वासुदेव श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा से कहा, "तुम्हारे दिव्यास्त्र के प्रयोग से यद्यपि उत्तरा मृत पुत्र को जन्म देगी तथापि वह जी जाएगा और पाण्डवों के राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। और तुमने जो ये अत्यन्त नीच कार्य किए हैं, इनके फलस्वरूप तू तीन हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर अकेला भटकता रहेगा। तू किसीके साथ बात तक नहीं कर सकेगा। क्योंकि तेरे शरीर से पीव की सड़ांध निकलती रहेगी। उत्तरा के जिस गर्भ को तेरा अस्त्र जला देगा, उसे मैं अपनी शक्ति से जीवित कर दूंगा और

वह इस साम्राज्य का सम्राट् बनेगा। यह सब तू अपनी आंखों से देखेगा।"

पाण्डव अश्वत्थामा के मस्तक की मणि को लेकर शिविर में लौट गए ताकि उसे द्रौपदी को देकर उसका अनशन तुड़वाया जा सके।

मणि द्रौपदी ने महाराज युधिष्ठिर को दे दी और उसे मस्तक पर धारण करने को कहा।

स्त्री पर्व

अपने सौ पुत्रों के मारे जाने से वृद्ध धृतराष्ट्र की दशा शाखा-प्रशाखा विहीन ठूंठ वृक्ष जैसी हो गई थी। उनके दुःख का कोई पारावार नहीं था। संजय ने उनको धीरज बंधाते हुए ताऊ, पुत्रों और पौत्रों का क्रिया-कर्म करने को कहा।

धृतराष्ट्र आज श्रीकृष्ण, भीष्म पितामह और विदुर की बातों को न मानने के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। संजय बार-बार उनको धीरज बंधाने का प्रयत्न कर रहे थे। विदुर जी ने भी धृतराष्ट्र को समझाकर शोक न करने के लिए कहा। फिर भगवान वेदव्यास भी पुत्र-शोक से पीड़ित धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने पहुंचे। पर सौ पुत्रों के युद्धभूमि में वीरगति पाने का दुःख ऐसा दुःख नहीं था जिसे भूला जा सके।

मन के थोड़ा स्थिर होने पर राजा धृतराष्ट्र ने रथ तैयार करने की आज्ञा दी। साथ ही रानी गांधारी, कुन्ती तथा अन्य पुत्र-वधुओं को भी बुला भेजा। वे सब रथ पर सवार हो कर नगर से बाहर निकले। स्त्रियां छाती पीट-पीटकर रो रही थीं। कितने ही नागरिक भी रोते-बिलखते उनके साथ-साथ युद्धभूमि की ओर चल पड़े। नगर से बाहर निकलते ही कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा भी मिल गए। कृपाचार्य ने राजा धृतराष्ट्र को समस्त कौरव सैन्य के विनाश का वृत्तान्त सुनाया। फिर उन तीनों ने राजा से अन्यत्र जाने की आज्ञा मांगी क्योंकि वे प्रतिक्षण पाण्डवों से भयभीत रहते थे। वे वहां से अपने घोड़ों को भगाते हुए गंगा-तट की ओर चले गए। फिर वे तीनों भी तीन अलग मार्गों से बिखर गए। कृपाचार्य हस्तिनापुर को चले गए। कृतवर्मा अपने ही देश की ओर चल दिया। और अश्वत्थामा ने व्यास-आश्रम की राह ली।

उधर धर्मराज युधिष्ठिर ने जब यह सुना कि ताऊ धृतराष्ट्र संग्राम में मरे वीरों का अन्तिम कृत्य करने के लिए हस्तिनापुर से रण-भूमि की ओर चल दिए हैं तो वह भी भाइयों को साथ लेकर राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचे। श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी उनके साथ थे। देवी द्रौपदी ने भी अन्य पांचाल महिलाओं के साथ पाण्डवों का अनुगमन किया।

गंगातट पर करुण विलाप करती हुई कौरव-स्त्रियों को देखकर राजा युधिष्ठिर का

शोक और भी बढ़ गया । सभी स्त्रियों ने राजा युधिष्ठिर को घेर लिया । वे बोलीं, "धर्मराज कहलाने वाले युधिष्ठिर ! उस समय तुम्हारा धर्म और दया कहां चली गई थी, जिस समय तुम अपने ताऊ, चाचा, भाई, गुरु और मित्रों का निर्दयतापूर्वक वध कर रहे थे ?"

उन शोक-विह्वला स्त्रियों से बहुत-सी तीखी बातें सुनने के बाद सभी पाण्डव धृतराष्ट्र के पास गए और प्रणाम करके अपना-अपना नाम बताया । खिन्न मन से धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों के हत्यारे युधिष्ठिर को गले लगाया और भीम को गले लगाने के लिए खोजने लगे । उनसे अपना क्रोध और दुर्भावना छिपाने पर भी नहीं छिप रही थी । श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी थे । वे धृतराष्ट्र के मन की बात को भांप गए थे । उन्होंने भीमसेन को झटका देकर एक ओर को हटा दिया और पहले से ही तैयार भीमसेन की एक लौहमूर्ति धृतराष्ट्र के आगे कर दी ।

बलवान् राजा धृतराष्ट्र ने लोहे की मूर्ति को ही असली भीमसेन समझकर, दोनों बाहों में दबाकर तोड़ डाला । इसे तोड़ने से उनकी छाती दुखने लगी और मुंह से खून निकलने लगा । वे टूटे वृक्ष की तरह धरती पर गिर पड़े । संजय ने उन्हें पकड़कर उठाया और शान्त किया । संजय ने कहा, "राजन् ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था ।"

जब धृतराष्ट्र का क्रोध शान्त हुआ तो वह भीम को अपने द्वारा मारा गया जानकर "हा भीम ! हा भीम !!" कह कर विलाप करने लगे । तब श्रीकृष्ण ने उन्हें बताया, कि भीमसेन आपके हाथ से नहीं मारा गया । यह तो लोहे की एक प्रतिमा थी जिसे आपने दबा-कर चकनाचूर कर डाला । पुत्रशोक के कारण आपका मन धर्म से विचलित हो गया है । मैंने आपको एक पाप करने से बचा लिया । भीमसेन पर आपका क्रोध करना व्यर्थ है । भीमसेन न मारता तो भी आपके पुत्र मरते ही । उनकी आयु समाप्त हो चुकी थी । विनाशकाल समीप आ जाने के कारण आपके पुत्रों की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी और आपने भी किसी की बात न मान कर पुत्रों की 'हां में हां' मिलाई । उसी का यह परिणाम आज आपके सामने है । आपने सदा अन्याय का पक्ष लिया । आपने बार-बार पाण्डवों पर अत्याचार किया और आज आप अपने पुत्रों के लिए शोक विह्वल हैं !"

धृतराष्ट्र ने स्वीकार किया कि जन्मांध मैं बड़े पुत्र दुर्योधन की ममता में पड़कर धर्मांध बन गया था । तत्पश्चात् राजा धृतराष्ट्र ने अर्जुन, नकुल और सहदेव को गले लगाया और आशीर्वाद दिया ।

इसके बाद धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर सभी पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ गान्धारी देवी के पास गए ।

गांधारी को जब पता लगा कि मेरे पुत्रों के हत्यारे पाण्डव मेरे पास आ रहे हैं तो उन्होंने मन में पाण्डवों को शाप देने का निश्चय किया । भगवान् वेदव्यास गांधारी के मन के पाप को पहले ही जान गए । वे तुरन्त गांधारी के पास जा पहुंचे और बोले, "गांधारी देवी ! तुमने मन में जो पापपूर्ण संकल्प किया है, उसे भूल जाओ । देवी ! दुर्योधन युद्धभूमि में जाने से पूर्व प्रतिदिन प्रातः तुम्हारे पास आशीर्वाद लेने आता था । पर तुमने उसे कभी भी यह आशीर्वाद नहीं दिया कि "पुत्र ! तुम विजयी होओगे ।" तुमने सदा यही कहा, "जहां धर्म है, वहीं विजय है ।" मेरी जानकारी के अनुसार तुमने जीवन भर कभी झूठ नहीं कहा है । क्या पाण्डवों की इस विजय से यह सिद्ध नहीं हो गया है कि धर्म और न्याय उनके पक्ष में था ।

इसलिए मैं कहता हूं कि तुम भी अधर्म मत करो।"

गांधारी ने कहा, "आप ठीक कहते हैं! किन्तु क्या करूं, पुत्र-शोक ने मुझे भीतर से तोड़ डाला है। यह जो इतना बड़ा नर-मेध हुआ है, इसके लिए दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन—ये चारों उत्तरदायी हैं। मैं पाण्डवों को इसके लिए दोषी नहीं मानती पर फिर भी मैं 'मां' हूं और आज सौ वीर पुत्रों को जन्म देकर भी पुत्र-हीना हूं। मेरी—एक मां की वेदना को कौन समझ सकता है! काश! आज मेरा एक भी पुत्र जीवित बचा होता तो मैं निपूती तो न कहलाती! फिर आप ही बताइए, श्रीकृष्ण के देखते-देखते भीमसेन ने अन्यायपूर्वक दुर्योधन को गदा-प्रहार से मार डाला और वे चुप रहे। क्या आप इसे धर्म-सम्मत कहेंगे?"

पास ही खड़े भीमसेन ने माता गांधारी से क्षमा-याचना करते हुए कहा, "आप ठीक कह रही हैं पर इससे पूर्व उन्होंने कितने बार हमारे साथ अधर्म और अन्याय का व्यवहार किया है। द्रौपदी के साथ, बड़े भैया के साथ, मेरे साथ उन्होंने कैसे-कैसे छल-छन्द किए, वे सारी बातें क्या आप भूल गई हैं? मैं अपने एक अपराध के लिए लज्जित हूं और क्षमा चाहता हूं।"

गांधारी ने कहा, "विजयी वीर पाण्डवो! मेरे सारे पुत्र तो अपराधी नहीं थे। उनमें से किसी एक को जीवित छोड़ देते तो आज मैं निपूती तो न कहलाती। ओ धर्मराज! अपनी ताई के लिए तुम्हारे हृदय में कहीं इतनी भी दया-माया नहीं बची थी? तुमने यह भी नहीं सोचा कि हम दोनों अन्धों को बुढ़ापे में सहारा देने वाले लाठी रूपी किसी एक पुत्र को ही जीवित छोड़ दिया जाए? धर्मराज युधिष्ठिर! कहां हो तुम! कहां है तुम्हारा धर्म! चुप क्यों हो, बोलते क्यों नहीं?"

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर कांपते हुए हाथ जोड़कर गांधारी के सामने आए और विनयपूर्वक बोले, "ताई जी, आपके पुत्रों का संहार करने वाला क्रूर और निर्दयी युधिष्ठिर मैं यहां खड़ा हूं। मेरे ही कारण यह महाभारत का युद्ध हुआ, जिसमें लाखों वीर मारे गए। आप मुझे शाप दीजिए। मैं इसी योग्य हूं।"

युधिष्ठिर की इस अपराध-स्वीकृति से देवी गांधारी लम्बे-लम्बे श्वास खींचने लगीं और सिसकियां भरने लगीं। गला रुंधा होने के कारण उनके मुंह से बात नहीं निकल रही थी। राजा युधिष्ठिर ज्यों ही देवी गांधारी के चरणों पर झुकने को तैयार हुए कि आंखों पर बंधी पट्टी में से देवी गांधारी ने उनके पावों के नखों की ओर जरा-सा देख लिया। इस दृष्टिपात मात्र से युधिष्ठिर के पैरों की उंगलियों के नख काले पड़ गए। युधिष्ठिर की यह हालत देखकर अर्जुन श्रीकृष्ण के पीछे जा छिपे। अर्जुन को भय से छिपता देखकर गांधारी का क्रोध शान्त हो गया।

अब सभी पाण्डव माता कुन्ती के पास गए। कुन्ती माता अंचल से मुंह ढककर नेत्रों से करुणाश्रु बहाने लगीं। पुत्रों के शरीरों पर हाथ फेरती हुई कुन्ती के सामने जब द्रौपदी पड़ी तो यह स्मरण कर कि इसके सभी पुत्र मारे गए हैं, वे व्याकुल हो गईं। द्रौपदी पास ही धरती पर पड़ी फूट-फूटकर रो रही थी। कुन्ती देवी को देखकर द्रौपदी बिलखती हुई बोली, "सास जी, आपके सारे पौते कहां चले गए हैं? इतने दिनों बाद आज आप मिली हैं। फिर भी वे आपके चरण छूने क्यों नहीं आते? हम पुत्रहीनों को यह राज्य किस काम का!"

कुन्ती ने द्रौपदी को उठाकर धीरज बंधाया और साथ लेकर जेठानी गांधारी के पास गईं। उनके पीछे-पीछे पाण्डव भी गए।

रोती-बिलखती द्रौपदी को देवी गांधारी ने कहा, "बहू! मेरी ओर तो जरा देख! सौ पुत्रों को जन्म देकर भी आज मैं पुत्रहीना हूं। जो भावी है, उसे कौन टाल सकता है! भगवान् की लीला विचित्र है। वही हमें अपने अदृश्य हाथों से पुतलियों की तरह नचाता है। कर्मगति विचित्र है। शोक को त्यागकर धीरज धारण करो।"

देवी गांधारी सत्यवादिनी, पतिव्रता, और तपस्विनी थीं। महर्षि वेदव्यास ने उन्हें दिव्यदृष्टि प्रदान की ताकि रणभूमि में मरे पड़े अपने पुत्रों, स्वजनों और सहायकों को देख सकें। वे ज्यों-ज्यों रणभूमि में चिर-निद्रा में सोए वीरों और उनके लिए विलाप करते उनके सम्बन्धियों को देखती जातीं, उनका दुःख बढ़ता जाता और वे श्रीकृष्ण को सुना-सुनाकर विलाप करती जातीं। अपने पुत्रों के मृत शरीरों के पास रोती-बिलखती बहुओं को देखकर देवी गांधारी की छाती फटने लगी। अभिमन्यु की किशोर पत्नी उत्तरा का वैधव्य गांधारी को असह्य हो उठा। जयद्रथ की ब्याही अपनी पुत्री दुःशला को विधवा वेश में देखकर गांधारी को मूर्च्छा आ गई। अपने भाई शकुनि, द्रोणाचार्य और भीष्म को देखकर उनका मन ग्लानि से भर गया और इस सबके लिए उन्होंने वासुदेव श्रीकृष्ण को ही दोषी समझा। वे समझती थीं कि श्रीकृष्ण चाहते तो इस भीषण नर-संहार को रोक सकते थे। गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दे दिया : "श्रीकृष्ण! तुमने आपस में लड़ते-मरते कौरवों-पाण्डवों की उपेक्षा की है। इसलिए तुम अपने कुल का भी विनाश देखोगे। तुम स्वयं भी निन्दित उपाय से मरोगे। जैसे आज ये स्त्रियां पतियों, पुत्रों और भाइयों के लिए रो रही हैं, उसी तरह तुम्हारे कुल की स्त्रियां भी रोएंगी।"

इस घोर शाप को सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, "मैं जानता हूं, जैसा आपने कहा, वैसा ही होने वाला है।"

श्रीकृष्ण की इस स्वीकृति से पाण्डव भयभीत हो उठे। फिर श्रीकृष्ण बोले, "देवी गांधारी! यह नर-संहार तुम्हारे ही कारण हुआ और दोषी आप मुझे बता रही हैं।"

इसी समय धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से पूछा, "युधिष्ठिर! यह तो बताओ कि इस युद्ध में दोनों पक्षों के कितने वीर मारे गए?"

युधिष्ठिर ने कहा, "तात! इस युद्ध में एक अरब छियासठ करोड़, बीस हजार योद्धा मारे गए हैं। इसके अतिरिक्त चौबीस हजार एक सौ पैंसठ लापता हैं।"

फिर धृतराष्ट्र के कहने से युधिष्ठिर ने सभी का प्रेत-कृत्य सम्पन्न कराने की व्यवस्था की।

सभी ने अपने-अपने सम्बन्धियों को जलांजलि अर्पण की। इसी समय देवी कुन्ती ने युधिष्ठिर को बताया कि कर्ण की जननी मैं ही हूं। युधिष्ठिर ने मां से कर्ण-जन्म की बात सुनकर उनका प्रेत-कृत्य किया और अब तक इस बात को छिपाकर रखने के लिए, समस्त स्त्री जाति को शाप दिया कि स्त्रियां भविष्य में किसी रहस्य को छिपाकर नहीं रख सकेंगी।

शान्ति पर्व

ज्यों ही पितृ-तर्पण का कार्य पूरा हुआ, नारदादि महर्षि युधिष्ठिर के पास आए। इस समय युधिष्ठिर का मन नर-संहार से उत्पन्न ग्लानि के कारण खिन्न था। बन्धु-बान्धवों को मार कर प्राप्त किया हुआ यह राज्य उन्हें व्यर्थ लग रहा था। वे इस राज्य-भार को छोड़कर वन में चले जाना चाहते थे। अर्जुन उनसे सहमत नहीं थे। वे चाहते थे कि धर्मात्मा युधिष्ठिर राजधर्म का पालन करें। भीमसेन ने भी राजधर्म को छोड़कर संन्यास ग्रहण करने का विरोध किया। नकुल और सहदेव ने भी प्रजा-पालन धर्म को पालने योग्य बताया। रानी द्रौपदी ने भी युधिष्ठिर को राजदण्ड धारण कर के प्रजापालन की प्रेरणा दी। व्यास तथा देवस्थान आदि महात्माओं ने भी युधिष्ठिर को यज्ञानुष्ठान और प्रजा की रक्षा करने की सम्मति दी। बहुत समझाने-बुझाने पर महर्षि वेदव्यास तथा श्रीकृष्ण जी की आज्ञा से युधिष्ठिर नगर में प्रविष्ट हुए। नगरवासियों तथा ब्राह्मणों ने उनका स्वागत-सत्कार किया।

धर्मराज युधिष्ठिर का विधिवत् राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ और वे भाइयों के सहयोग से राजधर्म का तत्परता से पालन करने लगे। राजा युधिष्ठिर अपने ताऊ राजा धृतराष्ट्र के अधीन होकर सब राज-काज करते थे। युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण के प्रति बड़े कृतज्ञ थे और अपनी विजय का कारण उन्हें ही मानते थे।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को परम पराक्रमी भीष्म जी के पास जाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; चारों आश्रमों के धर्मों और राजधर्म का उपदेश ग्रहण करने को कहा।

पितामह भीष्म इच्छा-मृत्यु का वरण करने के लिए देवोत्थानी एकादशी की प्रतीक्षा करते हुए बाण-शैया पर लेटे हुए थे। उनकी चित्त-वृत्तियां भगवान वासुदेव में केन्द्रित थीं। व्यास, नारद, वसिष्ठ, लोमश, वाल्मीकि, मार्कण्डेय और परम धार्मिक सूत तथा अन्य अनेक ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणों ने भीष्म को चारों ओर से घेर रखा था। पितामह भीष्म नेत्र मूंद कर भगवान की स्तुति कर रहे थे। उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। सभी ऋषि-मुनि और ब्राह्मण भीष्म की सराहना कर रहे थे।

श्रीकृष्ण और पांचों पाण्डव रथों पर चढ़कर कुरुक्षेत्र की ओर चले। वे शर-शैया पर

भीष्म पितामह जी के पास जा पहुंचे और सबने उन्हें झुककर प्रणाम किया तथा वहां उपस्थित मुनियों को भी प्रणाम किया। भगवान श्रीकृष्ण ने भीष्म जी के गुणों की प्रशंसा की और कहा कि इस युद्ध में जो महान नर-संहार हुआ है, उससे धर्मराज युधिष्ठिर का मन ग्लानि से भर गया है। आप उन्हें राजधर्म का उपदेश दें ताकि इनका शोक और मोह दूर हो।

भीष्म जी ने कहा, "श्रीकृष्ण जी, मेरा सारा शरीर बाणों से बिंधा हुआ है। पीड़ा के कारण मेरा शरीर विकल है और बुद्धि भी कुछ काम नहीं दे रही है। इसलिए मैं असमर्थ हूं। साथ ही आपके सामने मेरा उपदेश देना वैसे भी व्यर्थ है क्योंकि आप ही सारे ज्ञान-विज्ञान के आधार हैं।"

श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य प्रभाव से भीष्म जी के सारे कष्टों का अन्त कर दिया और बुद्धि की विकलता भी दूर कर दी। सन्ध्या काल होने लगा था। सारे ऋषि-मुनि कल आने के लिए कहकर प्रस्थान करने लगे और श्रीकृष्ण सहित पाण्डव भी भीष्म जी से जाने की आज्ञा लेकर प्रणाम करके चल पड़े।

दूसरे दिन प्रातः-कृत्यों के बाद श्रीकृष्ण सहित पाण्डव भीष्म जी के पास गए। प्रणाम आदि के अनन्तर भीष्म जी ने कहा कि धर्मात्मा युधिष्ठिर एक-एक करके प्रश्न पूछते जाएं, मैं सबका यथोचित उत्तर दूंगा।

फिर तो धर्मराज युधिष्ठिर ने एक के बाद एक कितने ही प्रश्न पूछे और उन सबके उत्तर शर-शैया पर पड़े पितामह भीष्म ने दिए।

सब धर्मों का उपदेश करने के पश्चात जब भीष्म चुप हो गए तो कुछ क्षण वहां सन्नाटा छाया रहा। तत्पश्चात महर्षि वेदव्यास मौन भंग करते हुए बोले, "भीष्म जी, अब धर्मात्मा युधिष्ठिर सन्देह-मुक्त हो चुके हैं। उनके सारे प्रश्नों के आपने यथोचित उत्तर दिए हैं। अब आप इन्हें हस्तिनापुर में जाने की आज्ञा दीजिए।"

भीष्म जी ने धर्मात्मा युधिष्ठिर को भाइयों और मंत्रियों सहित राजधानी लौट जाने की आज्ञा दे दी। साथ ही यह भी कहा कि जब सूर्य भगवान उत्तरायण हो जाएं तो तुम फिर मेरे पास आना।

युधिष्ठिर उनकी आज्ञा के अनुसार यथासमय दोबारा उपस्थित होने के लिए कहकर हस्तिनापुर को चले गए।

अनुशासन पर्व

फिर ज्योंही सूर्य उत्तरायण में आ गए, राजा युधिष्ठिर पुरोहितों सहित शर-शैया पर पड़े भीष्म जी के पास पहुंचे। उत्तरायण होने पर भीष्म जी प्राण छोड़ने वाले थे, इसलिए अन्तिम कृत्य की सारी सामग्री भी युधिष्ठिर साथ ले आए थे।

सबने भीष्म तथा अन्य ऋषियों को प्रणाम किया। भीष्म जी ने श्रीकृष्ण आदि से देह-त्याग की अनुमति लेकर, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर को उनके कर्त्तव्य का उपदेश दिया और योग क्रिया द्वारा प्राण त्याग दिए। पाण्डवों ने उनका विधिवत दाह-संस्कार सम्पन्न करके उन्हें जलांजली अर्पित की।

अश्वमेधिक पर्व

सभी लोग रथारूढ़ होकर हस्तिनापुर को लौट गए। राजा युधिष्ठिर से अनुमति लेकर भगवान श्रीकृष्ण द्वारका को लौट गए।

भगवान वेदव्यास ने राजा युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा दी। यज्ञ के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता थी। पर प्रजा की सारी सम्पत्ति युद्ध के कारण नष्ट हो चुकी थी। व्यास जी ने हिमालय में मरुत्त के गड़े धन का पता बताया और वहीं से धन लाने को कहा। सभी पाण्डव वहां से प्रचुर धनराशि लेकर हस्तिनापुर की ओर चले।

यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण पुनः हस्तिनापुर लौट आए थे। देवी कुन्ती ने उत्तरा के मृत बालक को जीवित करने की उनसे प्रार्थना की। सुभद्रा देवी ने भी कृष्ण से आग्रह किया कि वे अश्वत्थामा के अस्त्र से नष्ट इस शिशु को जीवन-दान दें। श्रीकृष्ण ने

अपनी दिव्य-शक्ति के प्रभाव से मृत शिशु को जीवन-दान दिया। इस शिशु का नामकरण 'परीक्षित' किया गया।

पाण्डव लौटकर हस्तिनापुर आ पहुंचे। अश्वमेध यज्ञ की तैयारी होने लगी। सभी पाण्डवों ने आपस में कार्य का विभाजन किया। अश्व की रक्षा का भार अर्जुन ने संभाला। कई राजाओं से अर्जुन को युद्ध करना पड़ा। विजयी अर्जुन समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके अश्व सहित हस्तिनापुर लौट आए।

यज्ञ की तैयारी हो रही थी।

यज्ञ विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न हुई। ब्राह्मणों को दक्षिणा और समागत राजाओं को भेंट देकर विदा किया गया।

आश्रमवासिक पर्व

युधिष्ठिरादि पाण्डव धृतराष्ट्र और गांधारी के सेवा में सदा तत्पर रहते और उन्हें अधिकाधिक सुख पहुंचाने का प्रयत्न करते।

धृतराष्ट्र के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने गांधारी सहित वन में जाकर जीवन के शेष दिन बिताने का निश्चय किया। व्यास जी के कहने से युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की बात मान ली। फिर धृतराष्ट्र ने प्रजा-जनों से अनुमति मांगी और अपने अपराधों के लिए क्षमा ली।

तपोवन में जाने से पूर्व धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों और सम्बन्धियों का श्राद्ध करने का निश्चय किया। राजा युधिष्ठिर ने इस कार्य के लिए उन्हें यथेष्ट धन दिया और श्राद्ध कार्य सम्पन्न हुआ।

गान्धारी सहित धृतराष्ट्र जब वन को चले तो पुत्रों के रोकने पर भी देवी कुन्ती नहीं रुकीं और उनके साथ वन को चल दीं।

युधिष्ठिर माता कुन्ती और धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के वनवास से चिन्तित थे। वे भाइयों तथा पुरवासियों सहित उनसे मिलने गए और कुरुक्षेत्र में आश्रम बनाकर रह रहे, धृतराष्ट्र, गांधारी और माता कुन्ती का दर्शन करके लौट आए।

पश्चात नारद जी से माता कुन्ती, धृतराष्ट्र और गांधारी के दावाग्नि में जल मरने का समाचार सुनकर युधिष्ठिरादि पाण्डव शोक-विह्वल हो गए। राजा युधिष्ठिर ने तीनों की अस्थियां पवित्र गंगाजल में प्रवाहित कीं और विधिपूर्वक सबका श्राद्ध किया।

मौसल पर्व

युधिष्ठिर धर्मपूर्वक राज-काज कर रहे थे, फिर भी प्रतिदिन विविध अपशकुनों के कारण उनका मन दुश्चिन्ताओं से भरा हुआ था। कुछ ही दिन बाद उन्हें समाचार मिला कि प्रभास क्षेत्र में आपस में लड़-भिड़कर सारे वृष्णि वंशी नष्ट हो गए।

श्रीकृष्ण के कहने पर सारथि दारुक अर्जुन को यदुवंश के नाश की सूचना देने हस्तिनापुर आया। अपने परम सखा श्रीकृष्ण के वंश-नाश का समाचार सुनकर अर्जुन द्वारका की ओर चल पड़ा। यदुवंशियों में से केवल श्रीकृष्ण, बलराम, वभ्रु और दारुक जीवित बचे थे। दारुक के हस्तिनापुर चले जाने पर श्रीकृष्ण ने वभ्रु को द्वारका में रहकर यदुकुल की स्त्रियों की रक्षा करने की आज्ञा दी। पर तुरन्त ही एक बाण वभ्रु को आकर लगा और उसकी मृत्यु हो गई। तब श्रीकृष्ण ने बड़े भैया बलराम जी से कहा, "भैया, मैं द्वारकापुरी जाकर स्त्रियों की सुरक्षा की उचित व्यवस्था कर आता हूं, आप तब तक यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।"

द्वारका जाकर श्रीकृष्ण ने अपने पिता वसुदेव से कहा कि आप अर्जुन के यहां पहुंचने तक कुल की स्त्रियों की रक्षा का भार संभालें। वे द्वारका से फिर वहां लौट आए जहां बलराम जी को छोड़ गए थे। जब वे बलराम जी के पास पहुंचे तो वे समाधि लगाकर बैठे थे और प्राण त्याग कर रहे थे।

भगवान श्रीकृष्ण ने यह जानकर कि कृष्ण-लीला को समेटने का उपयुक्त अवसर आ गया है, इन्द्रिय-निग्रह करके महायोग का आश्रय लिया और धरती पर लेट गए।

उसी समय जरा नाम का भयंकर व्याध उस ओर आ निकला। श्रीकृष्ण को भी मृग समझकर उसने बाण छोड़ा जो भगवान कृष्ण के पांव में आकर लगा। इस बाण के लगने से उन्होंने शरीर का परित्याग कर दिया और अपने दिव्यधाम को चले गए।

अर्जुन जब द्वारका पहुंचे तो द्वारका और श्रीकृष्ण-पत्नियों की दुर्दशा देखकर बहुत दुखी हुए। वृद्ध वसुदेव जी ने उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया और श्रीकृष्ण का सन्देश भी।

अर्जुन द्वारकावासी समस्त स्त्री-पुरुषों को अपने साथ लेकर जब द्वारकापुरी से बाहर आए तो समुद्र ने द्वारकापुरी को डुबो दिया। मार्ग में लुटेरों ने अर्जुन और यदुकुल के लोगों के दल पर आक्रमण कर दिया और लूट-पाट मचाने लगे। अर्जुन ने उन्हें भगाने का बहुत प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ! वे स्त्रियों को भगा ले गए। अर्जुन को अपने पर बड़ी लज्जा आ रही थी। वही अर्जुन था, वही गाण्डीव धनुष था और वही बाण, फिर भी अर्जुन कुछ नहीं कर पा रहा था!

अपहरण से बची हुई स्त्रियों को लेकर अर्जुन ने उन्हें जहां-तहां बसा दिया।

फिर ग्लानि और लज्जा से अभिभूत अर्जुन व्यासजी के पास गए। अपनी सारी व्यथा-कथा उन्होंने व्यास जी से कह सुनाई।

भगवान् व्यास ने अर्जुन को वृष्णिवंशियों के नाश का रहस्य और लुटेरों द्वारा यदुकुल की नारियों के अपहरण का भी रहस्य समझाया। फिर उन्होंने कहा, "आप लोगों को भी परलोक गमन की तैयारी करनी चाहिए। क्योंकि आपका कार्य समाप्त हो गया है।"

हस्तिनापुर आकर अर्जुन युधिष्ठिर से मिले और उन्हें सारा समाचार सुनाया।

महाप्रस्थानिक पर्व

यादव कुल के विनाश, श्रीकृष्ण के दिव्यधाम-वास और महाभारत युद्ध में बन्धु-बांधवों के विनाश से युधिष्ठिरादि पाण्डवों के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया।

युधिष्ठिर ने भाइयों से कहा, "मैं समझता हूं, काल से कोई पार नहीं पा सकता। भगवान् श्रीकृष्ण को भी उसकी शक्ति को स्वीकार करना पड़ा। इसलिए अब हमें भी अपने महाप्रस्थान की तैयारी करनी चाहिए।" जब सभी भाइयों ने उनकी इस बात का अनुमोदन किया तो युधिष्ठिर ने परीक्षित का राज्याभिषेक करके और गुरु कृपाचार्य को उसका मार्ग-दर्शक नियुक्त करके सबको अपने तपस्या करने जाने की सूचना दी।

मंत्रियों और प्रजा ने उन्हें जाने से रोका पर महात्मा युधिष्ठिर ने उनकी एक न मानी। उन्हें समझा-बुझाकर उनकी सम्मति प्राप्त कर ली। फिर गृहस्थाश्रम को त्यागने के सारे विधि-विधानों का पालन करते हुए तपस्वियों जैसे वस्त्र पहन लिए।

द्रौपदी सहित पाण्डवों को तपस्या के लिए जाता देखकर प्रजाजनों को उस दिन की स्मृति हो आई, जब पाण्डव जुए में हारकर पहले भी वन को गए थे। सब प्रजाजनों के गले रुंधे हुए थे और नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। पर द्रौपदी सहित सभी पाण्डव इस महा-यात्रा से बहुत प्रसन्न थे।

सबसे आगे युधिष्ठिर चले, उनके पीछे भीम, अर्जुन फिर नकुल और सहदेव। फिर द्रौपदी। एक कुत्ता भी उन सबके पीछे-पीछे हो लिया।

नगर-सीमा से विदा करते हुए परिवार के लोग, राज्य के अधिकारी और प्रजाजन रोते-कलपते वापस लौट पड़े।

पाण्डव अनेक वन-पर्वतों को लांघते हुए आगे ही आगे बढ़ते गए। इस तरह व्रत-उपवास पूर्वक तीर्थों में स्नान करते, महात्माओं के दर्शन करते, वे सागर तट पर आ पहुंचे। यहां उन्हें पुरुष वेषधारी अग्निदेव मार्ग रोके खड़े दिखाई दिए। उन्होंने अपना परिचय देकर कहा, "अर्जुन, अभी तक गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय तुणीरों को धारण किए क्यों चल रहा है। यह गाण्डीव धनुष मैंने तुम्हारे लिए वरुणदेव से मांगा था। अब यह उन्हें वापस लौटा देना चाहिए।"

अर्जुन ने अग्निदेव के कहने से धनुष और दोनों तुणीर जल में प्रवाहित कर दिए तो अग्निदेव अन्तर्धान हो गए। फिर चलते-चलते उन्होंने सागर में डूबी भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारकापुरी को देखा और वे उत्तर की ओर मुड़ चले। उत्तर में देवतात्मा हिमालय के दर्शनों से सभी ने अपने को कृतार्थ माना। तत्पश्चात् वे महागिरि मेरु के पास जा पहुंचे। वे भगवान् का ध्यान करते हुए चल रहे थे। इतने में देवी द्रौपदी गिर पड़ीं और अचेत हो गईं। उन्हें गिरा देखकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूछा, "भैया! द्रौपदी ने कभी कोई पाप नहीं किया था, फिर वह इस तरह क्यों गिर पड़ी?"

युधिष्ठिर बोले, "भीम! तुम नहीं जानते। द्रौपदी के मन में अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था। उसी का यह परिणाम है। सब अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं।"

द्रौपदी प्राणहीन पड़ी थी, पड़ी रही। सब आगे बढ़ चले। थोड़ी दूर गए थे कि भाइयों में से सबसे छोटे सहदेव भी गिर पड़े। उन्हें गिरा देख भीम ने फिर वही प्रश्न दोहराया, "सब भाइयों की सेवा में तत्पर रहने वाला भी किस दोष के कारण गिर पड़ा?"

युधिष्ठिर बोले, "यह विद्या-बुद्धि में अपने से आगे किसीको कुछ गिनता ही नहीं था। यही इसके गिरने का कारण है।"

शेष मण्डली फिर आगे बढ़ी। कुछ आगे बढ़ने पर नकुल भी गिर पड़ा। भीम ने फिर पूछा, "नकुल क्यों गिर पड़ा?"

"यह रूप में अपने को सबसे बढ़-चढ़कर मानता था।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

कुछ आगे बढ़े थे कि अर्जुन गिर पड़ा। भीम ने फिर प्रश्न किया, "भैया! यह अर्जुन क्यों गिर पड़ा?"

"इसे अपने शूरवीर होने का बड़ा अभिमान था!" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया और आगे चलते रहे। अभी कुछ ही पग आगे बढ़े होंगे कि भीम भी गिर पड़ा। गिरते हुए भीम ने कहा, "भैया, जरा रुककर मेरी ओर तो देखिए, मैं यहां गिर पड़ा हूं। कृपया मेरे पतन का कारण भी तो बताइए?"

"बहुत पेटू थे तुम भीम। तुम्हें भी अपने बल-पौरुष का अभिमान कम नहीं था।" कहते हुए युधिष्ठिर बिना रुके, बिना पीछे देखे आगे बढ़ते गए। कुत्ता अब भी उनके पीछे-पीछे चल रहा था।

सहसा युधिष्ठिर के आगे देवराज इन्द्र रथ सहित आ उपस्थित हुए। वे धीर-गम्भीर वाणी में बोले, "धर्मात्मा युधिष्ठिर, आओ, इस रथ पर बैठो।"

युधिष्ठिर ने देवराज इन्द्र को नमस्कार किया और बोले, "देवेन्द्र, मेरे भाई और पत्नी मार्ग में गिर पड़े हैं। वे भी मेरे साथ देवलोक में चल सकें, कृपया इसकी व्यवस्था कर दीजिए। मैं अकेला देवलोक जाना नहीं चाहता।"

देवराज बोले, "धर्मात्मा युधिष्ठिर! वे तो पहले ही देवलोक में पहुंच चुके हैं। आप बैठिए तो सही। देवलोक पहुंचने पर आप उनसे मिल सकेंगे।"

युधिष्ठिर ने कहा, "यह कुत्ता देख रहे हैं न आप! यह मेरा बड़ा भक्त है। इस दुर्गम

यात्रा में भी इसने मेरा साथ नहीं छोड़ा। यह भी मेरे साथ स्वर्ग चल सके, इसकी स्वीकृति दीजिए।"

इन्द्र बोले, "तुम्हें अमरता और स्वर्ग के सारे सुख-भोग मिल रहे हैं। इस कुत्ते को छोड़ो और मेरे साथ चलो।"

युधिष्ठिर नहीं माने। बोले, "यह नीचतापूर्ण कार्य होगा। मुझे वह स्वर्ग नहीं चाहिए, जिसके लिए अपने आश्रित इस कुत्ते को छोड़ना पड़े।"

इन्द्रदेव भी अड़ गए। बोले, "कुत्ते को छोड़कर ही आप देवलोक में प्रवेश पा सकते हैं।"

युधिष्ठिर बोले, "कोई बात नहीं। जहां यह, वहां मैं, जहां मैं, वहां यह।"

तभी वह कुत्ता एकाएक न जाने कहां लुप्त हो गया और सामने आ प्रकटे धर्मराज। वास्तव में स्वयं धर्मराज ही कुत्ते के रूप में युधिष्ठिर की परीक्षा ले रहे थे।

युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए धर्मराज बोले, "हे युधिष्ठिर, तुमने अपने धर्माचरण और सत्याचरण से अपने कुल का गौरव बढ़ाया है। मैंने कई बार तुम्हारी परीक्षा ली और तुम हर बार सफल हुए। इसीलिए आप सशरीर स्वर्ग पधारिये। आप जैसा महान् धर्मात्मा तीनों लोकों में कोई दूसरा नहीं है।"

स्वर्गारोहण पर्व

युधिष्ठिर देवराज इन्द्र के लाए हुए रथ पर बैठे और स्वर्ग जा पहुंचे। स्वर्ग में देवर्षि नारद ने उनका स्वागत किया। वे बोले, "युधिष्ठिर, आप सशरीर स्वर्ग प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति हैं।"

नारद की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले, "देवेन्द्र ! मेरे भाइयों को शुभ या अशुभ जैसा भी स्थान प्राप्त हुआ हो, वहीं मैं जाना चाहता हूं।"

देवराज इन्द्र बोले, "मृत्युलोक के स्नेह-बन्धनों को अब छोड़ दो और शुभ कर्मों द्वारा प्राप्त हुए इस स्वर्गलोक के सुखों का आनन्द लो। जो स्थान तुम्हें मिला है, तुम्हारे भाई इस के अधिकारी नहीं हैं।"

"देवेन्द्र ! अपने भाइयों और द्रौपदी के बिना मुझे यहां रहने में जरा भी उत्साह नहीं होता।" युधिष्ठिर ने कहा।

देवर्षि नारद युधिष्ठिर को स्वर्ग की शोभा दिखाने ले चले। तभी उन्होंने देखा कि उनका शत्रु दुर्योधन एक दिव्य सिंहासन पर देवताओं से घिरा बैठा है। दुर्योधन के इस उत्कर्ष को देखकर युधिष्ठिर का मन खीझ और क्रोध से भर उठा। वे बोले, "जिस दुष्ट के कारण महाभारत का महान् युद्ध हुआ, और जिसने हम पर तरह-तरह के अत्याचार और निन्दित कार्य किए, वह यहां विराजमान है। इस दुष्ट के साथ मैं एक दिन भी स्वर्ग में नहीं रहना चाहता।"

नारद जी को युधिष्ठिर की ये बातें अच्छी नहीं लगीं। वे बोले, "राजन् ! अब पुराने वैर-विरोध को भूल जाओ।"

देवर्षि नारद की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले, "देवर्षि ! जिस एक व्यक्ति की दुष्टता के कारण महाभारत में इतनी जन-धन की हानि हुई, उस दुर्योधन को यदि स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई है तो मैं जानना चाहता हूं कि धर्म के पथ का अनुसरण करने वाले सत्य-प्रतिज्ञ मेरे भाइयों को कौन-सा लोक प्राप्त हुआ है ? मैं महारथि कर्ण से भी मिलना चाहता हूं। और भी कितने ही शूरवीर धर्म-युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए हैं, पर उनमें से यहां मुझे कोई दिखाई नहीं दे रहा है। उनके बिना स्वर्गलोक मेरे लिए व्यर्थ है।"

देवता बोले, "यदि आपका ऐसा ही आग्रह है तो चलिए। देवराज की आज्ञा है कि जो

आपको अच्छा लगे, हम वही करें।'

यह कहकर उन्होंने देवदूत को आज्ञा दी कि महाराज युधिष्ठिर को इनके सम्बन्धियों के पास ले जाओ। तब युधिष्ठिर देवदूत के साथ उस स्थान की ओर चले जहां उनके भाई-बन्धु थे। चलते-चलते वे ऐसे दुर्गम मार्ग पर आ पहुंचे जो बहुत अशुभ था। पापी लोग अपने पापों का दण्ड भोगने के लिए उस मार्ग पर आते-जाते थे। वहां घना अंधकार छाया हुआ था और चारों ओर से ऐसी तीखी दुर्गन्ध आ रही थी कि सिर फटा जा रहा था। मांस-रक्त के कीचड़ से सारा मार्ग अटा पड़ा था। हाड़ और केश पग-पग पर पैरों से टकराते-उलझते थे। सड़े हुए मुर्दों की सिर चकरा देने वाली दुर्गन्ध में सांस लेना कठिन हो रहा था। कीड़े किल-बिला रहे थे और तीखे दंश वाली मक्खियां भिनभिनाती हुई काट खा रही थीं। पास ही श्मशानाग्नि धधक रही थी और उसकी लपटें इन्हें जलाए डालती थीं। वहां लोहे जैसी कठोर और भाले जैसी तीखी चोंचों वाले चील-कौवे मंडरा रहे थे।

राजा युधिष्ठिर घोर चिन्ता की मुद्रा में, इन घिनौने दृश्यों को देखते हुए मार्ग के बीचों बीच चल रहे थे। कुछ दूर चलने पर उन्होंने खौलते-उफनते पानी से भरी हुई नदी देखी। इस नदी के पार छुरों जैसे पत्तों वाला असिपत्र नामक घोर वन था। गर्म बालू, जलती हुई चट्टानें, खौलता हुआ तेल, एक-से-एक बढ़कर कष्टदायक वस्तुएं वहां विद्यमान थीं। युधिष्ठिर ने दुखी और व्याकुल होकर देवदूत से पूछा, "अभी इसी तरह और कितना लम्बा मार्ग हमें चलना होगा? मेरे भाई कहां हैं, यह आपने अभी तक मुझे नहीं बताया? मैं जानना चाहता हूं कि देवताओं का यह कौन-सा लोक है?"

युधिष्ठिर को दुखी देख देवदूत ने कहा, "बस, यहीं तक आपको आना था। अब लौट चलिए। महाराज! मुझे देवराज की आज्ञा है कि ज्योंही आप थक जाएं, आपको वापस लौटा ले चलूं।"

युधिष्ठिर वहां की दुर्गन्ध और वीभत्स दृश्य को देखकर घबरा गए थे। उनका सिर चकराने लगा था और लगता था कि उन्हें मूर्छा आ जाएगी। उन्होंने देवदूत से लौट चलने के लिए कहा। पर वे ज्योंही पीछे को मुड़े, उन्हें चारों ओर से दीन-दुखी, कराहते मनुष्यों की पुकार सुनाई दी, "हे पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर! हम लोगों पर कृपा करने के लिए दो घड़ी तो यहां ठहरिए। आपके यहां आते ही ऐसी सुखद वायु चलने लगी है कि हमारे सारे दुःख-क्लेश दूर हो गए हैं। घोर कष्टों को भोगते हुए आज एक युग के बाद आपका पुण्य दर्शन पाकर हम सुख का अनुभव कर रहे हैं।"

कष्ट भोग रहे उन प्राणियों के दीन वचनों को सुनकर युधिष्ठिर ठिठक कर खड़े हो गए। उन्होंने पूछा, "आप लोग कौन हैं और यहां क्यों रहते हैं?"

उनके प्रश्न करने पर सब अपना-अपना नाम बताने लगे। एक आवाज आई, "प्रभो! मैं कर्ण हूं।" दूसरा बोला, "मैं भीम हूं।" फिर "मैं अर्जुन हूं।" "मैं नकुल हूं।" "मैं सहदेव हूं।" "मैं द्रौपदी हूं।" एक-एक सहोदर, सम्बन्धी और सुहृद, चिल्ला-चिल्लाकर अपना नाम बताने लगे।

अपने बन्धु-बान्धवों की इस दुर्गति को देखकर युधिष्ठिर विधि के विचित्र विधान को सोचकर शोक और दुःख से व्याकुल हो गए। उन्हें अपने कानों और अपनी आंखों पर विश्वास

नहीं हो रहा था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि मैं जो कुछ देख-सुन रहा हूं, वह स्वप्न है या सत्य ! उन्हें लग रहा था कि मेरा मस्तिष्क भ्रमित हो गया है। वे क्रोध में भर उठे। देवताओं और धर्म को कोसने लगे। उन्हें रह-रहकर यह अन्याय खल रहा था कि पापी दुर्योधन को स्वर्ग मिला और धर्म-पथ का अनुसरण करने वाले मेरे भाइयों की यह दुर्गति ! उन्होंने बड़े क्षोभ के साथ देवदूत के साथ कहा, "आपको जिसने भेजा है, उसके पास लौट जाइए। मैं इस जगह को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। अपने स्वामी देवराज से कह देना कि मेरे यहां ठहरने से मेरे इन दुखी भाई-बान्धवों को सुख मिलता है, इसलिए मैं यहीं रहूंगा।"

वह देवदूत उन्हें वहीं छोड़कर देवराज इन्द्र के पास पहुंचा और सारी बात कह सुनाई।

देवदूत को गए अभी घड़ी-डेढ़ घड़ी ही हुई थी कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहां आ पहुंचे। देवताओं के वहां पहुंचते ही चारों ओर प्रकाश फैल गया। इसके साथ ही वहां का वह सारा घिनौना दृश्य भी न जाने कहां लुप्त हो गया। मन्द-मन्द सुगन्ध भरी पवन बहने लगी।

देवराज इन्द्र युधिष्ठिर से बड़े विनम्र स्वर में बोले, "हे युधिष्ठिर ! तुम्हें जो यह नरक देखना पड़ा, इसके लिए क्रोध मत करना। समस्त राजाओं को इसे देखना ही पड़ता है। अब तुम्हारी स्वर्ग-सुख भोगने की बारी है। जो लोग पहले स्वर्ग-सुख भोगते हैं, उन्हें बाद में नरकवास मिलता है। हे राजन् ! तुमने अपने गुरु-पुत्र अश्वत्थामा के बारे में छल से काम लेकर गुरु द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया था। यही कारण है कि तुम्हें भी छल से ही नरक दिखाया गया है। तुम्हारे भाई, पत्नी और सारे मित्र जो तुम्हारे पक्ष में लड़े थे, सभी स्वर्गलोक में विराजमान हैं। चलकर उनके दर्शन करो। जिन महात्मा कर्ण के बारे में तुम चिन्तित हो, वे भी स्वर्ग में विद्यमान हैं। हे राजन् ! यह तीनों लोकों को पावन करने वाली पुण्यतोया आकाश गंगा है। इसमें स्नान करके दिव्य-देह प्राप्त करो।"

इसी समय धर्मराज आ उपस्थित हुए। उन्होंने इस तीसरी परीक्षा में भी खरा उतरने पर युधिष्ठिर की सराहना की। बोले, "भाइयों के साथ नरक में रहना भी तुमने स्वेच्छा से स्वीकार किया। अभी जो तुमने देखा कि तुम्हारे भाई नरक की घोर पीड़ा सह रहे हैं, वह देवराज इन्द्र की माया थी। वे सभी महात्मा अपने सदाचरण के कारण स्वर्ग में वास कर रहे हैं। अब शीघ्र तुम उन्हें देखोगे।"

आकाश गंगा में स्नान करते ही युधिष्ठिर का मानव स्वभाव लुप्त होकर देवस्वभाव प्राप्त हो गया। उनके सारे दुःख-संताप नष्ट हो गए। फिर वे सभी सम्बन्धियों से मिलने चल दिए।

●●●